टोकियो से इम्फाल

आजाद हिन्द आन्दोलन की प्रचण्ड क्रान्ति
का पूर्ण, प्रामाणिक और अधिकृत इतिहास

लेखक
श्री रामसिंह रावल
सम्पादक—दैनिक "आजाद हिन्द" बैंकोक (थाईलैण्ड)
हिन्दी में
श्री सत्यदेव विद्यालंकार

(सोल एजेण्ट)
मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
४० ए. हनुमान रोड़ नई दिल्ली (१)

दो शब्द

आजाद हिन्द आन्दोलन देश की आजादी के लिये शुरू की गई लड़ाई का ही एक शानदार हिस्सा है। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम और १९४२ की अगस्त-क्रान्ति के समान वह भी एक प्रचण्ड क्रांति थी। इसलिये उसका इतिहास लिखने के लिये किये गये इस उद्योग की मैं निस्सन्देह बहुत सराहना करती हूँ। आज की राजनीति और राजनीतिक घटनाओं से ही तो कल का इतिहास बनता है। हिन्दुस्तान की आजादी के लिये आजाद हिन्द आन्दोलन के संघर्ष में जो घटनायें घटीं, उनके इतिहास से हम बहुत लाभ उठा सकते हैं और एक महान् उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। उस इतिहास का विचार, अध्ययन एवं अनुशीलन करने पर हम जिस उत्साहप्रद परिणाम पर पहुँचेंगे, उससे हम अपने अधूरे ध्येय की पूर्ति करने के लिये स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे। आजादी प्राप्त करने के लिये जो कीमत चुकाई जाती है, उसमें निरन्तर चौकसी से काम लेना और सचेत एवं सतर्क रहना आवश्यक है। आजाद हिन्द आन्दोलन के रूप में हुई प्रचण्ड क्रांति के इस इतिहास से स्वदेश की आजादी के लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई में लगे हुये सैनिकों को इतना तो सबक सीखना ही चाहिये कि वे निरन्तर सतर्क, सचेत एवं सावधान रह कर चौकसी से काम लें। मुझे पूरा विश्वास है कि इस पुस्तक से इतना लाभ जरूर उठाया जा सकेगा। इसमें आजाद हिन्द आंदोलन के विकास और उत्कर्ष के साथ-साथ उसकी असफलता के कारणों पर भी कुछ रोशनी डाली गई है। इसी लिये इसकी उपयोगिता में मुझे सन्देह नहीं है। श्री रामसिंह रावल और श्री सत्यदेव विद्यालंकार के इस प्रयत्न की मैं एक बार फिर सराहना करती हूं।

—अरुणा आसिफ अली

पूजनीया मां

के

चरण कमलों में

जय हिन्द

मैं अपना यह परम सौभाग्य समझता हूँ कि पूर्वीय एशिया में आजाद हिन्द आन्दोलन का जब से प्रारम्भ हुआ, तभी से मैंने उसमें विशेष सक्रिय भाग लिया। इस लिये दिसम्बर १९४५ में हिन्दुस्तान में आने के समय से मैं आजाद हिन्द आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी निजी और प्रत्यक्ष जानकारी के आधार पर समाचारपत्रों में लेख लिख रहा हूँ। मेरा उद्देश्य इन लेखों के लिखने का यही रहा है कि देशवासियों के सामने इस क्रान्तिकारी आन्दोलन का ठीक-ठीक और पूरा चित्र उपस्थित किया जाय। १८५७ के बाद हमारी आजादी की लड़ाई में आजाद हिन्द आन्दोलन सम्भवतः सबसे अधिक क्रान्तिकारी आन्दोलन है।

एक दिन अचानक मेरे पास हिन्दी के ख्यातनामा लेखक और पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार आये। आपने बातचीत में मुझ से आजाद हिन्द आन्दोलन का पूरा, प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास लिखने का अनुरोध किया। आपने मेरे लिखे गये कई लेखों को देखा। उनको पुस्तकाकार प्रकाशित करने की मेरी भी इच्छा थी। लेकिन, आपका अनुरोध तो सिलसिलेवार पूरा इतिहास लिखने का ही था। मैंने भी अपने देशवासियों के सामने इस महान् आन्दोलन के अधिकृत इतिहास को उपस्थित करने की आवश्यकता को अनुभव किया। इसलिये इस अनुरोध को मैंने बहुत खुशी के साथ स्वीकार कर लिया। मैंने अपने लेखों को इकट्ठा किया और उनके साथ और भी बहुत सी सामग्री जुटा कर इस पुस्तक को तैय्यार कर दिया।

इतिहास बहुत व्यापक और विस्तृत चीज है। इस आन्दोलन के इतिहास के कई पहलू हैं और उन पर अलग-अलग कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। सिर्फ एक पुस्तक को पूरा इतिहास नहीं कहा जा सकता। उसका यह केवल एक संक्षिप्त ब्यौरा है। फिर, इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि के बिना वह पूरा हो ही नहीं सकता था। इसलिये उसकी पृष्ठभूमि को

स्पष्ट करने के लिये पूर्वीय-एशिया में उससे पहिले की हिन्दुस्तानियों की स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक था। उस पर इसमें प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। स्वदेश की आजादी के लिये इस महान् आन्दोलन का सूत्रपात सर्वथा स्वाभाविक ढंग से हुआ था। उसके इस स्वाभाविक विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। पूर्वीय-एशिया के अनेक अलग-अलग देशों में दूर-दूर कोनों में बिखरे हुये जिन हिन्दुस्तानियों को कभी एक सूत्र में पिरोने की कोशिश ही नहीं की गई थी, उनका सहसा तिरंगे राष्ट्रीय झंडे के नीचे आकर खड़ा हो जाना और अपने को एक महान् शक्तिशाली संगठन में बांध लेना भी साधारण बात नहीं है। यह एक चमत्कार ही था। यह बताने की भी कोशिश की गई है कि यह चमत्कार कैसे इस तेजी के साथ हो गया? इस चमत्कार के पीछे महान् क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस और उनके जिन साथियों का हाथ था, उनकी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का उत्साहपूर्ण ब्यौरा भी इसमें दिया गया है। स्वदेश की सेवा में अपने को खपा देने वाले राजा महेन्द्र-प्रताप सरीखों का उल्लेख भी इसमें यथास्थान सम्मान के साथ किया गया है। हमारे देश के महान् शक्तिशाली और प्रतिभाशाली नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने पूर्वीय-एशिया में पहुँच कर जो जादू कर दिखाया, उसका वास्तविक चित्र इसमें खींचने का प्रयत्न किया गया है। पूर्वीय-एशिया में रहने वाले जिन ग्वालों और मजूरों के शानदार बलिदान से इस महान् आन्दोलन की गहरी नींव भरी गई थी, उनकी गौरवास्पद चर्चा इस पुस्तक में पहिली ही बार की गई है। इन साधारण स्थिति के गरीब लोगों के साथ धनियों तथा अन्य लोगों के त्याग और बलिदान को भी भुलाया नहीं गया। संक्षिप्त होते हुये भी इस प्रकार पुस्तक को पूर्ण बनाने और आन्दोलन का सारा नक्शा देशवासियों के सामने रख देने का प्रयत्न अवश्य किया गया है।

पुस्तक के पहिले अध्यायों की ओर पाठकों का विशेष ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। इसमें जापानी युद्ध से पहले पूर्वीय-एशिया में

हिन्दुस्तानियों की स्थिति, युद्ध से पैदा हुई प्रतिक्रिया और बैंकौक से इम्फाल पहुँचने की नवम्बर-दिसम्बर १९४५ की अपनी तीन हजार मील की साहसपूर्ण यात्रा का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इस संकटापन्न यात्रा में मेरा साथ देने वाले अपने सच्चे और बहादुर साथियों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। मुझे दुःख है कि मैं उसका नाम नहीं दे सका और नाम न दे सकने के कारणों पर ही कुछ प्रकाश डाल सका।

श्रीमती अरुणा आसिफअली को भी मैं धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस पुस्तक के लिये दो शब्द लिख देने की कृपा की है। अगस्त १९४२ की क्रांति की इस वीरांगना के प्रति अपनी कृतज्ञता मैं किन शब्दों में प्रगट करूं। आपने इन दिनों में बहुत व्यस्त रहते हुये भी ये शब्द लिख देने का कष्ट स्वीकार किया।

आजाद हिन्द दल के सदस्य अपने साथी श्री के. ऐस. रावत को भी मैं धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने मुझे अपने कीमती सुझाव और सहायता प्रदान की है।

इस पुस्तक में आजाद हिन्द आन्दोलन के इतिहास के सम्बन्ध में जो कुछ भी मैंने लिखा है, वह मैंने अपनी जानकारी और अनुभव के ही आधार पर लिखा है। उसमें भूल हो सकती है। उसकी जिम्मेवारी अकेले मुझ पर है।

मूल पुस्तक मैंने अंग्रेजी में लिखी है। उसका यह हिन्दी भाषान्तर श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने किया है। मेरी पुस्तक को हिन्दी में इतना सुन्दर रूप देकर मुझे हिन्दी भाषी जनता तक पहुँचाने के लिये मैं आपका हृदय से आभारी हूं। आशा है हिन्दीभाषी इस पुस्तक का योग्य सम्मान करके आपके और मेरे प्रयत्न को सफल बनायेंगे।

आजाद हिन्द रिलीफ कमेटी
८ दर्यागंज, दिल्ली
१५ जुलाई ४६.

—रामसिंह रावल

चलो दिल्ली

अपने देश के महान् क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस, उनकी आजाद हिन्द सरकार तथा आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में पिछले महीनों में दर्जनों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में कहा जाय, तो इन की बाढ़-सी आ गई है। प्रायः सभी भाषाओं में छोटे-बड़े लेखकों ने इस पर गद्य और पद्य में काफी लिखा है। फिर भी हम यह एक और पुस्तक लेकर पाठकों के सामने उपस्थित होने का दुःसाहस कर रहे हैं। इसका कारण बिलकुल साफ है। आज तक लिखा गया अधिकांश साहित्य समाचार-पत्रों के अधूरे समाचारों की जहां-तहां से कतरने काटकर तय्यार किया गया है। उसको अधिकृत या प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। उसमें इस महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन का सिल-सिलेवार इतिहास भी तो दिया नहीं गया। बहुत-सा साहित्य मनगढ़न्त किस्से-कहानियों की तरह केवल कल्पना के आधार पर लिखा हुआ सर्वथा निराधार और वास्तविकता से बिलकुल रहित है। पिछले दिनों में एक विवरण हमने एक समाचार-पत्र में पढ़ा। उसमें दिये गये आजाद हिन्द फौज के कर्नलों के प्रायः सभी नाम कपोलकल्पित थे और रानी झांसी रेजीमेण्ट की तरह बेगम अवध रेजीमेण्ट के खड़े किये जाने का भी उल्लेख था। ऐसे बहुत-से विवरणों, किस्सों और कहानियों का प्रक्षेप इस इतिहास में आ मिला है। साधारण पाठक ने उस सबको बड़े चाव के साथ अपनाया है और उसकी इस प्रवृत्ति से अत्यन्त अनुचित लाभ उठाया गया है। इसको भी एक प्रकार का 'चोर बाजार' ही कहा जा सकता है। अंग्रेजी में प्रकाशित अधिकांश पुस्तकें भी इसी कोटि की हैं।

दिल्ली के चीफ कमिश्नर की सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सरकार द्वारा दस ही दिनों में जब्त की गई हमारी "जयहिन्द" पुस्तक के बाद ही से हमारी यह प्रबल इच्छा थी कि हम अपने पाठकों के सामने महान् आजाद हिन्द

आन्दोलन के रूप में हुई इस प्रचण्ड क्रान्ति का पूर्ण, प्रामाणिक, अधिकृत और विस्तृत इतिहास अपने पाठकों के सामने उपस्थित करें। आज़ाद हिन्द आन्दोलन ने अपने देश को बहुत कुछ दिया है। नये जीवन, नयी स्फूर्ति, नयी प्रेरणा और नयी चेतना के रूप में दी गई भावना के अलावा अच्छे योद्धा, अच्छे सिपाही, अच्छे कार्यकर्ता और अच्छे वक्ता भी उसने पैदा किये हैं। लेकिन, इतने अच्छे लेखक पैदा नहीं किये। लड़ाई के मैदान में वे शायद पैदा भी नहीं हो सकते थे। यही कारण है कि इतने शानदार आन्दोलन और इतनी प्रचण्ड क्रान्ति का कोई अच्छा, शानदार, सिलसिलेवार और विस्तृत इतिहास आज तक भी लिखा नहीं जा सका। हम ऐसा इतिहास लिखने के उद्योग में थे कि आजाद हिन्द सरकार के प्रकाशन-मन्त्री श्री ऐस. ए. अय्यर की मार्फत हमारा परिचय इस पुस्तिका के यशस्वी लेखक श्री रामसिंह जी रावल के साथ हुआ। इस महान् आन्दोलन के सम्बन्ध में आपके अनेकों लेख समाचार-पत्रों में पढ़े थे। हमने अनुभव किया कि एक अधिकारी लेखक के साथ हुई मुलाकात का लाभ उठाना चाहिये। हमारे आग्रह एवं अनुरोध को आपने स्वीकार कर लिया। लेकिन, आपके लिये हिन्दी में लिख सकना संभव न था। इस लिये यह तय हुआ कि आप अंग्रेजी में लिखें और उसका हिन्दी में भाषान्तर कर लिया जाय। आपके मूल प्रयत्न के आधार पर हिन्दी में लिखा गया आजाद हिन्द आन्दोलन का यह इतिहास पाठकों के सामने है।

इसके सुयोग्य लेखक श्री रामसिंहजी रावल पच्चीस वर्ष के युवक हैं। इस युवावस्था में भी आपने बूढ़ों को लजाने वाले सत्साहस का परिचय दिया है। आजाद हिन्द आन्दोलन के प्रारम्भ से आपने उसमें हाथ बटाया और इस समय भी आप उसी में लगे हुए हैं। अपने अन्य हिन्दुस्तानी भाइयों की तरह आप भी व्यापार-व्यवसाय से रुपया कमाने की इच्छा से पूर्वीय-एशिया गये थे और अपने काम में आपने अच्छा

यश भी सम्पादन किया, किंतु आपके हाथों में अपने को धन कमाने की अपेक्षा देशसेवा में लगाना ही लिखा था। आजाद हिन्द आन्दोलन का सूत्रपात होने से भी पहिले से आप उसमें लगे हुये थे। १६२१ में गुजरानवाला जिले के सोहदरा गांव में राजपूत परिवार में आपका जन्म हुआ। जब आप केवल १६ वर्ष के थे, तब १६३७ में आपके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया और आपको निराश्रित अवस्था में स्वयं अपने जीवन का निर्माण करना पड़ा। वजीराबाद के हिन्दू हाई स्कूल से वजीफा लेकर आपने मैट्रिक पास की और आगे पढ़ाई जारी रखना आपके लिये संभव न रहा। १६३८-३६ में आपने यहां संगठित की गई कांग्रेस कमेटी के आप मन्त्री चुने गये और यहीं आपके हृदय में देशसेवा का जो पौदा रोपा गया था, वह दिन-पर-दिन बढ़ता और फलता-फूलता गया। १६३६ में आप आजीविका की खोज में थाईलैण्ड चले गये। वहां से जापान गये और वहां की सार्वजनिक प्रवृत्तियों में भी प्रमुख भाग लेते रहे। आजाद हिन्द आन्दोलन का सूत्रपात होने के साथ ही आप उसमें लग गये। १६४२ की १५ जून को बैंकौक में हुये जिस ऐतिहासिक सम्मेलन में इस महान् आन्दोलन और व्यापक संगठन की स्थायी रूप से निश्चित नींव डाली गई थी, उसमें सम्मिलित होने के लिये सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस के साथ आप पधारे थे। जापान से चुने गये ग्यारह प्रतिनिधियों में से आप एक थे। उस सम्मेलन में प्रमुख भाग लेने के बाद आपको उस समय के सर्वमान्य नेता और निर्वाचित प्रधान श्री रासबिहारी बोस का प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त किया गया। आदरणीय क्रांतिकारी नेता राजा महेंद्रप्रताप के साथ काम करने का भी आपको अवसर मिला था। अन्य नेताओं श्री आनन्दमोहन सहाय, श्री राघवन, स्वर्गीय श्री डी. ऐस. देशपाण्डे आदि के भी आप साथ में और निकट सम्पर्क में रहे। जापान, शंघाई और थाईलैण्ड आदि में हुये आन्दोलन और उससे संबंध रखने वाली प्रवृत्तियों में आपका मुख्य हाथ रहा।

उनको प्रत्यक्ष देखने और समझने का आपको अवसर मिला। बैंकौक में थाईलैण्ड प्रादेशिक कमेटी के प्रचार एवं प्रकाशन विभाग के तो आप अध्यक्ष यानो इंचार्ज ही थे। वहां के आजाद हिन्द रेडियो के संचालन में आपका मुख्य हाथ था और वहां से प्रकाशित होने वाले 'आजाद हिन्द' दैनिक-पत्र के आप सम्पादक थे। इस सारे आंदोलन और क्रांति के सूत्रधार, देशभक्ति की भावना के अवतार, राष्ट्र-प्रेम की सजीव मूर्ति, पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियोंके हृदयसम्राट और अड़तीस करोड़ देशवासियों की आशा के आधार नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के निकट संपर्क में आने का सौभाग्य भी आपको कई बार मिला। जापान के पराजय के बाद बैंकौक से इम्फाल तक ३००० मील की लम्बी यात्रा आपने प्रायः पैदल ही की थी। इससे आपको पूर्वीय एशिया के अधिकांश प्रदेश की स्थिति को देखने तथा अध्ययन करने का प्रत्यक्ष अवसर मिला था। इस समय भी दिल्ली में आजाद हिन्द कमेटी के प्रकाशन और प्रचार विभाग का कार्य आपके हाथों में होने से इस महान् आंदोलन को गहराई से अध्ययन करने का आपको अवसर मिल रहा है। ऐसे सुयोग्य, अनुभवी, कर्मशील, भावुक और सहृदय लेखक की लिखी हुई पुस्तक के प्रामाणिक और अधिकृत होने में सन्देह नहीं किया जा सकता।

पुस्तक के सम्बन्ध में लेखक का परिचय और उन द्वारा लिखे गये शब्दों को देने के बाद कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। लेखक ने पुस्तक को पूर्ण और प्रामाणिक बनाते हुये महान आन्दोलन के इतिहास को सिलसिलेवार देने का पूरा प्रयत्न किया है। लेखक ने अपनी निजी अनुभूति को प्रधानता देकर इसमें जो सौन्दर्य और स्वाभाविकता पैदा कर दी है, वह पुस्तक की अपनी ही विशेषता है। तीन हजार मील की प्रायः पैदल-यात्रा लेखक के जीवन का सबसे बड़ा साहसपूर्ण कार्य है। उसका विवरण जितना रोचक है, उतना ही उपयोगी और उत्साहप्रद भी है। सारे आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुये उसकी आन्तरिक सफलता का जो विवेचन किया गया है, उसको भी पुस्तक की एक

विशेषता कहा जा सकता है। सब घटनाओं के अत्यन्त संक्षिप्त, सरल, और सिलसिलेवार दिये गये ब्यौरे से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले उससे विशेष सबक ले सकते हैं। इतना महान् आन्दोलन और इतनी प्रचण्ड क्रांति सफलता के किनारे पहुँच कर भी असफल हो गई और उसका कारण भी वह विश्वासघात ही हुआ, जिसने हमारे १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम को सफल न होने देकर बाद के भी कितने ही प्रयत्नों को विफल बना दिया। उसका इस पुस्तक में काफी सुन्दर विवेचन किया गया है। इसी लिये इस पुस्तक की उपयोगिता में भी सन्देह नहीं किया जा सकता। इतनी सर्वांग सुन्दर, पूर्ण, प्रामाणिक और उपयोगी पुस्तक के प्रकाशित करने का अवसर देने के लिये हम भाई रावलजी के हृदय से आभारी हैं।

पुस्तक का हिन्दी भाषान्तर यद्यपि सर्वथा स्वतंत्र रूप से किया गया है और अनेक स्थानों पर उसको मूल पुस्तक का-सा रूप दे दिया गया है, फिर भी उसकी अन्तरात्मा को सर्वथा सुरक्षित रखा गया है। उसकी भावना में कहीं भी अन्तर नहीं आने दिया गया। शब्दों, विचारों और घटनाओं के तारतम्य का भी पूरा ध्यान रखा गया है।

अन्त में उन प्रेमी पाठकों और सहृदय पुस्तक-विक्रेताओं के प्रति कृतज्ञता प्रगट करनी आवश्यक है, जिनके सहयोग के बिना इस साहित्य का देश के कोने कोने में प्रचार होना संभव न था। उनके इस सहयोग और सहायता से हमें विशेष उत्साह और प्रेरणा मिली है।

मारवाड़ी पब्लिकेशन्स
४० ए, हनुमान रोड
नई दिल्ली २३ जुलाई ४६

— **सत्यदेव विद्यालंकार**

एक नजर में

(२१ चित्र-अनेक चित्र सर्वथा नवीन)

१. आजाद हिन्द की हल्दी घाटी

अराकान और मनीपुर की नागा पहाड़ियों में कोहिमा, पलेल और इम्फाल सरीखे कितने ही स्थान हैं, जिनके नामों से भूगोल और इतिहास के विद्यार्थी भी कल तक परिचित न थे। आज उनके नाम बच्चों तक के मुंह पर हैं। स्वदेश को आजाद देखने की आकांक्षा से प्रेरित आजाद हिन्द फौज के कितने ही सैनिकों ने उनमें से कितने ही स्थानों को अपने रुधिर से रंग कर पवित्र तीर्थस्थान बना दिया है। उनमें से 'इम्फाल' को आजाद हिन्द फौज की हल्दी घाटी या थर्मापली ही कहना चाहिये, जहां उसके वीर सैनिकों ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी और अंग्रेज-शत्रु-सेना से डट कर लोहा लिया था। १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में भी भारतीय सेना के इतने कड़े मुकाबले का सामना अंग्रेज सेना को शायद ही कहीं करना पड़ा होगा। प्लासी की लड़ाई के लगभग दो सौ वर्षों बाद इतने कड़े मुकाबले की सम्भवतः यह पहिली ही लड़ाई थी। भारत-वर्मा की हद पर बसे हुये मनीपुर राज की यह राजधानी है, जो पूर्वीय सीमा से केवल ७४ मील के भीतर है। इन्हीं पहाड़ियों, जंगलों और नदी-नालों के इस पार से उठने वाली भारतमाता की पुकार पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये जब वीर सैनिक आगे बढ़े थे, तब इम्फाल पर 'करो या मरो' की साधना से प्रेरित होकर उन्होंने पहिला मोर्चा कायम किया था। इसको बेध कर, शत्रु-सेना को पार कर, आजाद हिन्द में प्रवेश करने अथवा शहीदों की मौत मर कर वहां ही अपनी समाधि बना देने का दृढ़ संकल्प उन्होंने किया हुआ था। आजाद हिन्द की ओर ले जाने वाले आजादी के उस राजपथ का 'इम्फाल' पहिला जंगी पड़ाव था। १९४४ के ग्रीष्म में यहीं पर ब्रिटिश साम्राज्य का भाग्य अधरों में लटक रहा था। बड़े-बड़े आशावादी भी बड़ी निराशा के साथ यहां से आने वाले समा-

चारों को सुना करते थे। भारत में अंग्रेजी राज की अन्तिम घड़ी अब और तब में गिनी जा रही थी। लेकिन, इतिहास ने यहीं से एक बार फिर पलटा खाया और सारा खेल बदल गया। वीर सैनिकों के यहां से उखड़े हुये पैर फिर कहीं जम न सके। लेकिन, आजाद हिन्द फौज के इतिहास में इम्फाल अमर हो गया और इस नये इतिहास में एक नयी हल्दी घाटी का निर्माण हो गया।

जापान के पराजय के बाद के इतिहास की कथा कहने का यह स्थान नहीं है। उस अस्तव्यस्त अवस्था में भी बहुत-से हिन्दुस्तानी बड़े से बड़ा खतरा उठा कर भी स्वदेश लौटने को लालायित थे। उन सबकी आंखों के सामने तब भी इम्फाल बना हुआ था। सिवाय इम्फाल के कोई और रास्ता तब स्वदेश लौटने के लिये दीख न पड़ता था। मैं और मेरे दो साथी भी तब बैंकाक से स्वदेश के लिये इसी रास्ते से पैदल रवाना हुये थे। तीन हजार मील का लम्बा रास्ता तय करके दिसम्बर १९४५ के अन्त में, इम्फाल पहुंच कर, हमने भारतमाता के चरणों में सिर नवा कर शान्ति और सन्तोष की ठंडी सांस ली थी। वे दो मास हमारे जीवन के कितने साहसपूर्ण दिन थे ! उनकी याद करके आज भी हृदय फूला नहीं समाता। साहस, धैर्य और हिम्मत आदि सब कुछ बटोर कर हमने भय और संकट का वह लम्बा रास्ता जिस विश्वास के साथ तय किया था, वह आजाद हिन्द फौज की ही तो देन था। 'चलो दिल्ली' का नारा तब भी हमारे कानों में बराबर गूंज रहा था। क्षितिज के इस पार मातृ-भूमि के दर्शन करने की तीव्र आकांक्षा हमको इस ओर इस तेजी से खींच लाई कि रास्ते की सारी मुसीबतों को हम सहसा भूलते चले गये और कदम आगे बढ़ाते हुये आगे ही बढते चले आये। भूख, प्यास, थकान आदि सब कुछ हम भूल गये। पीछे के संकट से अगले संकट की कल्पना करके निराश होने का अवसर एक बार भी नहीं आया। लेकिन, आज उस रास्ते को एक बार फिर वैसे ही पार करने का साहस शायद ही हो सके।

२. आजाद हिन्द जिन्दाबाद

इस महत्वपूर्ण कहानी का उल्लेख करने से पहले जापान के पतन और पराजय के समय की स्थिति का वर्णन करना आवश्यक है। हिरोशिमा और नागासाकी पर अगस्त १९४५ में अणुबमों से किये गये आक्रमण से जापान की रीड की हड्डी ऐसी टूटी कि सभी ओर उसके पैर उखड़ गये और ११ अगस्त को उसने मित्रसेनाओं के सामने लाचार हो घुटने टेक दिये। इम्फाल से लौटते हुये आजाद हिन्द सरकार ने इस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना का स्पष्ट कल्पना कर ली थी और वह उसका सामना करने के लिये भी तय्यार थी। रंगून के बाद सिंगापुर को भी सुरक्षित न समझ कर आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द फौज और आजाद हिन्द संघ का सदर मुकाम थाईलैण्ड की राजधानी बैंकौक में कायम किया गया था। लेकिन, नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस उस समय भी सिंगापुर में ही थे। आजाद हिन्द सरकार के रसद मन्त्री और पूर्वी एशिया के आजाद हिन्द संघ के उपप्रधान श्री परमानन्द तब सरकार और संघ के कार्यकर्त्ता-प्रधान थे। कुछ और मन्त्री भी उनके साथ थे। थाईलैंड के आजाद हिन्द संघ के प्रधान सरदार ईशरसिंह का नाम उनमें उल्लेखनीय है।

जापान के पराजय का हिन्दुस्तानियों की रीति-नीति और गति-विधि पर ऐसा कोई विशेष असर नहीं पड़ा। नैतिक दृष्टि से उनकी शक्ति और भी बढ़ गई। आजाद हिन्द की भावना से कायम किये गये संगठनों को देखते हुये यही पता चलता था कि जापान का पराजय हुआ है, आजाद हिन्द का नहीं। १७ अगस्त को बैंकौक में बिजली की तरह यह समाचार फैल गया कि उनके सर्वमान्य नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस १६ की शाम को बैंकौक आये थे और उसी दिन सवेरे किसी अज्ञात स्थान के लिये विदा हो गये। थाईलैण्ड के आजाद हिन्द संघ के प्रकाशन और प्रचार विभाग की ओर से उनके हस्ताक्षरों से एक विशेष आदेश जारी

किया गया था। उसमें उन्होंने कहा था कि आजाद हिन्द की लड़ाई न तो जापान के युद्ध के साथ शुरू हुई थी और न वह उसके साथ समाप्त ही होगी। शत्रु के युद्ध-सामग्री में अधिक सम्पन्न होने के कारण उस लड़ाई का एक शानदार ऐतिहासिक अध्याय अवश्य पूरा होता है; लेकिन, उनकी वह लड़ाई तो निरन्तर जारी ही रहेगी।

इस आदेश के अनुसार नेताजी के बिदा होने के बाद भी आजाद हिन्द संघ का काम जारी रहा। निस्सन्देह, वातावरण बहुत विक्षुब्ध था। चारों ओर बेचैनी-सी फैली हुई थी। थाई लोग कुछ अधिक उत्तेजित थे। वे अंग्रेज फौज के आने की प्रतीक्षा में थे। जापानियों को निःशस्त्र किया जा रहा था। कुछ जापानी जनरलों द्वारा आत्मबलि देने यानी हाराकिरी किये जाने के समाचार भी सुन पड़ते थे। इस उत्तेजित और क्षुब्ध वातावरण में भी २१ अगस्त को आजाद हिन्द दिवस सदा की भान्ति समारोह के साथ मनाया गया। सभी जातियों, सम्प्रदायों और वर्गों के सभी हिन्दुस्तानी उसमें पूरे उत्साह के साथ शामिल हुए। वक्ताओं ने पूर्वी एशिया मे आजाद हिन्द के लिये शुरू की गई लड़ाई पर रोशनी डाली और बताया कि किन किन कठिनाइयों तथा प्रतिकूल परिस्थितियों मे उसको शुरू किया गया था। सब तरह की मुसीबतें झेलते हुये उसको भविष्य में भी जारी रखने का निश्चय किया गया।

२६ अगस्त को उस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना का दुःखपूर्ण समाचार मिला, जिसको सुन कर सब निस्तब्ध रह गये। डोमी समाचार समिति ने यह समाचार दिया कि जिस हवाई जहाज में नेताजी अपने साथियों के साथ जापान जा रहे थे, वह फार्मोसा में ताईहोकू में दुर्घटना का शिकार हो गया। नेताजी तथा कुछ जापानी अफसरों के उसमें स्वर्गवास होने और कर्नल हबीबुल रहमान के घायल होने की भी बात कही गई थी। उस पर सहसा किसी को भी विश्वास न हुआ। वही समाचार जब टोकियो, दिल्ली, लन्दन, सान्फ्रांसिस्को आदि से दोहराया गया, तब हिन्दुस्तानियों को लाचार हो उस पर विश्वास करना पड़ गया। चारों ओर दुःख

की काली घटायें छा गईं। थाई, चीनी, जापानी और बर्मी आदि दुःख सागर में डूब गये। ऐसे प्रभावशाली और शक्तिशाली हिन्दुस्तानी नेता के देहावसान से हुई इस भारी क्षति को सभी समान रूप से अनुभव करने लगे। जो भी हिन्दुस्तानी बच्चा-बूढ़ा स्त्री-पुरुष इस दारुण समाचार को सुनता फूट-फूट कर रोने लगता। आजाद हिन्द संघ के सदर मुकाम में २४ अगस्त को शोक सभा का आयोजन किया गया। भवन में नेताजी का एक विशाल चित्र रखा गया। उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये लोगों ने उसको फूल मालाओं से ढक दिया। सबके चेहरों पर गहरी वेदना और व्यथा छाई हुई थी। अपने नेता के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने को वे वहां इकट्ठे हुए थे। आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियां अपने सैनिक वेश में उपस्थित हुईं थीं। थाई सरकार के प्रतिनिधियों के अलावा जापानी जनरल, जापान, जर्मनी तथा अन्य राष्ट्रों के बैंकौक-स्थित राजदूत भी वहां आये। आजाद हिन्द के महान् नेता के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये उन्होंने उनके चित्र पर फूलमालायें अर्पित कीं। उसी बीच में पानी बरसना शुरू हुआ और खूब जोरों से बरसने लगा। उसकी कुछ भी परवा न कर आजाद हिन्द फौज ने अपने राष्ट्रपति और सिपहसालार की स्वर्गीय आत्मा को सलामी दी। सबने खड़े होकर दो मिनट शान्त रह कर उसकी शान्ति और सद्गति के लिये प्रार्थना की। थाईलैण्ड के आजाद हिन्द संघ के प्रधान ने कुछ शब्द कहे। बहुत ही गम्भीर वातारण पैदा हो कर उपस्थित लोगों की आंखों में आंसू भर आये।

सब ओर नेताजी की ही चर्चा सुनने में आने लगी। अनेक तरह के समाचार सुन पड़ने लगे। नेताजी की मृत्यु के समाचार को निराधार भी बताया जाने लगा। धीरे-धीरे उनके जीवित होने की भी बातें कही जाने लगीं। बाद में मृत्यु के समाचार पर किसी को भी विश्वास न रहा। कोई भी यह सुनने तक को तय्यार न था कि नेताजी इस संसार में नहीं हैं।

इस स्थिति में भी आजाद हिन्द संघ का काम बराबर नियमित रूप

से चल रहा था। लगभग दो सौ कार्यकर्त्ता थाई प्रदेश की कमेटी में, साठ सदर मुकाम में और बीस-पच्चीस आजाद हिन्द सरकार के केन्द्रीय कार्यालय में काम पर तैनात थे। इनमें सरदार ईशरसिंह, श्री परमानन्द, मालमन्त्री श्री ए० एन० सरकार, मन्त्री की हैसियत से काम करने वाले सेक्रेटरी श्री जे० ए० थिवी, सेनाविभाग के कार्यकर्त्ता-मन्त्री श्री करीम गनी और आजाद हिन्द सरकार तथा संघ के सलाहकार श्री डी० एम० खान और श्री देवनाथ दास के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री ए० एन० सरकार और श्री जे० ए० थिवी नेताजी के सिंगापुर से आने से पहिले ही मलाया चले गये थे और श्री देवनाथ दास १७ अगस्त को नेताजी के साथ विदा हो गये थे।

३. अंग्रेज सेना का पदार्पण

अंग्रेज सेना के प्रतिनिधियों ने २६ अगस्त के आस-पास बैंकौक में पदार्पण किया। सबसे पहिले आने वालों में कर्नल शिवदत्तसिंह और मेजर ब्राउन थे। उन्होंने आते ही थाई सरकार से यह घोषणा करवाई कि आजाद हिन्द सरकार और आजाद हिन्द संघ के कार्यकर्त्ता और सदस्य 'शत्रु देश के निवासी' माने जायेंगे। दूसरी घोषणा में निम्नलिखित व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से मित्र राष्ट्रों का दुश्मन ठहराया गया था:—

(१) श्री परमानन्द

(२) पं० रघुनाथ शर्मा—थाई प्रादेशिक कमेटी के आप अर्थमन्त्री थे और थाईलैण्ड में आपका प्रमुख व्यक्तियों में स्थान था।

(३) श्री करीम गनी

(४) डी० एम० खान

(५) श्री सेनगुप्ता (मालमंत्री के सेक्रेटरी)

वस्तुतः सरदार ईशरसिंह थाईलैण्ड में सारे संगठन के प्राण थे। इस सूचि में उनका नाम न होना अचरज की बात थी। फिर भी उनके मकान पर थाई पुलिस का पहरा बिठा कर उनको अपने ही मकान में नजरबन्द कर

दिया गया था। आजाद हिन्द संघ की बर्मा प्रादेशिक कमेटी के प्रधान श्री बी० प्रसाद के मकान पर भी पुलिस का पहरा बिठा कर उनकी गति-विधि पर भी रोक लगा दी गई थी।

३० अगस्त को मित्र राष्ट्रों के दुश्मन ठहराये गये लोगों को रिहा करके ३१ अगस्त को मेल-मिलाप और सुलह की चर्चा शुरू की गई। आजाद हिन्द सरकार और संघ के प्रधान श्री परमानन्द से बातचीत चलाने के लिये कर्नल शिवदत्तसिंह उनके दफ्तर में आये। जनरल जे० के० भोंसले ने भी उस चर्चा में भाग लिया। यह समाचार चारों ओर फैल जाने से बहुत बड़ी भीड़ वहां जमा हो गई। बातचीत समाप्त होने पर श्री परमानन्द ने उत्सुक जनता को बताया कि अंग्रेज सरकार की ओर से कर्नल शिवदत्तसिंह ने निश्चित आश्वासन दिया है कि संघ के काम में कुछ भी हस्तक्षेप न किया जायगा। इसके बदले में मांग यह की गई है कि संघ के कार्यकर्त्ताओं और जनता की ओर से अंग्रेज सेना पर न तो कोई बुरा असर डाला जायगा और न उनकी गति-विधि में बाधा ही पैदा की जायगी। गगनभेदी करतल ध्वनि के बीच यह घोषणा सुनी गई। 'जय-हिन्द' के नारों से कर्नल शिवदत्तसिंह का स्वागत किया गया और भीड़ में से मुश्किल से रास्ता बना कर वे बाहर निकल सके।

कर्नल शिवदत्तसिंह के आश्वासन और बातचीत पर पूरा विश्वास करते हुये श्री परमानन्द ने दो सन्देश जारी किये। एक जनता के नाम था और दूसरा था आजाद हिन्द संघ के कार्यकर्त्ताओं के नाम। उनमें कहा गया था कि इस सामयिक पराजय से निराश न होकर हमें हिन्द की आजादी के लिये अपना प्रयत्न जारी रखना चाहिये। नेताजी की अनुपस्थिति में लोगों से इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व को स्वीकार करने का अनुरोध किया गया था। 'स्वदेश' के शीघ्र ही स्वतन्त्र होने की आशा भी प्रगट की गई थी। परिणाम इसका यह हुआ कि आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द संघ और उसके प्रकाशन विभाग के दफ्तरों पर तुरन्त ताला जकड़ दिया गया। उसका साइक्लोस्टाइल तथा छपाई का सारा सामान

जब्त कर लिया गया और थाई पुलिस का उनपर पहरा बिठा दिया गया। थोड़े ही दिनों में सारा फर्नीचर और दूसरा सामान, सारे प्रकाशन तथा विज्ञप्तियां वहां से उठा ली गईं। संघ के खजाने में एक लाख की जमा रकम भी जब्त कर ली गई, जो थाई सिक्कों में जमा थी। दफ्तरों पर शान के साथ फहराने वाले तिरंगे झण्डे और वहां पर लगे हुए नेताजी के चित्र भी उतार लिये गये।

इसी बीच में फील्ड सेक्यूरिटी सर्विस के सिपाही भी आ पहुंचे। उनमें दो हिन्दुस्तानी पुलिस अफसर थे। एक थे बंगाल-पुलिस के इंस्पेक्टर मि० दे और दूसरे थे पंजाब पुलिस के दारोगा मि० नगीनासिंह। अंग्रेज कर्नल फेना उनका बड़ा अफसर था। उनके आते ही आजाद हिन्द सरकार के मन्त्री और उनके सलाहकार जेलों में बंद कर दिये गये। गिरफ्तारियां इस तेजी से होनी शुरु हुईं कि एक पखवारे में कोई पैंतीस व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। मैं अपने साथियों के साथ बैंकौक से जब ४ नवम्बर को इम्फाल के लिये रवाना हुआ था, तब भी गिरफ्तारियां जारी थीं। कुछ को रिहा भी किया जा चुका था। गिरफ्तार किये गये लोगों में कुछ प्रमुख लोगों के नाम मुझे याद हैं। वे ये हैं:—सरदार ईशरसिंह, सर्वश्री परमानन्द, करीम गनी, डा० एम० खान, वी० प्रशाद, सेनगुप्ता, पण्डित रघुनाथ शर्मा, डा० पी० एन० शर्मा, हरबंसलाल, मौलवी अली अकबर, बी० ए० कपासी, माघेरसिंह, अमरसिंह, जे० डी० महताना, नारायण मैनन, ए० के० चटर्जी, दलजीतसिंह और सेठ नारायणसिंह नरुला।

इनको एक ऐसे शैड में रखा गया, जिसे अस्तबल ही कहना चाहिये। उसके बीचोबीच पखाना था, जिससे चारों ओर सदा ही दुर्गन्ध बनी रहती थी। साधारण कैदियों का-सा उनके साथ व्यवहार किया जाता था। भोजन उनको बाहर से जरूर भेजा जा सकता था। बाद में यह सहूलियत भी छीन ली गई थी। शाम को आधे घण्टे के सिवाय उनको उस शैड से बाहर न आने दिया जाता था। इसी आध घण्टे में स्नान

और रिश्ते-नातेदारों से मुलाकात भी कर लेनी होती थी। थाई पुलिस का व्यवहार सहृदय था, किन्तु उसको कठोरता से काम लेने का हुक्म दिया गया। बाद में बाहर वालों से मिलना-जुलना तथा बात करना भी भयानक समझा गया और वह भी बंद कर दिया गया।

आजाद हिन्द सरकार और संघ के लोगों को पुलिस तरह तरह से तंग करने लगी। उनको मिलने के लिये बुलाकर उनसे तरह-तरह के प्रश्न किये जाते। जब वे इस पर भी दृढ़ रहते, तो उनको गिरफ्तार करने की धमकियां दी जातीं। कर्नल फेनी इन सब कार्यवाइयों के मुखिया थे। इनसे कुछ भी मतलब निकलता न देख कर कर्नल फेनी ने कार्यकर्ताओं को तंग करना शुरु किया। धीरे-धीरे उनकी चारपाइयां, चटाइयां और अन्य जरुरी समान भी उनके रहने के स्थानों से हटाया जाने लगा। प्रकाशन विभाग के दो रेडियो सैट भी उठा लिये गये। सब स्थानों पर पुलिस तैनात कर दी गई। उनको कहा गया कि वे कैद में हैं और किसी भी हालत में बिना अनुमति के बैंकौक से बाहर नहीं जा सकेंगे। इतना ही नहीं, राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष स्वामी सत्यानन्द पुरी द्वारा संस्थापित थाई भारत सांस्कृतिक लॉज और उनकी मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में थाई तथा भारतीय लोगों द्वारा स्थापित स्वामी सत्यानन्द पुरी पुस्तकालय को भी एकाएक बंद करके ताला लगा दिया गया, नेताजी के चित्र और आजाद हिन्द आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें वहां से हटा ली गईं। थाई सरकार के परराष्ट्र विभाग के स्थायी सलाहकार प्रिंस वान विद्याकरण इस संस्था के संरक्षक थे और अब भी हैं।

दूसरी ओर पुलिस अफसर अपने हाथ गरम करने में लगे हुये थे। इस बारे में बहुत सी रिपोर्टें भी ऊपर पहुंचाई गईं। गैरकानूनी तरीकों से हिन्दुस्तानी व्यापारियों को तंग करके उनसे पैसा और सामान लिया जाने लगा। कुछ फौजी गोरों और दूसरे लोगों ने भी हिन्दुस्तानियों पर भीषण ज्यादतियां करनी शुरु कर दी थीं। सशस्त्र फौजी धनी हिन्दुस्तानियों के घरों पर छापा मार कर लूट-खसोट करने लगे। संघ के

उत्साही कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से इस लूटपाट का शिकार बनाया जाने लगा। उदाहरण के लिये पण्डित रघुनाथ शर्मा के घर पर की गई लूट का उल्लेख करना आवश्यक है। रात को ६ बजे उनका घर एकाएक घेर लिया गया। छापा मारने वालों में गोरों के साथ कुछ एशियाई भी थे। वे छोटा फौजी गाड़ी पर सवार होकर उनके मकान पर आये। गाड़ी को उन्होंने सड़क पर छोड़ दिया। शर्माजी के बहनोई श्री दयालदास पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी गई और पूछा गया कि वे आजाद हिन्द संघ के प्रमुख कार्यकर्ता हो नहीं हैं। फिर उनसे मकान की तलाशी लेने के लिये कहा गया। श्री दयालदास ने किसी प्रकार का सन्देह न किया। घर के चारों ओर सशस्त्र पहिरा बिठा दिया गया। घर के लोगों और स्त्रियों तक को हिलने-डुलने से बंद कर दिया गया। छः ट्रंक घर में से निकाल लिये गये। इनमें ५० हजार की कीमत की नगदी, कीमती आभूषण और कपड़े आदि थे। श्री दयालदास और श्री राजऋषि को साथ चलने को मजबूर किया गया। फौजी मोटर के पास आकर श्री राजऋषि की सोने की घड़ी और बटुआ भी जबरन् छीन लिया गया। बटुए में काफी रुपये थे। दोनों को धत्ता बताकर लुटेरे अपनी मोटर और लूट के समान के साथ अंधेरे में नौ दो ग्यारह हो गये। श्री दयालदास ने फौजी पुलिस में रिपोर्ट की। लूटेरों को पहचानने के लिये उनको कई दफ्तरों में घुमाया गया और दूसरे दिन हवाई अड्डे पर भी ले जाया गया, जहां से कुछ आस्ट्रेलियन सिपाही स्वदेश वापिस लौट रहे थे। पर, वे किसी को भी पहचान न सके। कर्नल शिवदत्तसिंह अपने को हिन्दुस्तानियों के हितों का रक्षक बताते थे। उन्होंने भी इस पर ध्यान न दिया। अनेक घटनाओं में से यह सिर्फ एक है।

दक्षिण स्याम के चुम्फोन और उत्तर स्याम के च्यांगमाई में भी ऐसी ही शिकायतें सुनने में आईं। वहां भी व्यापारियों को तंग करके साहबों के नाम पर लोगों से रुपया-पैसा और सामान ऐंठा जाने लगा। लोगों को गिरफ्तार और तंग करना तो साधारण बात थी। आजाद हिन्द

संघ के कार्यकर्ताओं को बैंकोक में बुरी तरह तंग किया जाने लगा। उनको दयनीय स्थिति में डाल दिया गया। उनके लिये जीवन-निर्वाह करना भी कठिन हो गया। वहां की भाषा 'थाई' होने से हिन्दुस्तानियों के लिये दफ्तरों या फर्मों में काम कर सकना संभव न था। अंग्रेजों के नीचे काम करना उन्हें पसंद न था और न अंग्रेज ही उनसे काम लेना चाहते थे। उनके लिये अपना व्यापार करने के सिवा दूसरा चारा न था। लेकिन, पूंजी और अनुभव के बिना यह भी संभव न था। संघ के कार्य-कर्ताओं के पास न तो पूंजी थी और न अनुभव ही। परिणाम यह हुआ कि वे दर-दर धक्के खाने लगे और उनको कोई पूछने वाला भी न रहा। अपने घरों को छोड़े हुये उन्हें कई वर्ष हो गये थे और स्वदेश लौटने को वे उतावले हो रहे थे।

थाई सरकार का रुख बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण था। हिन्दुस्तानियों की आजादी की आकांक्षा के साथ भी उसकी पूरी सहानुभूति थी। यह भी उसे मालूम था कि हिन्दुस्तान के आजाद हुये बिना उसकी आजादी और आर्थिक हित भी सर्वथा सुरक्षित नहीं है। इस लिये उसका बस चलता, तो उसने हिन्दुस्तानियों को स्वदेश लौटने के लिये सब प्रकार की सुविधा देकर समुचित व्यवस्था भी कर दी होती। लेकिन, ब्रिटिश सरकार की वजह से वह लाचार थी। उसके लिये कुछ भी कर सकना संभव न था।

४. आजाद हिन्द फौज की स्थिति

जापान के पराजय के समय बैंकौक में आजाद हिन्द फौज के फौजियों की संख्या दो हजार से ऊपर थी। नागरिकों में से भरती हुये लोगों को नागरिक जीवन बिताने की अनुमति दे दी गई थी। हिन्द चीन और मलाया निवासियों को भी अपने स्थानों पर लौटने की सुविधा दे दी गई थी। बाकी बचे हुओं में १५०० के लगभग तो अंग्रेज सेना से और ३८८ नागरिकों में से भरती हुये थे।

कर्नल शिवदत्तसिंह का रुख भी बदल गया । उसने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों और अफसरों के साथ भी उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार का व्यवहार करना शुरू कर दिया । उसने अफसरों के लिये उनके आजाद हिन्द फौज के पदों का प्रयोग न कर उनका यथोचित सम्मान करना भी बंद कर दिया । यहां तक कि जनरल भोंसले का भी वह यथोचित मान न करता था । उनको आजाद हिन्द फौज के पद एवं प्रतिष्ठा के अनुसार 'जनरल' न कह कर 'मेजर' ही कहा करता था । लेकिन, आजाद हिन्द फौज के अफसरों और सैनिकों की दृढ़ता के सामने उसकी दाल न गली । फिर भी उसने उन मे फूट डालने का यत्न किया । वह नागरिक फौजियों की अपेक्षा अंग्रेज फौज में से आजाद हिन्द फौज में भरती हुओं के साथ अधिक अच्छा व्यवहार करने का दिखावा करने लगा । उनको वह 'भाई' या 'साथी' कह कर पुकारने लगा । उसने यह भी यत्न किया कि आजाद हिन्द फौज के लोग आजाद हिन्द फौज के चिन्ह उतार कर अंग्रेज सेना के पुराने चिन्ह लगाने लगें । लेकिन, इस विषैले प्रचार का कुछ भी असर किसी पर भी नहीं पड़ा । किसी ने भी अपने ध्येय से गिरना पसंद न किया । नेताजी को दिये गये विश्वास पर वे चट्टान की तरह अटल बने रहे । उनमें फूट डालना संभव न था । पुराने फौजियों को नयों से अलग करना मुश्किल होने पर भी अन्त मे किसी प्रकार कर्नल शिवदत्त-सिंह अपने इस यत्न में सफल हो गया । कोई और चारा न देख कर उसने नये फौजियों को रिहा करने का हुक्म दिया । जब वे स्वेच्छा से जाने को तय्यार न हुये, तब उनको जबरन् कैम्प में से निकाल दिया गया ।

इन ज्यादतियों पर भी आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने अपनी देश-भक्ति पर आंच न आने दी । वे अपने निश्चय से टस से मस न हुए । वे 'जयहिन्द' से एक दूसरे का अभिवादन करते थे और कौमी गीत उनके कैम्प में बराबर गाये जाते थे । बैंकौक के हिन्दुस्तानी, विशेष कर युक्तप्रांत के ग्वाले उनकी सहायता करने में निरन्तर लगे रहे । कैद में भी उन्होंने

उनकी सहायता करने में कुछ भी उठा न रखा। दूध, घी, फल और भाजी आदि वे बराबर पहुँचाते रहे। मेजर ब्राउन को यह सहन न हुआ। उसने नागरिकों का कैम्प में आना-जाना बंद कर दिया। ग्वालों ने भी हिन्दुस्तानी सन्तरियों के साथ दोस्ती करके तिकड़म से रसद पहुँचाने का काम जारी रखा। रसद पहुंचाने वाले अफसरों को भी उन्होंने गाठ लिया। इस अपराध में चौदह फौजी गिरफ्तार भी किये गये।

बैंकौक के चीनियों ने भी बहुत सहानुभूति और उत्साह का परिचय दिया। इससे पहिले इस प्रदेश में चीनियों और हिन्दुस्तानियों में परस्पर इतनी सहानुभूति कभी भी दीख नहीं पड़ी। शाब्दिक हमदर्दी से आगे बढ़ कर उन्होंने क्रियात्मक रूप से भी अपनी सहायता का परिचय दिया। अपने राष्ट्रीय दिवस पर उन्होंने फल और भाजी आदि से भर कर एक लारी कैम्प में भेजी। अंग्रेज कैम्प कमाण्डेण्ट इस पर बहुत भन्नाया; लेकिन, वह चीनियों को नाराज करने के भय से इनकार न कर सका।

कैम्प से जबरन निकाले गये नागरिक फौजियों की हालत बहुत दयनीय हो गई। उनके पास प्रायः कुछ भी न था। उनमें से अनेकों ने सेना में भरती होने के समय अपना सर्वस्व आजाद हिन्द संघ के अर्पण कर दिया था। ऐसे लोग तो एक दम ही निराश्रित हो गये थे। यदि कहीं ग्वाला भाइयों ने उनकी उस समय सहायता न की होती, तो उनकी दुरवस्था का कोई ठिकाना न रहता। इसके अलावा मलाया से रिहा किये गये पांच सौ नागरिक सिपाही भी बैंकौक आ गये थे। ये अधिकतर युक्तप्रान्त के निवासी थे। वे भी एकदम असहाय और निराश्रित हो थे। आजाद हिन्द संघ के अर्थ विभाग ने अपने फण्ड में से उनको आर्थिक सहायता देने का यत्न किया। लेकिन, पंडित रघुनाथ शर्मा की गिरफ्तारी और संघ के फण्ड के जब्त कर लिये जाने से यह काम बीच में ही रुक गया। ग्वाला भाई स्वयं भी कोई धनी या साधन-संपन्न न थे। फिर भी उन्होंने दिल खोल कर अपने असहाय भाइयों की सराहनीय सहायता की। मलाया से आने

-बाल मलेरिया से पीड़ित थे और उनके पास दवादारू का भी अभाव था। फिर भी उन्होंने हिम्मत न हारी। मेहनत-मजूरी करके अपना काम चलाना शुरू किया। उन्होंने दरबानी और दूध बेचने आदि का काम करने में भी संकोच नहीं किया। इस प्रकार भारत माता की सेवा के लिए अपार कष्ट सहने के लिये उनकी जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है। लेकिन, यह कितने खेद की बात है कि भारत माता के थाईलैण्ड, मलाया और बर्मा में रहने वाले इन सपूतों ग्वालों और कुलियों के बारे में हमारे देश के लोग प्रायः कुछ भी नहीं जानते।

जापान के पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को तीन से कुछ सप्ताह अधिक ही अपने कैम्पों में रहने दिया गया। कैम्पों की व्यवस्था उनके अपने दलपतियों के हाथों में थी। अनुशासन और नियंत्रण के बारे में कभी कोई शिकायत सुनने में नहीं आई। २६ सितम्बर को उनको युद्ध-बन्दियों के नजरबन्द कैम्प में जाने का हुक्म दिया गया। जिन कैम्पों में वे थे, वे बैंकौक के इधर-उधर चालीस मील तक के घेरे में फैले हुये थे। वहां से उनको लाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। वे अपने खर्च से वहां आये। वहां पहुँचते ही उनके साथ मनुष्यता से हीन दुर्व्यवहार किया जाने लगा। पशुओं की तरह उनको बड़े बड़े गोदामों में रखा गया। पानी और पाखाने तक का भी प्रबन्ध ठीक न था। भोजन की भी समुचित व्यवस्था नहीं की गई थी। आजाद हिन्द संघ की ओर से यथासंभव सारी व्यवस्था की गई।

'सलामी' को लेकर एक समस्या पैदा हो गई। आजाद हिन्द सैनिकों से कहा गया कि वे अंग्रेज अफसरों को नियमित रूप से सलामी दिया करें। उन्होंने कहा कि वे युद्ध-बंदी होने के नाते सिपाहियों और अफसरों सब को एक-सी सलामी देंगे। उन्होंने अपने को अंग्रेज सेना का सिपाही मानने और अंग्रेज अफसरों को सलाम करने से इनकार कर दिया। आज्ञा-भंग करने पर उनके प्रति सख्ती करने की

धमकियां दी गईं । भरी हुई पिस्तौल और संगीनें उनकी छाती पर तानी गईं । पर, वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे । अन्त में उनमें से अनेकों को जेल की काल कोठरियों में बंद किया गया । कुछ दिन बाद ऐस० ए० मल्लिक, ठाकुरसिंह, रतूरी, चोपड़ा सरीखे ऊंचे अफसरों को, जो कर्नल थे और कप्तान गनेशीलाल को भी जेल में बंद कर दिया गया । बाद में उनको हिन्दुस्तान लाया गया । उनको सारी शरारत की जड़ समझा जा रहा था । लेकिन, आजाद हिन्द फौज के सैनिक इस पर भी टस से मस न हुये । उन्होंने अपने स्वाभिमान पर आंच न आने दी ।

अन्त में चौथी-पांचवीं गुरखा राइफल सेना के कमाण्डर स्कौच कर्नल ने अफसरों को इकट्ठा करके बल-प्रयोग करने की धमकी दी । लेकिन, उसका किसी पर भी कुछ भी असर न पड़ा । तब नये तरीके काम में लाये जाने लगे । अंग्रेज सेना के कर्नल कुलवन्तसिंह ने सब अफसरों को अलग अलग बुला कर उनको धमकाना या ललचाना शुरू किया । लेकिन, ये सब चालें भी बेकार गईं ।

दो-एक अफसर जरूर कमजोर साबित हुये । वे अंग्रेज अफसरों की चाल में आ गये । एक तो उनमें बहुत ही हलका साबित हुआ । वह उनके हाथों में खेलने और उनके साथ खाने-पीने तथा मौज उड़ाने लगा । वह उनका कृपापात्र बन गया । एक और अफसर को अपने साथ मिलाकर उसने यूनिट कमाण्डरों को भी बरगलाना शुरू किया । लेकिन, वह बदनाम हो गया और आजाद हिन्द फौज वाले उसके नाम पर थूकने लगे । इस पर उसने अंग्रेज कैम्प कमाण्डर के साथ षड़यन्त्र रचना शुरू किया । उसने यूनिट-कम्पाण्डरों को बुला कर उनसे अनुरोध किया कि वे आजाद हिन्द फौज को फिर से अंग्रेज-सेना में परिणत करने में उसकी सहायता करें । लेकिन, वे सहमत न हुये । १० अक्तूबर को सभी आजाद हिन्द सैनिकों को बैरगनांग जेल में पहुंचा दिया गया । यह बैंकोक से दूर था । बाहर वालों को वहां नहीं जाने दिया जाता था ।

२.

१. बैंकौक से इम्फाल

आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द संघ और आजाद हिन्द फौज से सम्बन्ध रखने वालों की स्थिति सभी दृष्टियों से दयनीय बना दी गई। एक ओर अंग्रेज सेना ने दमन से काम लेना शुरू किया हुआ था और दूसरी ओर उनके लिये जीवन-निर्वाह की समस्या दिन पर दिन कठिन होती जा रही थी। इन दुःसह परिस्थितियों में मैंने बैंकौक से हिन्दुस्तान आने का निश्चय किया। लेकिन, समुद्र का कोई भी रास्ता खुला न था। खुश्की के रास्ते पैदल आने का विचार किया गया। मैंने अपने अन्य मित्रों से इस बारे में चर्चा की। मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे एक अन्यतम मित्र ने पहिले ही से मेरी तरह सोचना शुरू किया हुआ था। वह बड़ा बहादुर, साहसी और उद्यमी युवक था। उसके लिये मुझे अपार स्नेह था। आजाद हिन्द आन्दोलन में भी उसने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया था। वह अपने विचारों पर दृढ़ रहने और विघ्न-बाधाओं की रत्तीभर भी परवा न कर उनके अनुसार काम करने वाला था। मैं यहां उसका नाम न देने के लिये लाचार हूं। उसने, मैंने और एक और साथी ने मिल कर एक योजना बनाई और बैंकौक से भारत की ओर कूच करने का हमने निश्चय कर लिया। हमारे पास ऐसा कुछ लम्बा-चौड़ा सामान न था। कुछ पुस्तकें जरूर थीं, जो हमने अपने मित्रों को सौंप दीं। हम में से हर एक ने दरमियाने साइज का एक-एक चमड़े का बैग लिया। दो निकरें, दो कमीजें, एक मसहरी, दो बनियान, एक मामूली-सा कम्बल, एक टार्च, कुछ दियासलाई, मोमबत्ती, दो-एक पुस्तकें, लिखने के कागज और पैंसिल,—बस यही हमारा कुल सामान था।

२. ३००० मील की रोमांचकारी यात्रा

हम तीनों एक नवम्बर १९४५ को अपने स्थान से चल दिये। रात एक चीनी होटल में बिताई। सवेरे की गाड़ी से उत्तरी श्याम जाने के लिये हमने तीन टिकिट रात को ही खरीद लिये और सवेरे गाड़ी में सवार हो गये। बैंकौक से हमने भरे हुये हृदय से बिदा ली। आजाद हिन्द आन्दोलन और संगठन में बैंकौक का विशेष महत्व था। मेरे जीवन में भी उसका कुछ कम महत्व न था। आजाद हिन्द आन्दोलन की जिस सम्मेलन में १५ जून १९४३ को यहां नींव डाली गई थी, उसमें मैं जापान से चुने गये ग्यारह प्रतिनिधियों के साथ सम्मिलित हुआ था और यहां मैंने अपनी आयु के महत्वपूर्ण तीन वर्ष बड़े गर्व एवं गौरव के साथ बिताये थे। पूरी योजना पर विचार कर लेने के बाद भी हमें अपने रास्ते का ठीक ठीक पता न था। अन्धेरे में रास्ता ढूंढने वाले की तरह हम लोग बैंकौक से चल दिये।

गाड़ी में भीड़ का क्या कहना था? गाड़ी में कहीं तिल रखने को भी जगह न थी। रात को १० बजे हम लोग विष्णुलोक पहुंचे। यहां से हमें दूसरी गाड़ी में बैठ कर लैम्पांग जाना था। यह स्थान बैंकौक से कोई ३५० मील दूर था। वहां से हमें फिर दूसरी गाड़ी पकड़नी थी। ३ नवम्बर की सवेरे हम लोग एक नदी पर पहुंचे। उसका पुल युद्ध में हुई बमवर्षा का शिकार हो चुका था। किश्तियों से हम पार हुये। सामने गाड़ी तो खड़ी थी, पर उसका इञ्जिन गायब था। चार घण्टों की प्रतीक्षा के बाद इञ्जिन आया। वह उन्नीसवीं सदी का बना हुआ जान पड़ता था। इतना छोटा था कि दो डिब्बों से अधिक को खींच सकना उसके लिये संभव न था। लेकिन, यात्रियों की संख्या बहुत अधिक थी। हमें भीतर स्थान न मिला, तो हम बंदरों की तरह छत पर सवार हो गये। लेकिन, बंदरों की तरह हम निडर और निश्चिन्त न थे। जान जोखिम में डाल कर हम सवार हुये थे। लैम्पांग तक का १५० मील का रास्ता

३६ घण्टों में पूरा हुआ। रास्ते में पांच-छः बार इंजिन बिगड़ा होगा और हमको घण्टों बीहड़ जंगलों तथा पहाड़ों में बिताने पड़े। भोजन-पानी का रास्ते में कहीं पता न था। अन्त में किसी तरह लैम्पांग पहुंच कर हम दूसरी गाड़ी पर सवार हुये। यह गाड़ी अच्छी थी। ५ नवम्बर को दिन के १ बजे हम च्यांगमाई पहुंच गये। वहां हमने एक चीनी होटल में डेरा डाला, हजामत बनाई और आराम से स्नान किया। चार दिनों बाद स्नान और हजामत करना हमें नसीब हुआ था। हमारे पास थाई सिक्के टिकाल्स दो हजार थे। उस समय पाच टिकाल एक रुपये के बराबर का थे। लेकिन, हमारे सहृदय मित्रों ने हम को २१०० के बदले में ७०० दिलवाने का प्रबन्ध कर दिया। कुछ मित्रों ने हमको वर्मा के रास्ते का भी पूरा पता दे दिया, जो जंगलों और पहाड़ियों में से होकर जाता था।

च्यांगमाई से ८ नवम्बर की सवेरे हम बस पर सवार हो कर ५३ मील की दूरी पर दुपहर को एक बजे चाएडाओ पहुंचे। रास्ता बहुत मनोहर था, जो पहाड़ियों में से होकर साप की तरह घूमता हुआ जाता था। लेकिन, हम रास्ते का आनन्द न लूट सके, क्योंकि हमारे सिर पर आगे के लम्बे रास्ते की चिन्ता सवार थी। चाएडाओ में भोजन की केवल एक ही दूकान थी और वह भी एक चीनी की थी। भोजन बहुत ही खराब था। यहा से २५ मील की दूरी पर बसे हुये नावाए गाव में हमें जाना था। यह गाव थाई-वर्मा की सीमा पर बसा हुआ था। रास्ते का हमें कुछ भी पता न था। हमने एक बैलगाड़ी किराये पर करने का यत्न किया। इसके सिवा कोई और सवारी थी ही नहीं। रास्ता मालूम न होने से भी उसका करना जरूरी हो गया। लेकिन, उसका भी मिलना इतना आसान न था। अनेक बैलगाड़ियां होने पर भी हमारे साथ जाने को कोई तय्यार न था। हमारे लिये उनकी भाषा भी ग्रीक थी। हमें सभी जगह एक ही उत्तर मिलता कि "कि काम बाहु का।" हमें इसका कुछ भी मतलब समझ में न आया। हमारी किस्मत ने हमारा साथ दिया।

नावाए जाने वाली एक बैलगाड़ी हमें मिल गई। उसको २५ टिकाल देने तय हुये। हम सामान लेकर उसके घर पहुंच गये। हमने बांस में बंद कुछ उबले हुये चावल और मूंगफली भी साथ में ले ली।

३. बर्मा की सीमा पर

सवेरे ५ बजे हमने अपनी अगली यात्रा के लिये कूच की। बैग बैलगाड़ी पर रख दिये गये। हमने पैदल चलना ही ठीक समझा। तीन-चार मील के बाद हमने कच्चा रास्ता पकड़ा, जो जंगलों में से होकर जाता था। उन घने जंगलों में हमें कई भयानक शक्लें दीख पड़ीं। हम सब सम्भावनाओं का सामना करने को तय्यार थे। लेकिन, कोई भी दुर्घटना न घटी। दुपहर को १ बजे हम नदी के किनारे एक छोटे से गांव में पहुंच गये। यहां हमने स्नान किया और दोस्त गाड़ीवान के साथ बैठकर भोजन किया। वह बूढ़ा मसखरे स्वभाव का था। उससे कोई पूछे या न पूछे, वह हर किसी से अचरज के साथ यह कहता था कि 'ये तीनों हिन्दुस्तानी नावाए जा रहे हैं।' सुनने वाले और भी अधिक अचरज प्रगट करते हुये कहते कि 'ओहो! बहुत ठीक !!' उनके लिये हमारा नावाए जाना असाधारण साहस था। वहां से हम आगे जा सकेंगे,--इस पर कोई भी विश्वास न करता था। रास्ते में कई छोटे-छोटे गांव आये। सभी जगह हमारी यात्रा पर अचरज प्रगट किया जाता और हमारा हिन्दुस्तान पहुँचना सन्देह एवं अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता। जहां भी कहीं हम किसी बस्ती या गांव के होने की कल्पना करते, तो हमें पता चलता कि यहां सीमा प्रदेश की पुलिस की चौकी थी और वहा पुलिस के सिवाय और कोई नहीं रहता था। वे हमसे टूटी-फूटी अंग्रेजी में पूछते कि "कहां जा रहे हो?" हम कह देते कि "हम स्वास्थ्य के लिये हवाखोरी करने आये हैं।" एक पुलिस वाले ने हमसे कहा कि "यहां तो मलेरिया का प्रकोप है।" "हम कल ही लौट जायेंगे,—कहकर हमने उसका समाधान कर दिया।

शाम को हम नावाए पहुँच गये और गांव के बाहर एक मकान में ठहर गये। अकेले होने से हमने अपने अगले रास्ते के लिये मनसूबे बाधने शुरू किये। उसी रात सीमा पार करना हमें उचित प्रतीत हुआ। लेकिन, हममें से एक को मलेरिया ने आ घेरा। बाकी दो गाँव में गये। एक थाइ महिला की कृपा से आराम से रात काटने को एक जगह मिल गई। सरदी होते हुये भी हमने रात आराम के साथ बिताई।

१० नवम्बर की सवेरे पुलिस अफसर ने हमें बुलाया। हमारे नाम व पते उसने नोट कर लिये। हममें से दो जंगल की ओर आगे का रास्ता पक्का करने गये। मैं गाव में ही रहा। वे दुपहर को लौटे। दस मील का चक्कर काट कर और थकान से चकनाचूर होकर वे वापिस लौटे। रास्ते का कुछ भी पता न चला। निराश होकर हम पीछे लौटने का विचार करने लगे। लेकिन, पीछे लौटने को कोई बैलगाड़ी न मिली। इसे भी बाद में हमने अपना अहोभाग्य ही समझा। अन्त में हमने गांव के मुखिया के पास जाने और उससे मिल कर आगे के रास्ते के सम्बन्ध में पता लगाने का निश्चय किया। जिस महिला ने पहिले दिन हमारे भोजन का प्रबन्ध किया था, मालूम हुआ कि वह उसी का पति था। उसके दांये हाथ में कैंसर का फोड़ा था। हमने उस पर पाउडर आदि लगाकर उसकी मरहमपट्टी की। उसकी पत्नी ने हमारी विशेष सहायता की और उसके कहने पर उसने हमको सीमा के पार पहुँचाना स्वीकार कर लिया। उसने हमें आगे के संकट से सावधान किया और अपने ही जोखिम पर आगे जाने की बात कही। आगे के चालीस मील में कहीं कोई बस्ती न थी। वह लम्बा बीहड़ जंगल सांपों और शेरों से घिरा हुआ था। हम अपने पथ से विचलित न हुये और हमने आगे बढ़ने का ही निश्चय किया।

४. बर्मा में प्रवेश

११ नवम्बर की सवेरे हमने अपना सामान संभाला। साथ में ऊबले हुये चावल, मिर्चें, नमक और पीने का पानी भी ले लिया। लड़ाई में

जापानियों ने तार के जो खम्भे लगाये थे, उनको लक्ष्य करके हमने आगे बढ़ना शुरू किया। दुपहर तक हमारा पानी समाप्त हो गया। हम इतने थक गये कि हमें अपने चमड़े के हलके बैग भी भारी मालूम होने लगे। किसी गांव, बस्ती और आदमी का कहीं अता-पता भी न था। पानी भी कहीं दीख न पड़ता था। उस घने जंगल में से हम दम साधे हुये चले जा रहे थे। आत्मरक्षा तक के लिये कोई हथियार हमारे पास न था। बीच बीच में ठहर कर और आराम करके हमने आगे बढ़ना शुरू किया। दुपहर को लगभग ३ बजे हमें अपनी पगडण्डी पर शेर के पैरों के ताजे निशान दीख पड़े। उससे साफ था कि शेर वहां कहीं आस-पास में ही है। हमने आत्मरक्षा के लिये लकड़ियों के डंडे बना कर हाथ में ले लिये। लेकिन, वे डंडे भी हमें भार लगने लगे। साढ़े तीन बजे एक पेड़ के नीचे हमने आराम करने को पड़ाव डाला। हममें से एक ने ऊपर देखा, तो वह आंवले का पेड़ था। हम एकाएक आंवले बटोरने में लग गये। पत्थर मार कर हमने काफी आंवले नीचे गिरा लिये। प्यास बुझाने को उनसे बहुत सहायता मिली। आंवलों से खीसे भरकर हम आगे बढ़े। रात कहीं जंगल में काटने की हम सोच ही रहे थे कि ४॥ बजे हमें एक घर की छत-सी दिख पड़ी। अथाह समुद्र में भटकते हुये जहाज के कप्तान को मानो प्रकाशस्तम्भ की किरण दीख गई। हमारे हृदयों में आशा की लहर दौड़ गई। खुशी में मैं अपने को संभाल न सका! "वह देखो, एक मकान दीख पड़ता है,"—मैंने चिल्ला कर कहा। साथियों ने भी 'हां' 'हां' कहकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। हमने समझा कि हम किसी गांव के आस-पास पहुँच गये हैं। कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि पानी भी दीख पड़ा। पर, वह बहुत गंदा था। हम गांव में घुसे और उसी मकान में डेरा डाला, जो हमें सबसे पहले दीख पड़ा था। हमारे अचरज का ठिकाना न रहा, जब हमने देखा कि न केवल वह मकान, अपितु सारा ही गांव खाली और वीरान पड़ा था। जोर जोर से आवाजें देने पर भी किसी ने हमारी आवाज का जवाब न दिया। एक-एक मकान

और झोंपड़ी देखने पर भी हमें कहीं भी कोई प्राणी दीख न पड़ा। प्रकाशस्तम्भ तो हाथ लग गया, पर उसमें रोशनी न थी। गांव में चारों ओर ऊंची-ऊंची घास उग आई थी। गांव अच्छा बड़ा जान पड़ता था। उसके बाहर संतरे, नींबू और केले आदि के पेड़ खूब लगे हुये थे। ऊंची और घनी घास में से होकर हम पेड़ों पर पहुँचे और फल तोड़कर हमने अपनी तृप्ति की। गांव के दूसरी ओर बहने वाले एक छोटे से नाले पर जाकर हमने मुंह-हाथ धोया और बांस की बनी हुई बोतलों में पानी भर लिया। शाम को ६॥ बजे हम अपने डेरे पर आ गये। जगह साफ करके आग सुलगाई गई। शाम समाप्त होकर ज्यों-ज्यों रात शुरू हुई, सरदी बढ़ती गई और जंगली जानवरों का डर भी बढ़ता चला गया। सरदी बहुत तेज थी और भय भी कुछ कम न था। दोनों को दूर करने का वहां एक ही उपाय था। उससे काम लिया गया। आग सुलगा कर हमने ठंडी हवा को गरम किया और हिंसक जानवरों के वहां आने की संभावना को दूर किया। रात को लगभग पांच बार हम आग सुलगाने के लिये उठे होंगे। उस भयभीत अवस्था में भी उस रात के लिये हम उस गांव के राजा थे। वहां हमें कोई भी पूछने वाला न था।

दूसरे दिन बड़ी सवेरे ही हमने आगे बढ़ने का निश्चय किया। लेकिन, एक रात्रि के अपने साम्राज्य की कुछ तो निशानी हमें वहां छोड़नी ही चाहिये थी। अपने साम्राज्य की राजधानी बनाये गये उस मकान की दीवार पर हमने अपने नाम लिखे और कुछ नारे भी लिख डाले। "नेताजी जिन्दाबाद" और "इन्किलाब जिन्दावाद" के साथ साथ हमने नेताजी के कुछ वाक्य भी लिख दिये। सवेरे ७ बजे 'चलो दिल्ली' का ध्येय सामने रखकर हमने आगे कदम बढ़ाया। टेलीग्राफ की तार और खम्भे ही हमारे साथी और पथप्रदर्शक थे। रास्ता कांटों से भरा हुआ था। सवेरे साढ़े आाठ बजे हमने एक और उजड़े हुये गांव में पैर रखा। उस गांव के भी उस समय हम ही राजा थे। वहां भी फलों के पेड़ थे। कुछ फल तोड़कर हमने नाश्ता किया और आगे का रास्ता नापना शुरु

किया। सवेरे ६ बजे हमें किसी के खांसने की आवाज सुन पड़ी। कोई तेतीस घण्टों बाद आदमी की आवाज सुनकर हमारे हृदय सहसा खिल उठे। हमें देखते ही वह बूढ़ा आदमी बच्चे की तरह डर कर दूर भागने लगा। हमने उसको पुकारा और अपने पास बुलाया।

"तुम कौन हो? जापानी तो नहीं हो?" डरी और सहमी हुई आवाज में उसने हम से पूछा।

"नहीं, हम हिन्दुस्तानी हैं।"—हमने उसको कहा।

ठण्डी सांस लेते हुए उसने कहा कि "दया है भगवान् की। मैंने तो तुमको जापानी ही समझा था। मैं वान मुखियाम से आ रहा हूं। तुम कहां जा रहे हो?"

"हम मोंगहान जा रहे हैं।"-एक ने हम में से कहा। फिर हमने उससे पूछा कि "जो दो गाव हम पीछे छोड़ आये हैं, उनके नाम क्या हैं?"

'वान नामलोई और वान खेओ,'—उस बूढ़े ने कहा।

इतनी-सी बात करने के बाद उसने अपना रास्ता पकड़ा और हम अपने रास्ते पर आगे बढ़े। घना जंगल, कंटीली झाड़िया और सूखा रास्ता हमारे साथी थे। पूर्वीय बर्मा की दक्षिणीय शाम स्टेट्स के प्रदेश में हम पहुंच चुके थे। थोड़ी ही देरी में हमें तीन स्त्रिया दीख पड़ीं। वे हमें देखते ही जंगल में भाग गईं। उनके भागने का कारण हमें कुछ भी पता न चला। कोई आध मील और आगे जा कर एक युवक हमें दीख पड़ा। वह भी हमें देखते ही भाग खड़ा हुआ। उसके बाद हमें कई आदमी मिले। हाथ में तलवार और अन्य हथियार होने पर भी वे हमें देखते ही भाग खड़े होते। हमें कोई विशेष भय तो न था। इतना डर जरूर था कि कहीं कोई भय में ही हम पर आक्रमण न कर बैठे। १ बजे दुपहर को हम एक नदी के किनारे पहुँचे। उसके दूसरे किनारे पर एक अच्छा-सा गांव बसा हुआ था। हमें बाद में पता चला कि उसका

नाम वान तुंगकापुआन था। अपना सामान एक जगह संभाल कर हम में से एक लकड़ी के पुल पर गया। जैसे ही वह उस पर से पार हुआ कि सारे गांव में आतंक छा गया और लोगों ने इधर-उधर भागना शुरू कर दिया। अन्त में एक बौद्ध भिक्षु से उसकी भेट हुई। उसने यह जान कर कि हम जापानी नहीं, हिन्दुस्तानी हैं; लोगों को सांत्वना दी। उसने हमारे साथी को चाय भी पिलाई।

मैंने भी गाव की ओर जाने का विचार किया और कुछ ही कदम आगे बढ़ा था कि एक बूढ़ा आदमी हमारे पास आया। हमारा तीसरा साथी उसकी बात न समझ सका। उसने मुझे पुकारा। वह बूढ़ा आदमी थाई-सा जान पड़ता था। उसकी भाषा थाई से मिलती-जुलती-सी थी। मैंने उससे बातचीत शुरू की।

"कहिए, क्या चाहते हैं ?"—मैंने उससे पूछा।

"आप कितने साथी हैं ?"—उसने प्रश्न किया।

"केवल तीन।"

"कोई और तो पीछे नहीं आ रहा ?"

"नहीं।"

"कोई जापानी तो तुम्हारे साथ नहीं हैं।"

"नहीं; वे तो लड़ाई में हार चुके हैं। उनको कैद कर लिया गया है। हम हिन्दुस्तानी हैं।"

यह बातचीत अभी चल ही रही थी कि सार्जेएट के वेश में एक शामी सात सिपाहियों के साथ वहां आ गया। उनके पास छोटी-मोटी लड़ाई का पूरा सामान था। राइफल, वेयोनेट, मशीनगन आदि से वे लैस थे। वे कुछ दूरी पर खड़े थे। मैंने उनके आने का कारण उस बूढ़े से पूछा। मैंने उससे कहा कि इनको पास बुला लो। हम दुश्मन नहीं, दोस्त हैं।

कुछ कानाफूसी करने के बाद वे हमारे पास आये। पास आते ही सार्जेएट ने चिल्ला कर पूछा कि "तुम कौन हो ?"

"हिन्दुस्तानी,"—मैंने जबाब दिया ।

"कितने ?"

"केवल तीन ।"

"अधिक तो नहीं ।"

"नहीं ।"

"मैं तुम्हारी तलाशी लेना चाहता हूं ।"

"ठीक है । ले लो,"—हमने कहा ।

सार्जेण्ट ने हमारी तलाशी ली और पूछा कि "तुम्हारे पास कोई हथियार तो नहीं है ?"

"नहीं, कुछ नहीं ।"—उसको उत्तर दिया गया ।

इतने में ही हमारा तीसरा साथी भी गांव से लौट आया । सार्जेण्ट ने हमें अपना सामान उठाकर अपने साथ चलने को कहा । वह हमें कैदी बना कर अगले गांव वान मुखियाम ले आया । दो गांवों में बादशाहत करने के बाद अब हमें कैदी बनना पड़ा ।

५. कैदी कि मेहमान ?

भूखे, प्यासे और थके हुये हम कड़ी धूप में कोई घण्टाभर चलने के बाद वान मुखियाम पहुंचे । सार्जेण्ट के पीछे पीछे हम चल रहे थे और हमारे पीछे गांव वालों की खासी भीड़ थी, जिनके हाथों में बन्दूकें और तलवारें आदि थीं । एक अच्छा-खासा जलूस ही बन गया था । उस जंगली प्रदेश में हमारे सरीखे बादशाहों का और स्वागत ही क्या हो सकता था ? हम गाव की सीमा पर पहुंचे ही थे कि एक बर्मी आया और टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में हम से बात करने लगा । उसके साथ हिन्दुस्तानी में बात करने पर उनको पूरा भरोसा हो गया कि हम जापानी नहीं, हिन्दुस्तानी ही हैं ।

दुपहर के एक बजे उस जलूस के साथ हमने गांव में प्रवेश किया । सार्जेण्ट हमें अपने घर पर ले गया । उसका नाम था श्रीयुत वी० चिंगता ।

उसने गांव के लोगों को वहां इकट्ठा किया। वे चारों ओर से हम को घेर कर बैठ गये। सार्जेण्ट ने एक पत्र लिखा और हमें पता चला कि हमारे बारे में आगे के गांव में उसने सूचना पहुंचाई थी। गांव वाले हम को कौतुक-भरी दृष्टि से देखने लगे और हम से धीरे-धीरे सवाल-जवाब भी करने लगे। जापानियों के पराजय का समाचार जान कर उनको बहुत खुशी हुई। अंग्रेजों ने हवाई जहाजों से विज्ञप्तियां गिरा कर उनको इसकी सूचना दी थी और युद्ध के समाप्त होने का ऐलान किया था। लेकिन, वे लोग चक्की के दो पाटों में पिस चुके थे। दोनों का उनको काफी कटु अनुभव था। जापानियों के प्रति उनको घृणा थी, तो अंग्रेजों के प्रति था अविश्वास। इस लिये उन विज्ञप्तियों पर उन्होंने विश्वास नहीं किया।

फिर हमारी तलाशी ली गई। सब सामान की सूची बनाई गई। गांव के सभी लोग हमारे सामान को कौतुक से देख रहे थे। हमारे साथ कोई हथियार न देख कर उनको बहुत विस्मय हुआ। बिना किसी हथियार के पीछे का रास्ता, जंगल और पहाड़ियां हमने कैसे पार कीं? शेरों और सांपों के राज्य में से हम कैसे सुरक्षित निकल आये? डाकुओं और लुटेरों का भी क्या हमें कोई भय न था? ये और ऐसे प्रश्न वे एक-दूसरे से पूछने लगे। हमारे खीसों की भी झड़ती ली गई। जिनको वे शायद बन्दूक की गोलियां समझे हुये थे, उनको आंवले देख कर वे सब कहकहा मार कर हंसने लगे।

धीरे-धीरे हवा बदली। सन्देह और अविश्वास दूर हुआ। दोस्तों का-सा व्यवहार होने लगा। सार्जेण्ट की पत्नी के विनोदपूर्ण व्यवहार से सारा ही वातावरण एकाएक बदल गया। उसने घर से बाहर आ कर बड़े ही विनोद के साथ पूछा कि "क्या तुम लोगों की सशस्त्र फौज इन्हीं नौजवानों को गिरफ्तार करने के लिये इतनी दूर गई थी?" फिर उसने हमसे पूछा कि "तुम्हारे भोजन का क्या कुछ प्रबन्ध हुआ?"

"सवेरे से हमने कुछ भी नहीं खाया,"—हममें से एक ने कहा।

"बड़ा दुःख है । खैर, अभी भोजन तय्यार हो जाता है।"—श्रीमती चिंगता ने कहा।

इसी बीच सार्जेण्ट ने रिपोर्ट तय्यार की और एक दूत के हाथ अगले गांव में भेज दी। हमने अपनी हजामत करनी शुरू की । गांव वाले बड़े अचम्ज के साथ हमारे सब कामों को देखते रहे।

हमने २।। बजे भोजन किया। भोजन बड़ा ही स्वादिष्ट था। दुपहर बाद हमने स्नान किया। स्नान के बाद हमें बालों में तेल लगाते देख कर सार्जेण्ट ने हम से तेल मांगा। हमने उसे तेल दे दिया । हमारे व्यवहार से वह इतना प्रसन्न हुआ कि आगे जाने के लिये हमें एक सिफारिशी पत्र दे दिया। रात को सरदी होते हुये भी हम बहुत आराम से सोये।

१३ नवम्बर को हम आगे जाने को तय्यार हुये। सार्जेण्ट ने सीटी बजाई। दो कुली और दो सशस्त्र सिपाही आ गये। कुलियों ने हमारा सामान लिया और सिपाही हमें सुरक्षित अगले गांव में पहुँचाने के लिये थे। अगला गांव मोंगहान १५ मील पर था और हमें पैदल ही यह रास्ता तय करना था। डेढ़ बजे हम एक गांव में पहुंचे। यहां हमारे पहुंचने की सूचना पहिले ही आ चुकी थी। गांव के मुखिया के यहां हमारे भोजन का प्रबन्ध था। उसने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया। गांव वालों का व्यवहार भी बहुत सहृदयतापूर्ण था। युद्ध के समाप्त होने पर वे भी बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने फल-सुपारी आदि से हमारा सम्मान किया।

दुपहर बाद हम आगे बढ़े। कई छोटी छोटी बस्तियों को पार करते हुए हम ४।। बजे मोंगहान पहुंचे। गांव के मुखिया ने हमारा स्वागत किया और गांव की चौपाल में हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया गया। गांव के पागोडा के पास वह चौपाल थी। गांव के लोग वहां इकट्ठे हो गये। स्कूल के मास्टर और गांव के मुखिया में हमारे भोजन को लेकर बहस छिड़ गई। दोनों का आग्रह अपने यहां भोजन कराने का था। हमने

फैसला किया कि दोनों घरों से भोजन आ जाय और हम दोनों घरों का भोजन करेंगे। हमारी भूख का तो कहना ही क्या था? हमने भरपेट खाना खाया। रात की सरदी बहुत तेज थी। पर, हमने आराम से रात बिताई।

१४ नवम्बर की सवेरे आगे चलने को हम जल्दी ही उठ बैठे। गांव के मुखिया ने बैलगाड़ी का प्रबन्ध कर दिया। साथ में दो सशस्त्र आदमी भी कर दिये। सवेरे ७ बजे हमने वहां से विदा ली। कई छोटी-छोटी बस्तियों में से होकर १२॥ बजे दुपहर को हम एक बड़े गांव में पहुँचे। यहां भी गांव के मुखिया ने हमारा स्वागत किया और चौपाल में हमें ठहराया। कौतुकवश गांव के लोग इकट्ठे हो गये। युद्ध के दिनों की चर्चा शुरू हुई। उन्होंने बताया कि उन्होंने किस प्रकार अपने गांव की उन दिनों में रक्षा की थी। वे लोग बड़े सीधे और भोले-भाले थे। गोरों से उनको बड़ी नफरत थी। वे यह समझे हुए थे कि हिन्दुस्तान आजाद हो चुका है। इसी बीच भोजन तय्यार हो गया। गांव की भद्र महिलाओं ने हमें ऐसे भोजन कराया, जैसे कि हम राजकीय मेहमान थे। पान, सिगरेट आदि से उन्होंने हमारा सम्मान किया। कुछ आराम कर दुपहर बाद हम आगे चल दिये। मोंगपान स्टेट की राजधानी मोंगतुंग पर हमें उस दिन पहुँ-चना था। २५–३० मील की दूरी हमें पूरी करनी थी। बैलगाड़ी इतनी छोटी थी कि उस पर सवार होना सम्भव न था। रास्ता जंगली और पहाड़ी था। शाम को ५–३० बजे हम मोगतुंग पहुंच गये। यह बहुत ही रमणीक और मनोहर स्थान था। चारों ओर से पहाड़ियों और हरे-भरे धान के खेतों से घिरा हुआ छोटा-सा यह नगर एक नदी के किनारे बसा हुआ था। यहां पहुंच कर हम रास्ते की सारी थकान भूल गये।

हमें सीधा मायूक अर्थात् गांव के मुखिया के पास ले जाया गया। उसने हमारा हार्दिक स्वागत किया। गांव के भी कुछ लोग वहां इकट्ठे हो गये। उन्होंने हम से तरह-तरह के सवाल पूछे। मायूक की बूढ़ी माता ने हमारे लिये स्वादिष्ट भोजन तय्यार किया। रात को हमें बताया गया

कि हमें वहां तीन रात रुकना पड़ेगा। हमें रुकना पसन्द न था। हम आपस में कानाफूसी करने लगे कि हमें कहीं मेहमान बनाने के बहाने कैदी तो नहीं बनाया जा रहा ? क्या कहीं हमें अंग्रेजों के हाथों में तो नहीं सौंपा जा रहा ? लेकिन, पसन्द न होने पर भी रुकने के अलावा और चारा ही क्या था ? हमें वहां चार दिन रहना पड़ा। हमने सारी बस्ती छान डाली। तीसरे दिन वहां बाजार लगता था। वह भी हम ने देखा। जुआ वहां खूब होता था। मायूक का घर भी जुवे का अड्डा बना हुआ था। वह पक्का साहूकार भी था। वह विधुर था। दुबारा विवाह करने की चिन्ता में था। वैसे वह बड़ा भक्त, मेहमाननवाज और चतुर व्यवस्थापक भी था। माता का उस पर बड़ा असर था। आबादी अधिकतर गरीब किसानों की थी।

६. एक सप्ताह जंगल में

१७ नवम्बर को सवेरे मायूक ने हमें बताया कि दुपहर को दो बजे हमें मोंगयान के लिये कूच करनी होगी। वह स्वयं, पांच कुली और चार सिपाही हमारे साथ चलने को थे। हमारा सन्देह और बढ़ गया। दुपहर को २ बजे इतने बड़े लवाजमे के साथ चलने का मतलब क्या था ? लेकिन, बाद में हमें पता चला कि हमारा सन्देह निराधार था और मायूक ने जो योजना बनाई थी, वह अकारण ही न थी। पहाड़ियां इतनी भयानक और जगल इतने घने थे कि इतनी तय्यारी के बिना निरापद यात्रा करना सम्भव न था। हमने दुपहर को १२ बजे मायूक की मां से विदा ली और लगभग १ बजे गांव से रवाना हूए। कुलियों के सिर पर हमारा सामान और राशन था। ३-३० बजे ८ मील तय कर के हम उस गांव में पहुँचे, जहां हमें रात बितानी थी। मायूक के आने की बात सुन कर गांव का चौधरी भागा आया। मायूक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करके उसने हमारा स्वागत किया। रात को भोजन करके हम सोने लगे कि मायूक ने हम से कहा कि अगले दिन सबेरे ४ बजे ही यात्रा शुरू करनी होगी।

१८ नवम्बर को सवेरे हम उठे, तो सरदी खूब तेज थी। हम ठिठुर से रहे थे। ९ बजे से पहिले हम न चल सके। बांस की बोतलें हमने पानी से भर लीं। रास्ता सारा पहाड़ी था। कभी हम पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाते थे, तो कभी उसकी तराई में आ उतरते थे। १०-३० बजे हम एक पहाड़ी की चोटी पर पहुंचे। यहां कभी पुलिस की चौकी थी; किन्तु इन दिनों में वह उजड़ी पड़ी थी। उसकी दीवारें टूटी हुई, छत उड़ी हुई और आस-पास में घास उगी हुई थी। वहां हमने दुपहर का भोजन किया और १२ बजे आगे चल दिये। पहाड़िया एक दम सूखी थीं। पानी का कहीं पता न था। प्यास और थकान के मारे हुये भी हम आगे बढ़ते चले गये। ४-३० बजे हमें एक पहाड़ी नाला मिला। हमने वहां आराम करने को पड़ाव डाल लिया। हमारे चारों ओर ऊंची पहाड़ियां और घने जंगल थे। हमारे साथ के कुलियों ने बताया कि उनमें सांपों और शेरों का राज्य है। कोई आदमी उनमें जाने का साहस नहीं करता। हमने स्नान किया और भोजन तय्यार करके भूख शान्त की। थकान के मारे हम अपने को भूल गये और गहरी नींद ने हमें आ घेरा। आग के सहारे रात हमने यहीं पूरी की। सरदी और संकट दोनों के लिये उस समय सिवा आग के और हमारे पास था ही क्या ?

सवेरे चाय बनाई और बिना चीनी के ही उसको गले के नीचे उतार कर ६-३० बजे हमने आगे का रास्ता पकड़ा। हमने कई घाटियां पार कीं। हमारी पगडंडी कंटीली झाड़ियों से घिरी हुई थी। टांगें कांटों से बिंध रही थीं। खून बहने लगा। पानी की छोटी-बड़ी कोई १६० धारायें हमने पार की होंगी। कई इतने वेग से बह रहीं थीं कि उनको पार करना खतरे से खाली न था। कई झरने भी थे। बांसों के घने जंगलों का दृश्य अनेक स्थानों पर बहुत ही लुभावना और मनोहर था। उसको देख कर हम अपनी थकान और भूख भी भूल जाते थे।

अन्त में शाम को ४॥ बजे हम सालवीन के किनारे पर पहुंच गये।

दो पहाड़ियों के बीच में पूरे वेग मे बहने वाली उस नदी का वह दृश्य कितना सुन्दर और कितना भयानक था ? हमने उसको पार किया । दूसरे किनारे पर एक झोंपड़ी थी । रात हमें यहीं काटनी थी । भोजन-सामग्री हमारी समाप्त हो चुकी थी । पूर्णिमा की रात थी । चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी । प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता था । लेकिन, हमें वह भी काटने को दौड़ता था । चारों ओर खड़े हुये पहाड़ भीषण दैत्य से जान पड़ते थे । हमने अपनी उस संकटापन्न अवस्था को भुलाने का यत्न किया और सालवीन के किनारे को आजाद हिन्द के गीतों से गुंजा दिया । सालवीन और उन पहाड़ियों ने पहिली ही बार वे गीत सुने होंगे।

अगले दिन का रास्ता भी वैसा ही था । पानी के छोटे-मोटे झरने और नदी-नाले कोई १३० हमने पार किये होंगे। उस एकान्त मार्ग में मायूक के दल के अलावा हमारा कुशल-क्षेम पूछने वाले और हमारी भूख-प्यास तथा थकान को दूर करने वाले वे ही हमारे साथी थे। शाम को ५ बजे हम एक पहाड़ी और जंगली गाव में पहुँचे। कई दिनों बाद यहा हमने दाढ़ी बनाई और अपनी समाप्त हुई भोजन-सामग्री की कमी पूरी की। रात को पूछताछ करने पर पता चला कि अगले दिन हम हैंगयान पहुँच जायेंगे ।

७. दो सप्ताह बाद

हर मास की २१ तारीख आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की याद में मनाई जाती थी । आज २१ नवम्बर की सवेरे पिछला सारा इतिहास हमें सहसा याद आ गया । मायूक ने हमें बताया कि हैंगयान में काफी हिन्दुस्तानी रहते हैं । इसलिये हम और भी उत्साह के साथ आज आगे की ओर बढ़े । रास्ते में कई गाव छोड़ते हुए हम इस तेजी से आगे बढ़े कि मायूक और उसका दल भी पीछे छूट गया । हमारा एक साथी भी पीछे रह गया । मै और मेरा एक साथी दो बजे के करीब हैंगयान पहुंच गये । पीछे आने वाले साथियों की कुछ देर प्रतीक्षा कर हम किसी हिन्दुस्तानी की खोज में निकले । शहर खासा बड़ा था । एक घण्टे की खोज के बाद

एक हिन्दुस्तानी की दूकान मिली। उस पर एक हिन्दुस्तानी महिला बैठी हुई थी। उस युवती ने हमें देखा नहीं। मैंने आगे बढ़कर उससे कुछ बात की। इतने दिनों बाद, इतनी संकटापन्न लम्बी यात्रा तय करने पर, एक स्वदेशवासी के मिलने पर हमारी खुशी का पारावार न रहा। उसने हमें आश्वासन दिया कि वह हमारे ठहरने और भोजन का प्रबन्ध कर देगी। लेकिन, उसे अपने घर वालों से उसके लिये पूछना होगा। अपने साथी और मायूक की खोज में हम लौट पड़े। वे चार बजे के करीब गांव में पहुँचे। मायूक ने अनुरोध किया कि हम उसके साथ ठहरें और उसके साथ ही भोजन करें। उसका आग्रह हम टाल न सके। भोजन के बाद जब हम हिन्दुस्तानी के यहां आये, तो उसका रुखा व्यवहार देखकर हम दंग रह गये। उस बूढ़े आदमी ने हमें अपने अस्तबल में ठहराया। सोचा था कि हम यहां दो दिन रह कर कुछ आराम करेंगे। लेकिन, उसके व्यवहार को देखते हुए हमने अगले ही दिन आगे चल देने का निश्चय कर लिया। अस्तबल में जिसके पास हम सोये थे, उस गरीब हिन्दुस्तानी ने हमें दूसरे दिन बैलगाड़ी का प्रबन्ध कर देने का भरोसा दिलाया। वहां से लिंखे पहुँच कर हमें बस मिल जाने की आशा थी।

२२ नवम्बर की सवेरे हमने कुछ चावल, शाकभाजी और अन्य सामान खरीदा और बैलगाड़ी पर आगे के रास्ते पर चल दिये। हम पांच ही मील चले होंगे कि एक हिन्दुस्तानी युवक वहां खड़ा हमें दीख पड़ा। हमारे नारे और गीत सुन कर वह सड़क पर आ खड़ा हुआ था। गाड़ी को रोक कर उसने हम से कई सवाल किये। हमारा सारा हाल जान कर उसने हमसे अपने यहां कुछ दिन ठहने का अनुरोध किया। लेकिन, हमारी इच्छा ठहरने की न थी। फिर भी वह हमें अपने मकान पर ले गया। गन्ने का ताजा रस पिला कर उसने भोजन बनवाया। उसका प्रेम-पूर्ण आतिथ्य हमें आज भी याद है। छः घण्टे उसके यहां बिता कर दुपहर को १ बजे हम आगे चल दिये। रात को करीब डेढ़ बजे हम सावा गांव में पहुँचे। गांव के चौधरी के नाम पत्र होते हुए भी हमने उसको

नेताजी
शहीद और स्वराज्य द्वीप में
(३० दिसम्बर १९४३)

स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस
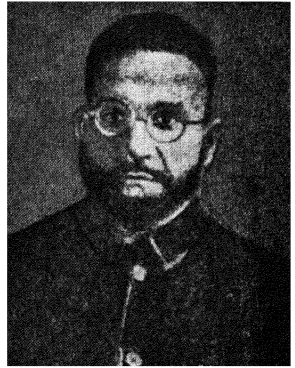
राजा महेन्द्रप्रताप

रात को उठाना ठीक न समझा और बैलगाड़ी पर ही रात पूरी की। सबेरे भी उससे बिना मिले ही हमने आगे चलने का निश्चय किया। ५॥ बजे सबेरे बैलगाड़ी पर सवार होकर हम आगे चल दिये। १०॥ बजे एक नदी पर पहुंच कर हमने स्नान किया और कपड़े धोये। ११ बजे वहां से चल कर १ बजे हम उस नदी के किनारे पर पहुंच गये, जिसके उस पार तीन मील पर लिंखे आबाद था। नदी पर हमने भोजन बनाया और थोड़ा-सा आराम किया। नदी पार करके ४॥ बजे हम लिंखे पहुंच गये। मौंगपान में ही हमने यहां के एक हिन्दुस्तानी का पता ले लिया था। हम सीधे उसी की दूकान पर पहुंचे। उसने सहर्ष हमें अपना अतिथि बनाना मंजूर कर लिया। उससे हमें यह जान कर कुछ निराशा-सी हुई कि वहां से किराये की बसें नहीं चलतीं। लेकिन, तीसरे-चौथे दिन ऐस० ई० ए० सी० का माल ढोने की लारियाँ चलती हैं और कुछ यात्रियों को भी वे ले जाती हैं। हमारी किस्मत से उसी समय ऐस० ई० ए० सी० की एक गाड़ी खड़ी हुई दीख पड़ी। हम उसके पास दौड़े गये। उसका ड्राइवर एक बर्मी था। उसने अगले बड़े मुकाम लोईलम पर हमें पहुंचाना मंजूर कर लिया। उसने दूसरे दिन सवेरे चलना था। रात हमने उसी हिन्दुस्तानी के यहां बिताई। उसने हमारे भोजन और ठहरने का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि बहुत दिनों बाद हमने इतने आराम से रात काटी की।

सवेरे ८ बजे सामान लेकर हम बस के स्थान पर पहुंच गये। लेकिन, वह बारह बजे वहां से बिदा हुई। लोईलम वहां से ७० मील पर था और रास्ता अधिकतर पहाड़ी था। शाम को ७ बजे हम वहां पहुँच गये। अंधेरी रात थी और हमें उस शहर का कुछ भी पता न था। भूखे-प्यासे, थके-मादे, सरदी में ठिठुरते हुए हम एक ओर चल दिये। किसी ने हमको एक झोंपड़ी का पता दिया, जिसमें बहुत से हिन्दुस्तानी ठहरे हुये थे। उस झोंपड़ी पर हम पहुँचे, तो हमने देखा कि वे बहुत

गरीब लोग थे। ठहरने का ठिकाना पूछने पर उन्होंने हमको बाजार और ठाकुरवाड़ी का रास्ता बता दिया। हम सामान सिर पर ले और आगे बढ़े कि हमें एक हिन्दुस्तानी बालक मिला। उससे एक हिन्दुस्तानी रैस्टोराँ का पता पूछकर वहां जाकर हमने भोजन किया। उसके मैनेजर से हमने तौंजी जाने के बारे में पूछताछ शुरु की। उससे हमें पता चला कि कलाब से एक मारवाड़ी सेठ वहां आया हुआ है। वह दूसरे ही दिन सवेरे लौटने वाला हैं। उसके साथ हम तौंजी जा सकेंगे। हमारे आग्रह पर वह सेठ के पास गया और आशापूर्ण उत्तर लाकर उसने हमें दिया। हमने निश्चिन्त होकर रात ठाकुरवाड़ी में बिताई। लेकिन, सरदी में हम रातभर ठिठुरते रहे।

बड़ी सवेरे उठकर हम रैस्टोराँ पहुँच गये। सेठ भी वहां मौजूद थे।

"आप ही हैं, जो तौंजी मेरे साथ चलना चाहते हैं। आप आये कहां से हैं?"—उस सेठ ने हमसे पूछा।

"रंगून से."—एक ने हममें से उत्तर दिया।

सेठ भोंदू न था। वह ताड़ गया और बोला कि "आप लोगों के सामान से तो यह पता नहीं चलता कि आप रंगून से आ रहे हैं।"

हमें संकोच में देखकर उसने हमसे और पूछ-ताछ नहीं की। बात-चीत में पता चल गया कि कलाब में वह आजाद हिन्द संघ की शाखा का प्रधान है और कुछ ही दिन हुये जेल से रिहा हुआ है।

८. कर्नल लक्ष्मी से भेंट

सवेरे आठ बजे हम लोईलम से बिदा हुये। रास्ते में हमने सेठ मोतीरामजी को अपना सारा भेद बता दिया। हमसे उन्होंने कलाब चलने का अनुरोध किया और बताया कि रानी झांसी रेजीमेण्ट की कर्नल लक्ष्मी वहां ही नजरबन्द हैं। दिन में तीन बजे हम तौंजी पहुंच गये। एक घण्टा आराम करके हम आगे चल दिये। रास्ता पहाड़ी था। इसलिये मोटर ट्रक दस मील घण्टे की रफ्तार से अधिक न चल सका। कभी-

कभी वह बिगड़ कर रुक भी जाता था। रात को दस बजे हम कलाव पहुँचे। अंधेरी रात में हम सरदी में ठिठुर रहे थे। हमारे पास एक भी गरम कपड़ा न था। सेठ के मकान युद्ध की भेंट हो चुके थे। वह अपने बड़े परिवार के साथ एक शैड में रहते थे। सबसे हमारा परिचय कराया गया। सेठ की पत्नी भी बहुत भद्र महिला थी। मेहमानों की सेवा में सुख मानने वाली थी। उसने बहुत बढ़िया भोजन तैयार किया और बड़े प्रेम तथा सत्कार के साथ हमें खिलाया। रात को गरमी के लिये आग जलाई गई और सरदी से बचने के लिये कई कम्बल हमें दिये गये। २६ नवम्बर को दूसरे दिन मेरे दोनों साथियों को बुखार आ गया।

सेठ मोतीलाल ने डाक्टर लक्ष्मी के पास जाकर हमारे वहां आने की उनको सूचना दी। वह दिन में १ बजे हमसे मिलने आईं। नजरबंदी के बावजूद कर्नल लक्ष्मी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और उसके हृदय में वैसी ही आशा तथा उत्साह बना हुआ था। उनसे मिलकर हमें बहुत उत्साह और प्रेरणा मिली। उसने हमें अपनी कहानी सुनाई और हमने उसको अपना किस्सा सुनाया। हमारी साहसपूर्ण यात्रा का किस्सा सुनकर उसने हमें हमारे साहस के लिये दाद दी और आगे के रास्ते के बारे में कुछ परामर्श भी दिया।

मलाया के रहने वाले आजाद हिन्द फौज के अनेक साथी हमें वहां मिले। कइयों ने हमें काफी सहयोग दिया। एक ने हमारे साथ चलने की इच्छा प्रगट की। उसको हम इनकार नहीं कर सकते थे। तीन रात सेठ जी के अतिथ्य का सुख भोग कर २८ की सवेरे हम कलाव से आगे चल दिये। चलते हुये हमारे मित्रों ने दवादारू और रुपये-पैसे से हमारी मदद की। सेठ मोतीलाल, कर्नल लक्ष्मी और उन साथियों के प्रेम और कृपा को हम भूल नहीं सकते। उनके प्रति हमारा हृदय सदा के लिये ही कृतज्ञ बन गया है। ११ बजे दुपहर को शाम स्टेट्स की सीमा पार करके हमने वर्मा की असली सीमा में पैर रखा। थाजी पहुँचते-

पहुँचते एक दम अंधेरा हो गया। वहां भी आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिक थे, जो किसी प्रकार अपने दिन पूरे कर रहे थे। हम उन्हीं के साथ ठहरे। युद्ध से पहले यह बहुत बड़ा शहर था। लेकिन, अब तो असली शहर का कहीं पता भी न था। रेलवे स्टेशन तक भूमिसात् हो चुका था।

यहां से हमें मांडले जाना था। रेल की मुफ्त यात्रा की व्यवस्था थी। लेकिन, पास का लेना जरुरी था। हमें पास लेने में दो दिन लग गये। इन दो दिनों में हमने अपने कपड़े धो लिये और पूरा आराम करके तय्यार हो गये। १ दिसम्बर को हम मांडले के लिये चल दिये। शाम को वहां पहुँच गये। वहां पहुंचते ही हम में से एक को बुखार आ गया। हम वहां एक मद्रासी महिला के यहां ठहरे। इसका पति और पुत्र दोनों आजाद हिन्द फौज में भरती थे। इनका देहान्त हो जाने पर भी उसके उत्साह में कमी न आई थी। अपनी लड़की के साथ वहां रह-कर कुछ फल-भाजी बेचकर अपने जीवन-निर्वाह की समस्या वह हल कर लेती थी। आजाद हिन्द फौज वालों के लिये उसका घर धर्मशाला बना हुआ था। हमको अपने यहां देख कर वह बहुत प्रसन्न हुई। मकानों की समस्या पहले ही कुछ कम टेढ़ी न थी। युद्ध ने उसे और भी अधिक विकट बना दिया था। एक भी मकान बमबर्षा की भेंट से बचा न था। वहां रहते हुए कई लोगों से हमारा परिचय हुआ। आजाद हिन्द फौज के एक कप्तान से भी हम मिले। वह डाक्टर था। उससे हमें बहुत सहायता मिली। उसने हमें कुछ सूखी भोजन-सामग्री भी दी, जो अगली यात्रा में हमारे बहुत काम आई।

३ दिसम्बर को हम आर्यसमाज में चले आये। यहां आजाद हिन्द फौज के काफी लोग ठहरे हुए थे। उस विशाल इमारत की दीवारें भी बमबर्षा के कारण जहां-तहां से टूट-फूट रही थीं। हमारा एक और साथी भी बीमार पड़ गया। एक हिन्दुस्तानी डाक्टर उनकी देख-रेख करता रहा।

अपनी मुसीबत और गरीबी भुला कर आजाद हिन्द फौज वालों ने हमारी भरपूर सहायता की।

६. ईरावती के इस पार

४ दिसम्बर की सवेरे ६-३० बजे मैं अपने नये साथी के साथ अगले रास्ते की खोज में निकला। १०-३० बजे हम ईरावती के किनारे पर पहुंचे। नदी का पुल युद्ध की भेंट हो चुका था। किश्ती से हम पार हुए। नदी के दूसरे पार मांडले से १३ मील पर सागाईं शहर बसा हुआ है। वहां हम कुछ हिन्दुस्तानियों से मिले और हमने सीमा की ओर जाने वाले रास्ते का पता किया। रास्ते के शहरों और उनमें रहने वाले सहृदय हिन्दुस्तानियों का भी हमने पता किया। सब पूछताछ करने के बाद हम १० बजे मांडले वापिस लौट आये। हमारे साथी अभी पूरी तरह स्वस्थ न हुए थे। लेकिन, हम आगे कूच करने को बहुत ही अधिक उत्सुक थे। इसलिए डाक्टर से हमने उनको जल्दी अच्छा कर देने का अनुरोध किया।

६ दिसम्बर की सवेरे हम चारों ने मांडले से बिदा ली। ६ बजे सबेरे ही हम सागाईं पहुंच गये। यहां से हमारा विचार तुरन्त श्वेबो चल देने का था। ७० मील तय करके हम शाम को वहां पहुंच जाना चाहते थे। लेकिन, बर्मा के गवर्नर सर रेजिनाल्ड स्मिथ के वहां होने से हमें मोटर के लिये चार घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह छोटा-सा सुन्दर शहर भी युद्ध की मार से बचा न रहा। हम सीधे गुरुद्वारा में गये। यहीं हमने ठहरने का निश्चय किया। एक प्रमुख हिन्दुस्तानी से हमने परिचय प्राप्त कर लिया। उसने हमारा आतिथ्यसत्कार यहुत प्रेम के साथ किया। आगे के रास्ते के बारे में भी उसने हमें बहुत सी सलाह दी।

दूसरे दिन ७ दिसम्बर की सबेरे हम श्वेबो से २५ मील की दूरी पर स्थित पेऊ शहर के लिये चल दिये। दुपहर को हम वहां पहुंच गये। रास्ते में कुछ समय के लिये हमने छोटे से गांव मिएडा में पड़ाव किया। यह फौजी पड़ाव भी था। पेऊ में हम जिस हिन्दुस्तानी के यहां ठहरना

चाहते थे, उसने हमको पानी तक के लिये न पूछा। हमें बहुत निराशा हुई। बाकी दिन और रात हमने गुरुद्वारा में काटी। भोजन भी हमें भरपेट न मिला।

यहां से अगला स्थान, जहां हमें पहुँचना था, कलेवा था। वहां पहुँचने का १२५ मील लम्बा रास्ता सारा ही प्रायः जंगल में से होकर जाता था। इस रास्ते पर भी ऐस. ई. ए. सी. की गाड़ियां चलती थीं। लेकिन, तब कोई गाडी मिलनी सम्भव न थी। पैदल रास्ता तय करना खतरे से खाली न था। इसलिए हमने मोनीवा और चिन्दवीन नदी होकर लम्बे रास्ते से जाना तय किया। किसी व्यपारी काम के लिये मोनीवा जाने वाली लारी में हम चारों को जगह मिल गई। पेऊ से मोनीवा ५८ मील था और चिन्दवीन के ठीक किनारे पर बसा हुआ था। वहां के कुछ हिन्दुस्तानियों के भी पते हमने ले लिये थे।

८ दिसम्बर की दुपहर को हम मोनीवा पहुंचे। यह अच्छा बड़ा शहर था। इम्फाल के पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज और अंग्रेज फौज में यहां पर आमने-सामने डट कर लड़ाई हुई थी। यहां ही पर आजाद हिन्द फौज का इम्फाल के मोर्चे के बाद का अस्पताल था। हम सीधे गुरुद्वारा में गये। युद्ध के दिनों में वह बुरी तरह टूट-फूट चुका था। वहां से हम उस हिन्दुस्तानी की दूकान पर गये, जिसका पता हमारे पास था। उसने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया। हमें एक कमरा दे दिया। खाने-पीने का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया। कई दिनों बाद हमें यहा सन्तोषजनक भोजन मिला। रात को अपने बारे में हमने उसे सब कुछ बता दिया।

दूसरे दिन हमें पता चला कि कलोवा यहां से कोई २०० मील से भी अधिक दूर है। यहां से ऐस. ई. ए. सी. का निशान लगाकर आर. सी. एल. की मोटर बोट चलती थीं। लेकिन, उनके लिये पास लेना जरूरी था। डी. सी. के आफिस के हुक्म के बिना वह संभव न था। हमने सिविल और जेल के हिन्दुस्तानी अफसरों की मार्फत उसके लिये प्रयत्न किया। लेकिन, सफल न हुये। कई दफ्तरों की हमने खाक छान डाली। कहीं भी हमारी दाल न गली। लेकिन, हमें तो किसी-न-किसी प्रकार

आगे बढ़ना ही था। इसलिये हमने अपनी कोशिश जारी रखी। १० नवम्बर की सवेरे हम एक मित्र से मिलने के लिये अस्पताल गये। उसने डी. सी. के आफिस के लिये हमें एक सिफारिशी पत्र दिया। लेकिन, वह भी बेकार साबित हुआ। उस दिन शाम को हम अपने निवास-स्थान पर लौटे, तो हमने देखा कि हमारे यजमान का भी रुख बदला हुआ था। उसको बहका दिया गया था कि हम बहुत खतरनाक आदमी हैं। लेकिन, हम तो पहिले ही आगे चल देने का निश्चय किये हुये थे। ११ नवम्बर को उसका आभार मानकर हम अपना सामान अपने सिरों पर संभाल कर आगे चल दिये। १ बजे दुपहर को हम चिन्दविन पहुँच गये। यहां से कलेवा के लिये हमने १०० रुपये किराये पर एक किश्ती कर ली। माझी का दावा था कि वह हमें चार-पांच दिन में ही कलेवा पहुँचा देगा।

१०. चिन्दविन में छः रातें

किश्ती पर सवार होकर हमने २ बजे चिन्दविन का रास्ता पकड़ा। किश्ती को पानी की धारा से उलटा पहाड़ी की ओर जाना था। पांच बजे तक केवल चार मील का रास्ता पूरा हो सका। शुरू से ही हमने अनुभव किया कि हम काफी भयानक संकट में से गुज़र रहे हैं। इतने में ही हम घबरा-से गये। कुछ रोटियां और शहद हमारे पास था। रात को उसीसे भूख शान्त करके हम किश्ती पर ही सो गये। रात को पानी बरसना शुरू हुआ। किश्ती पर छत इत्यादि कुछ भी न थी। हम बुरी तरह भीग गये। सवेरे भी बूंदाबादी होती रही। किश्ती की चाल और भी धीमी पड़ गई। १२ बजे जोर का पानी बरस रहा था कि हम इलान नाम के गांव के पास पहुँचे। गांव में से हमने चावल और कुछ भोजन-सामग्री खरीदी।

इतने ही में कलेवा जाने वाली कुछ मोटर बोट आती दीख पड़ीं। हमने उनको हाथ का इशारा करके रोकने का यत्न किया। उनमें से

एक कुछ फासले पर रुकी और हम कीचड़ में से पार होकर उसके पास पहुँचे। हमने कप्तान से कलेवा ले चलने का अनुरोध किया। पचास रुपया लेकर वह हमें ले चलने को राजी हो गया। माझी को बीस रुपया देकर हमने उससे छुट्टी ली और मोटर बोट पर सवार हो गये। उस पर सवार होते ही कप्तान ने हमसे सत्तर रुपये मांगे। देने के सिवाय हम और कर ही क्या सकते थे?

उस मोटर बोट पर कुछ चीनी थे और उनके पास रुपया भी काफी था। इसलिये उनकी आवभगत के सामने हमें कोई पूछता भी न था। सारे माझी हिन्दुस्तानी होते हुये भी हमारी उपेक्षा कर रहे थे। ड्राइवर भला आदमी था। उससे हमारी दोस्ती हो गई। हमीद नाम का एक गरीब युवक, जिसके पास कपड़े वगैरः भी प्रायः नहीं थे, हमारा साथी बन गया। अपने पिता, माता और तीन बहनों की वर्मा में मृत्यु हो जाने से वह अकेला रह गया था और दुःखी हृदय से स्वदेश लौट रहा था। उसको हमने अपने साथ ही ले लिया।

हमें मोटर बोट पर भोजन बनाने की सुविधा नहीं दी गई। शाम को ६ बजे और सवेरे चार बजे किनारे पर हम अपना भोजन बना लेते थे। अब हम पांच साथी हो गये थे। कपड़े हमारे सारे फट गये थे। हम भिखारी से जान पड़ते थे। माझी तो हमें हमारी शक्ल सूरत से भिखारी ही समझ रहे थे। इसलिये वे हमें छत के भी नीचे न आने-जाने देते थे। बरसते पानी में भी हम बाहर रहने को मजबूर थे। चावलों के बोरों को ढकने वाले तिरपाल के नीचे बैठकर पानी से हम अपने को कुछ बचा पाते थे। माझियों का बरताव हमारे साथ इतना अपमानास्पद था कि हमारे लिये उसे सहन करना कठिन हो गया और एक दिन आपस में झगड़ा भी हो गया। कप्तान ने बीच-बचाव किया और उस दिन से उनके व्यवहार में कुछ तब्दीली हुई।

१५ दिसम्बर को दोपहर बाद मोटर बोट कलेवा पहुँची। एक मील

पहिले ही जंगल में उसको रोका गया। हमारे पास पास न थे। इसलिये हमें वहां उतरना पड़ा। अपना सामान सिर पर लेकर हमने जंगल का रास्ता पकड़ा। घण्टाभर चलने के बाद भी रास्ता पूरा न हुआ और हम जंगल पार करके शहर में न पहुंच सके। हम ऐसा अनुभव करने लगे, जैसे लड़ाई के मैदान में से हम पार हो रहे थे। टूटी-फूटी मोटरों, लारियों, फौजी गाड़ियों आदि के रास्ते में जहां-तहां ढ़ेर लगे हुये थे। लड़ाई के इस मैदान में से गुजरते हुए हम पांच बजे एक गांव के पास पहुंचे। हमने समझा कि हम कलेवा आ पहुंचे हैं। लेकिन, हम यह जानकर निराश हो गये कि कलेवा तो नदी के उस पार है। पुराना कलेवा युद्ध की भेंट हो चुका था और नया कलेवा नदी के उस पार बसाया गया है। उस पार जाने के लिये, हमें बताया गया कि, हमें दो मील और चलना होगा। थके-मांदे और भूखे-प्यासे हम लोगों ने किसी तरह दो मील भी पूरे किये; किन्तु उस समय पार जाने को कोई किश्ती न देखकर हमारी निराशा का कोई ठिकाना न रहा। हमारा हौसला पस्त हो गया। लेकिन, हमारी किस्मत ने हमारा साथ न छोड़ा। ६ बजे के लगभग एक डोंगी आई। उसे हमने किराये पर किया और उसमें सवार हो गये। राम-राम करते हम पार हुये। नदी की तेज धार में डोंगी क्या झूल रही थी, हमारा भाग्य ही झूले में झूल रहा था। इतने लम्बे रास्ते में भी हमें इतने बड़े संकट का सामना न करना पड़ा था।

नया कलेवा अभी पूरा शहर तो नहीं बन सका था; फिर भी वह एक बड़ा गांव जरूर बन गया था। हमें पता चला था कि यहां काफी हिन्दुस्तानी रहते हैं। यहां की भाषा हम में से कोई न जानता था। हमीद ने इस दिक्कत को हल किया और उसका साथ हमें बहुत कीमती सिद्ध हुआ। हिन्दुस्तान से हाल ही में गये हुये एक हिन्दुस्तानी का भी हमें पता चला। वह जहां ठहरा हुआ था, वहां हमने अपना सामान रखा और हम भोजन की तलाश में निकले। एक चीनी की दुकान हमें मिली। लेकिन, भोजन बहुत ही खराब और नाकाफी होते हुये भी बहुत महंगा

था। जैसा-तैसा खाना खाकर हम लौटे कि हमारे महमान ने एकदम नेताजी की चर्चा शुरू की। उसने हमें बताया कि उनको गिरफ्तार करके हिन्दुस्तान ले जाया गया है और कलकत्ता ले जाकर उनको रिहा कर दिया गया है। रात काटने के लिये उसने हमें एक जगह दे दी।

हमें पता चला कि तामू, जहां हमें यहां से पहुंचना था, १३१ मील पर है और हिन्द-वर्मा की सीमा पर आवाद है। हमें यह भी पता चला कि तामू के लिये दूसरे दिन कुछ लारियां चलने वाली हैं। हमारे यजमान ने बड़े गर्व के साथ कहा कि तामू के मायूक के साथ उसके सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं और वह उसके नाम हमें एक सिफारिशी पत्र दे देगा, जिससे हमें हिन्द-बर्मा-सीमा पार करने में कुछ भी असुविधा न होगी।

११. हिन्द बर्मा की सीमा पर

१६ दिसम्बर की सवेरे हमने लारी का पता किया। ड्राइवर ने तामू ले जाने का प्रत्येक व्यक्ति का एक सौ रुपया मांगा। हमारे पास कुल जमा पूंजी ५०) थी। ड्राइवर के साथ सौदा करने की अपेक्षा हमें पैदल चलना ही ठीक जान पड़ा। अपने यजमान से सिफारिशी पत्र और बाजार से कुछ सूखी भोजन-सामग्री खरीद कर हम तामू के लिये पैदल ही चल पड़े। अभी दो ही मील गये होंगे कि एक पुलिस वाले ने हमको रोका। कुछ सवाल-जवाब करने के बाद उसने हमें हमारी किस्मत पर छोड़ दिया। रास्ता बड़ा ही साफ, मनोहर और सांप की तरह पहाड़ियों में से घूमता हुआ जाता था। १२ बजे हम एक पहाड़ी नाले पर पहुँचे। पुल के नीचे आराम करने और भोजन बनाने का हमने विचार किया। स्नान करने के बाद हमने चावल और दाल बनाया ही था कि हमें कलेवा की ओर से एक छोटी मोटर आती दीख पड़ी। उसको रोक कर ड्राइवर से हमने कुछ सहायता करने का अनुरोध किया। कम से कम अपने में से दो बीमार साथियों और अपना सामान ले जाने का हमने उससे आग्रह किया। वह गुरखा ड्राइवर हम सभी को २५ मील आगे तक ले जाने के

लिये तैयार हो गया। हम बना-बनाया खाना छोड़ कर उसकी गाड़ी पर सवार हो गये। पच्चीस मील बात की बात में तय हो गये। वहां रैस्ट हाउस पर हमको छोड़कर उसने आगे जाना था। वह हम में से दो को मय हमारे सामान के अपने साथ ले जाने को तैयार हो गया। लेकिन, उसने कहा कि वह उनको तामू से २८ मील पहिले छोड़ देगा।

मैंने और दो साथियों ने रात वहा ही पूरी की। कुछ और लोग भी वहां ठहरे हुये थे। वे सब बहुत ही सहृदय थे। उन्होंने हमें शाक-भाजी और अन्य आवश्यक सामान प्राप्त करने में बड़ी सहायता की। दूसरे दिन सवेरे से ही हम किसी लारी या गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। निराश हो कर हम दस बजे पैदल ही चल दिये। १२ बजे हमने आराम किया। मांडले के मित्रों द्वारा दी गई सौगात में से फलों का केवल एक डिब्बा बचा था। उसको हमने यहां खोला। एक मोटर गाड़ी के आने की आवाज आई। हमने हाथ के इशारे से उसे रोकने का यत्न किया। वह रुका नहीं। तब हम में से एक ने उसको आवाज दी। उसको सुन कर वह रुक गया। वह दक्षिण भारत का निवासी था। पहले उसने हमें बर्मी समझा। पर, हमारी आवाज से वह जान गया कि हम हिन्दुस्तानी हैं। उसने हमें अपनी गाड़ी में बिठा लिया और बिना पास के भी वह हमें अपने साथ इम्फाल तक ले जाने को तयार हो गया। लेकिन, अपने दो साथियों और सामान को छोड़ कर हमने सीधे जाना पसन्द न किया। ७० मील का रास्ता तय करके २ बजे हम अपने साथियों से आ मिले। वह गुरखा ड्राइवर भी अभी वहां ही था। उसने चाय आदि से हमारा सत्कार किया। चाय पी कर हम खाली ही हुए थे कि एक लारी आई। गुरखा ड्राइवर से विदा लेकर हम तामू जाने को उस पर सवार हो गये। लारी ने रास्ते में से बहुत से बास लेने थे। इस लिये हम पांच बजे शाम को तामू पहुंचे।

हिन्द-बर्मा की सीमा पर बर्मा की ओर यह अन्तिम शहर और हमारा

अन्तिम पड़ाव था। यहां अधिकतर मनीपुर के लोग रहते हैं। ये सहृदय, उदार और मिलनसार हैं। मायूक वहां न था और एक सप्ताह बाद लौटने वाला था। एक मनीपुरी ने रात को हमारे ठहरने की व्यवस्था कर दी। रात को एक होटल में भोजन करते हुये हमें एक आदमी मिला, जो इम्फाल से आया था और सवेरे ही इम्फाल वापिस लौटने वाला था। उसने बताया कि वह लड़ाई से पहिले वहां सरकारी नौकरी में एक बड़ा अफसर था। लड़ाई के दिनों में वह आजाद हिन्द फौज में भरती हो गया था और 'कमान' के पद पर रह कर उसने काम किया। रात हमने उसी के यहां बिताई। कड़ाके की सरदी में हम ठिठुर से गये।

१६ दिसम्बर को हम मायूक के घर गये। कलेवा का सिफारिशी पत्र हमने वहां उपस्थित आदमी को दे दिया। उसको पढ़ कर उन्होंने हमारा मजाक किया और हमारे साहस को बच्चों का खेल बताया। मायूक के सहायक ने भी हमारी सहायता करने से इनकार कर दिया। शरणार्थियों के चीफ अफसर का पता लगने पर हम उसके पास गये। वह एक चीनी लैफ्टिनेण्ट और भला आदमी था। उसने हम में से चार को सीमा पार करने के पास दे दिये। पांचवां हमीद तेरह वर्ष से अधिक से बर्मा में रहता था। इसलिये उसको शरणार्थी न माना गया। हमारा दिल उसको पीछे छोड़ने को न था। पर क्या करते? हम लाचार थे। लारी के एक ड्राइवर से हमने तय कर लिया और इम्फाल वाले नये दोस्त के साथ हम एक बजे तामू से चल दिये।

१२. इम्फाल में

२ बजकर ५ मिनट पर हमने हिन्द-बर्मा सीमा पार की और मातृभूमि में प्रवेश किया। हमें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अपने घर में माता की गोद में बैठने के लिये हम जा रहे हों और वह बाहें पसार कर हमारा स्वागत कर रही हो। अपनी लम्बी यात्रा की सफल समाप्ति पर भी हम फूले न समा रहे थे। पहाड़ी रास्ते में से हमारी लारी आगे बढ़ी। रास्ता बड़ा ही

मनोरंजक और रमणीक था। ७ बजे हम पलेल पहुंचे। १६४४ में यहां महीनों हमारा तिरंगा राष्ट्रीय झंडा फहराता रहा था। यहां हमारे पासों की जांच-पड़ताल करने के लिये पुलिस ने हमको घण्टाभर रोक रखा। हमने शरणार्थी दफ्तर से लिये हुये पास पुलिस को दिखा दिये, किन्तु उसको उनसे सन्तोष न हुआ। वर्षों बाद हिन्दुस्तानी पुलिस से हमें यह पहला ही वास्ता पड़ा था। उनको गड़बड़ करते देख कर कुछ फौजी वहां आ गये। उन्होंने बीच-बिचाव करके और इन्स्पेक्टर के पीछे पड़ कर हमारे पास पास करा दिये।

रात को ८-३० बजे हम पलेल से आगे बढ़े। इम्फाल का रास्ता हमारे लिये ऐतिहासिक रास्ता था। उसकी चप्पा-चप्पा जमीन पर एक शानदार इतिहास लिखा हुआ था। इम्फाल के हमारे साथी ने हमें बताया कि कहां आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिकों ने अंग्रेज सेना के साथ मोर्चा लिया था! कहा वे शहीद हुए थे! कहां से उन्होंने अंग्रेज सेना को पीछे खदेड़ा था? गर्व और गौरव के साथ उस सारे इतिहास को सुनते हुए हम पिछली सारी मुसीबतों को सहसा ही भूल गये। इम्फाल अभी छः मील पर था कि हम एक झील के पास पहुंचे। हमारे मित्र ने बताया कि आजाद हिन्द फौज की टुकड़ी ने यहां तक अंग्रेज सेना को खदेड़ दिया था।

रात को ११ बजे हम इम्फाल पहुंचे। हमारा हृदय प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। कभी तो लम्बी यात्रा का सारा नक्शा हमारी आँखों के सामने नाचने लगता और कभी आजाद हिन्द फौज की वीरता की कहानी कानों में गुंजने लगती। इतने विचार दिमाग में एक साथ पैदा होने लगे कि हम अपने को भूल से गये। यही तो आजाद हिन्द की हल्दी घाटी है, जहां हमारे वीर सैनिकों ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी।

अपने मित्र के ही यहां हम ठहरे। युद्ध से पहिले उसकी स्थिति बहुत अच्छी थी। अब वह गरीबी में दिन काट रहा था। फिर भी उसकी

सहृदयता, उदारता और मिलनसारिता में कुछ भी कमी न आई थी। हमने दो रातें वहां बिताईं और सारा शहर घूम डाला।

दोनों दिन हमने अपने वीर सैनिकों की बहादुरी की बहुत-सी कहानियां सुनीं। श्रद्धा, आदर तथा गौरव के साथ हम उन कहानियों को सुनते और मन ही मन उनके चरणों में अपना माथा टेक कर अपने को धन्य मानते, जिन्होंने भारतमाता की आजादी के पीछे अपना सिर हथेली पर रख कर अपना सर्वस्व उसके चरणों में अर्पित कर दिया था। अत्यन्त शक्तिशाली और क्रूर साम्राज्य के पंजों से चालीस करोड़ देशवासियों को छुटकारा दिलाने के लिये किये गये उनके बलिदान का उल्लेख हमारे देश के इतिहास में सदा ही गर्व एक गौरव के साथ किया जाता रहेगा। उनके साथ इम्फाल का नाम भी इतिहास में अमर हो गया है।

३० दिसम्बर को हम इम्फाल से भी 'चलो दिल्ली' का शेष रास्ता पूरा करने के लिये आगे चल दिये।

३.

जापान के पराजय की प्रतिक्रिया

अपनी लम्बी यात्रा में हमने बहुत से अनुभव प्राप्त किये और सारी स्थिति के अध्ययन करने का भी हमें अच्छा अवसर हाथ लग गया। वर्मा की स्थिति का हमने अच्छा अध्ययन किया। थाईलैण्ड से तो हम जापान के पराजय के बाद ही चल पड़े थे और वहां अभी युद्ध से पहिले की स्थिति पैदा न हुई थी। इस लिये वहां की स्थिति का हम ठीक ठीक अध्ययन न कर सके थे। वर्मा की सरकार शिमला से लौट कर वर्मा आ चुकी थी और वर्मा में फौजी शासन के स्थान में सिविल शासन कायम करने का यत्न बड़ी तेजी के साथ किया जा रहा था। इस सारी प्रक्रिया को हमने अनेक शहरों में अपनी आंखों से देखा और सभी शहरों में आजाद हिन्द संघ तथा आजाद हिन्द फौज वालों से मिलने का भी अवसर हमें मिला।

अंग्रेज अधिकारियों ने शुरू शुरू में आजाद हिन्द संघ के प्रायः सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं को एकाएक गिरफ्तार कर लिया था। साथ में नागरिक स्वयंसेवक भी कैद कर लिये गये थे। वर्मा रक्षा कानून के अन्तर्गत उन पर मुकद्दमा चलाया गया। लेकिन, मुकद्दमे सफल न हुये और बाद में सब को छोड़ दिया गया। हमारे मारवाड़ी यजमान सेठ मोतीलाल भी उनमें से ही एक थे। कुछ दिन कैद में रखने के बाद चार मास से अधिक उनको अपने घर में नजरबन्द रखा गया था। उन्होंने सरकार पर उलटा मुकदमा दायर किया। इस पर भी हमने देखा कि वे बहुत प्रसन्न थे। उनके उत्साह में कुछ भी कमी न आई थी। बाकी सबका भी यही हाल था। उन्होंने बड़े गर्व के साथ हमें यह कहा कि मैं आजाद

हिन्द संघ में रहकर अपने राष्ट्र के लिये बराबर काम करता रहूंगा और संघ के जिम्मेदार कार्यकर्ता होने का अभिमान मुझको सदा ही बना रहेगा। उनका यह अभिमान एक दम ही निराधार न था। हमने अपनी आंखों से देखा था कि वे आजाद हिन्द संघ के कार्यकर्ताओं और और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की सेवा एवं सहायता करने में किस तत्परता के साथ लगे हुये थे। जब उनको यह पता चल गया कि हम आजाद हिन्द संघ के कार्यकर्ता हैं, तब उन्होंने हमारी सहायता करने में कुछ भी उठा न रखा। प्रायः सबका उत्साह इसी प्रकार बना हुआ था।

भेदभाव की जिस दुर्नीति से थाईलैंण्ड में काम लिया गया था, प्रायः सभी स्थानों पर उसी से काम लिया गया। नागरिकों में से भरती हुये सैनिकों को अंग्रेज सेना में से आये हुये सैनिकों से प्रायः सभी स्थानों में अलग कर दिया गया था। इन सैनिकों को बर्मा में जहां-तहां बने हुये कैम्पों में दूर-दूर रखा गया था। उनसे वहां कठोर शारीरिक काम भी लिया जाता था। कुछ कैम्पों में नागरिक-सैनिकों ने कैम्प कमाण्डरों के कैम्प छोड़ने के आदेशों की अवज्ञा की थी। इससे एक नया संकट और समस्या पैदा होगई थी। कुछ कैम्पों में पानी तक का समुचित प्रबंध न था। बीस-बीस घण्टे उन्हें पानी नहीं मिलता था। एक हिन्दुस्तानी फौजी डाक्टर जब ऐसे एक कैम्प को देखने गया, तब वहां की हालत देखकर चकित रह गया। तुरन्त पानी का समुचित प्रबन्ध करने का उसने आदेश दिया। उन नागरिक सैनिकों का सारा सामान, यहां तक कि रोज काम में आने वाला सामान भी; सारा जब्त कर लिया गया था। केवल पहने हुये कपड़ों के साथ उनको रिहा किया गया था। बहुत तो उनमें से मलाया तथा थाईलैण्ड के दूर स्थानों से आकर भरती हुये थे। वे बर्मा की भाषा तक न जानते थे। उनकी जान पहचान वाला भी तो वहां कोई न था। उनके लिये कोई मकान भी न था, जहां वे एक दो दिन ठहर सकते। उनकी

नेताजी बैंकौक में (पहली बार)—५ अगस्त १९४३ । श्री रघुनाथ शास्त्री और श्रीमती जे. डी. मेहतानी ने हवाई अड्डे पर आपका स्वागत किया ।
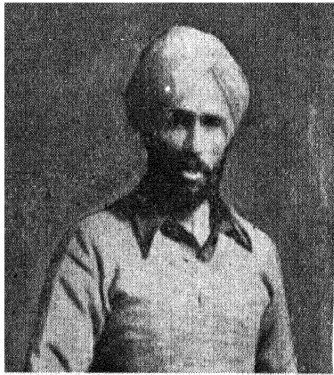
जनरल मोहनसिंह
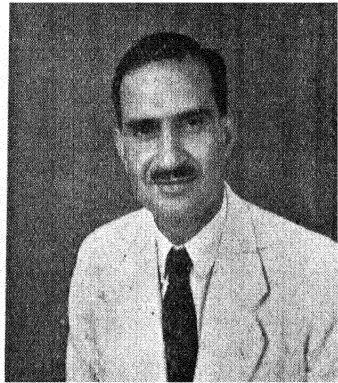
मेजर जनरल एम० जैड० कियानी

श्री. एन. राघवन
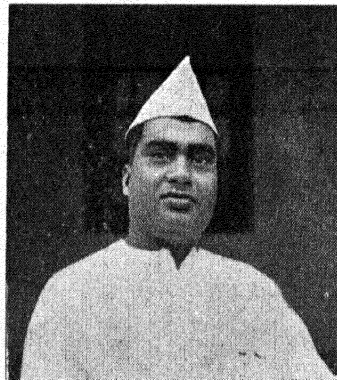
श्री परमानन्द

कठिनाइयों की कल्पना सहज में की जा सकती है। लेकिन, धन्य हैं वे वीर, जिन्होंने इन मुसीबतों में भी अपना धैर्य, विश्वास, साहस और हिम्मत न खोई था। उनके आपस के भ्रातृ-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम की जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है।

रिहाई के बाद ये बर्मा की राजधानी रंगून में आकर इकट्ठे हो गये थे। उनकी संख्या तीन हजार से ऊपर थी। ब्रिटिश सरकार के उपेक्षापूर्ण निन्दनीय दुर्व्यवहार पर भी उन्होंने अपनी सैनिक वृत्ति पर धब्बा न लगने दिया। नेताजी ने उनमें एकता, संगठन और बलिदान की जो अदम्य भावना भर दी थी, उस पर वे चट्टान की तरह दृढ़ थे। एक घण्टे के नोटिस पर उनको कहीं भी इकट्ठा किया जा सकता था और बड़े-से-बड़े संकट में उनको झोंका जा सकता था। उनमें अधिकांश ५, २६ और २७ नम्बर की गलियों में रहते थे। उन्होंने वहां अपना एक संघ बना लिया था। ५१ नं० गली में उनका प्रधान कार्यालय था। अपनी सेनाओं के लिये अंग्रेज अधिकारियों ने इस स्थान को निषिद्ध ठहराया हुआ था।

रंगून के उपनगर काम्बे में आजाद हिन्द फौज के अफसरों के लिए एक ट्रेनिंग स्कूल खोला गया था। वहां भी सौ-डेढ़ सौ ऐसे ही नागरिक-सैनिक ठहरे हुए थे। उनकी वृत्ति और भावना भी पहिले ही के समान बनी हुई थी। वहां भी अंग्रेज सेना के सैनिकों का आना-जाना निषिद्ध था। जीवन-निर्वाह के लिए इन्होंने तरह-तरह के काम शुरू किये हुये थे। कुछ ने कुछ होटल भी खोल लिये थे। उनमें आजाद हिन्द फौज के ढंग पर 'जयहिन्द' कह कर अभिवादन करने वालों को ही भोजन मिलता था। मुगल रोड़ पर तो 'जयहिन्द' नाम से ही होटल खोला गया था।

कलाव, थाजी, माण्डले आदि में ऐसे सैनिकों की संख्या अधिक न थी। लेकिन, अपनी वृत्ति और भावना में वे रंगून वालों से कम न थे। माण्डले में उनकी संख्या कुछ ही सौ से ऊपर थी। अपने जीवन-निर्वाह

के लिये ये लोग मेहनत-मजूरी करते और चावलों के बोरे ढोया करते थे। सवेरे ६ बजे से ५ बजे तक काम करने पर भी इनको केवल पंद्रह आने ही मिलते थे। इस संकटापन्न स्थिति में भी इन्होंने आजाद हिन्द फौज के रहन-सहन के ढंग और तरीके को नहीं छोड़ा। माण्डले में हम इन्हीं के साथ आर्यसमाज में ठहरे थे। वह एक प्रकार से इनका सदर मुकाम ही बन गया था। इनकी संख्या चालीस के लगभग थी। उनमें से एक आजाद हिन्द फौज में नायक था। उसको इन लोगों ने अपना कप्तान बना लिया था। वह उनमें अनुशासन कायम रखता, उनमें काम बांटना और उनके सुख-सुभीते की देखभाल करता था। सारी व्यवस्था आजाद हिन्द फौज की-सी ही थी। सबकी आमदनी एक साथ इकट्ठी कर ली जाती थी और सारा खर्च भी एक साथ इकट्ठा ही किया जाता था। बारी-बारी से दो आदमी सबका खाना बनाते थे। आजाद हिन्द फौज के ढंग पर खाना सबको एक साथ ही परोसा जाता था। इनमें अधिकांश दक्षिण भारत के रहनेवाले थे, जो मिर्च और खटाई बहुत खाते थे। लेकिन, आजाद हिन्द फौज के अनुशासन में किसी के लिये खास खाना नहीं बनता था। इसलिये इन्होंने मिर्च और खटाई खानी छोड़ दी थी। वे अब भी अपने साथियों के साथ वैसा ही खाना खाते थे। खटाई और मिर्च का प्रयोग उन्होंने शुरू नहीं किया था। वे अधिक शिक्षित न थे और राजनीति की तो वे वर्णमाला भी न जानते थे। लेकिन, अनुशासन में रहना वे जानते थे। हमारे देश के नौजवानों के लिये उनका यह उदाहरण निश्चय ही अनुकरणीय है।

इनकी दूसरी जिस बात ने हमें मोह लिया, वह थी एक दूसरे की सहायता करने की भावना। स्वयं गरीब होते हुये भी आजाद हिन्द फौज और संघ वालों की सहायता करने के लिये ये सदैव तत्पर रहते थे। हमारे पास खर्च के लिये पैसे होते हुये भी इन्होंने हमें एक भी पैसा खर्च करने नहीं

दिया। बर्मा में हम प्रायः सब जगह इनके ही मेहमान रहे। इनके प्रेम और सहृदयता का चित्र शब्दों में नहीं खींचा जा सकता।

इन गरीब सैनिकों के मुकाबले में धनी श्रीमानों की मनोवृत्ति की सराहना नहीं की जा सकती। इन सैनिकों के प्रति भी उनका व्यवहार सन्तोषजनक न था। रंगून में तो उनके व्यवहार के बारे में ऐसी कोई बात सुनने में नहीं आई। यहां उनका व्यवहार इस लिये सन्तोषजनक था कि उनकी सम्पत्ति तथा जान-माल की रक्षा करने में नेताजी ने बहुत दूर-दर्शिता से काम लिया था। नहीं तो बर्मी लुटेरों और डिफेंस आर्मी वालों ने उनका सुरक्षित रहना असम्भव बना दिया होता। यह अब किसी से भी छिपा नहीं है कि जापानियों द्वारा रंगून के खाली किये जाने पर नेताजी के निर्देश के अनुसार शहर की सारी व्यवस्था आजाद हिन्द फौज वालों के हाथों में ही थी और हिन्दुस्तानी आबादी के चारों ओर पहरा बिठा दिया गया था। लुटेरों और डाकुओं को वहां कुछ भी करने की हिम्मत न हुई थी। रंगून के हिन्दुस्तानी बड़ी कृतज्ञता के साथ इस सबको याद करते हुये आजाद हिन्द फौज वालों की सहायता करते थे। लेकिन, उत्तर और मध्य बर्मा में हालात दूसरे ही थे। कुछ लोगों को छोड़ कर वहां के हिन्दुस्तानियों का रुख अंग्रेजों के आने के साथ सहसा ही बदल गया। उन्होंने आजाद हिन्द फौज और संघ वालों से किनारा करना शुरू कर दिया। माण्डले में तो पैसे वालों ने उनकी उपेक्षा ही करनी शुरू कर दी थी। रिहा हुये नागरिक-सैनिकों का जब पहला दल माण्डले पहुँचा, तब उनके साथ न तो कुछ सामान था और न कोई उनकी खोज-खबर ही लेने वाला था। धनी व सम्पन्न हिन्दुस्तानियों ने उनके ठहरने तथा भोजन आदि की कुछ भी व्यवस्था या चिन्ता नहीं की। कुछ तो भूख और बीमारी के शिकार भी हो गये। इस पर भी उन्होंने उन पर कुछ भी ध्यान न दिया। माण्डले आर्यसमाज में ठहरे हुये सैनिकों ने तो हमें यहां तक बताया कि वहां के श्रीमन्त अधिकारियों को उनका वहां ठहरना भी पसंद न था। उनके कहने पर आर्यसमाज-भवन खाली न करने पर उन्होंने उनका

सामान बाहर फेंक देने की धमकी दी। लेकिन, आजाद हिन्द वालों की दृढ़ता के सामने उनको हार माननी पड़ी। गरीब हिन्दुस्तानियों के हृदय अब भी वैसे ही थे। वे एक दूसरे की सहायता के लिये जो कुछ भी कर सके, उन्होंने किया।

इन सैनिकों के समान आजाद हिन्द फौज संघ के कार्यकर्ताओं की स्थिति भी सर्वथा असहाय और निराशापूर्ण थी। लेकिन, वे शिक्षित थे और उनके कुछ मित्र तथा रिश्तेदार भी थे। दो तीन उनमें साधन-सम्पन्न भी थे। ये तब भी अपना काम पूरी मुस्तैदी के साथ कर रहे थे। श्री अमृतलाल सेठ के दैनिक पत्र 'जन्मभूमि' तथा अन्य पत्रों के प्रतिनिधि श्री ऐम० एम० दोशी ने 'टाइम्स आफ बर्मा' नाम का एक दैनिक पत्र निकालना शुरू किया था। आप आजाद हिन्द सरकार के पुनर्निर्माण विभाग में काम कर रहे थे। कुछ दिनों में ही पत्र बंद कर दिया गया; आफिस पर ताला लगा दिया गया और आप को गिरफ्तार कर लिया गया। आप पर राजद्रोही लेख लिखने का अभियोग लगाया गया है। आम तौर पर हिन्दुस्तानियों की आपके बारे में डाक्टर लक्ष्मी के शब्दों में यह राय थी कि, आपने लोगों की सराहनीय सेवा की थी। अपना पत्र भी आप बड़ी शान के साथ चला रहे थे। उसी सेवा का पुरस्कार यह मुकद्दमा था।

सरकारी अधिकारियों के कठोर और श्रीमन्तों के रूखे व्यवहार पर भी आजाद हिन्द संघ वालों में कहीं कोई कमजोरी दीख नहीं पड़ी। वे अपनी नैतिकता पर दृढ़ रहे। कई भाषाओं में, विशेषतः तामिल में, कई साप्ताहिक और दैनिक पत्र निकाले गये। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निकलने वाले इन पत्रों ने बड़ा काम किया। एक तामिल साप्ताहिक 'जयहिन्द' के नाम से निकाला गया। इसके सम्पादक और कार्यकर्ता सभी 'संघ' के लोग थे। अपनी यात्रा में हमने इसके कई अंक देखे। यह बहुत ही प्रभावशाली ढंग में निकल रहा था।

बर्मियों में हुई प्रतिक्रिया भी उल्लेखनीय है। हिन्दुस्तानियों विशेष

कर आजाद हिन्द फौज तथा संघ वालों के प्रति उनका रुख बहुत बदल गया था। युद्ध के दिनों में मेजर-जनरल आंग सेन सरीखों की भी यह धारणा थी कि आजाद हिन्द वाले जापानियों के हाथों में खेल रहे हैं। इसका मुख्य कारण उनकी ईर्ष्यावृत्ति थी। नेताजी जो काम सहज में जापानियो से करवा लेते थे, यह आजाद बर्मा सरकार या उसके अधिकारी नहीं करवा सकते थे। बर्मा तक में आजाद हिन्द सरकार को बर्मा सरकार की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्रता और सहूलीयतें थी। इससे बर्मी नेता कुछ ईर्ष्या करने लग गये थे। बर्मी लोगों पर भी अपने नेताओं का असर पड़ा। हिन्दुस्तानियों से वे घृणा तक करने लग गये थे। लेकिन, युद्ध के बाद उनकी आंखें खुल गईं। कई सचाइयों का उनको पता चला। उनको यह भी मालूम हुआ कि नेताजी के निरन्तर आग्रह और अनुरोध पर ही जापानियों ने 'बर्मी राष्ट्रीय फौज' की सत्ता को जायज माना था और उसको उन्होंने अपना काम करने की आजादी दी थी। अंग्रेजों के वायदों के खोखलेपन का भी तब उनको पता चला। इस लिये हिन्दुस्तानितों के प्रति उन्होंने स्नेह, सहृदयता और अपनेपन का व्यवहार करना शुरू कर दिया था। हमने अपनी आंखों से बदले हुये इस रुख को स्थान-स्थान पर अनुभव किया। बर्मियों और हिन्दुस्तानियों में पैदा हुई सहृदयता भी आजाद हिन्द फौज की एक बहुत बड़ी देन है।

४.

जापान-युद्ध से पहिले

१. पूर्वी एशिया में हिन्दुस्तानी

पूर्वी एशिया में जापान की युद्ध-घोषणा के बाद संसार को पता चला कि इन प्रदेशों में हिन्दुस्तानी चारों ओर किस प्रकार छाये हुये हैं। वे बहुत पहिले से, सदियों पहिले से, इन प्रदेशों में अनगिनत संख्या में आबाद थे। पूर्वी एशिया का कोई हिस्सा, गांव, कस्बा या शहर ऐसा न था, जहां वे देखने को न मिलते थे। मजूर, सिपाही, चौकीदार, दूकानदार, साहूकार और जमींदार आदि के सब धंधों में वे लगे हुये थे। रोटी की खोज में वे स्वदेश से निकले थे और उसी खोज में वहां जा पहुंचे थे। इनमें से अधिकांश को कुली और मजूर बना कर, धन का लालच देकर, बर्मा, मलाया और श्याम आदि पहुंचाया गया था। जिन अंग्रेजों ने इन देशों में अपना कारबार तथा खेती आदि शुरू किया था, उनके लिये कुली और मजूर हिन्दुस्तान से लाये गये थे। इनके बाद चौकीदारों और सिपाहियों का स्थान था। सिंगापुर, शंघाई, हांगकांग, कैंटन आदि शहरों में ये बहुत अधिक संख्या में थे। फिर व्यापारी थे, जिन्होंने छोटी छोटी दूकानों के साथ वहां काम शुरू किया था। उनमें से कुछ आज मालदार बन गये हैं और 'सेठ' कहे जाते हैं।

पूर्वी एशिया में हिन्दुस्तानियों ने छोटे दूकानदारों के रूप में अपना काम शुरू किया था। इसलिये वहां के निवासियों का प्रेम और सम्मान उनको न मिल सका। अंग्रेजों की दुश्चिंतता भी इसमें बहुत बड़ा कारण थी। दुनिया की नजरों में हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों के बारे में गलत-फहमी पैदा कर उनको नीचे दरजे में रखने के लिये उन्होंने उनको मजूरों,

कुलियों, चौकीदारों और सिपाहियों के रूप में ही लोगों के सामने रखा। पुलिस की नौकरी ही ऐसी है कि उसमें लगा हुआ आदमी नीचे गिरे तथा और लोगों की नजरों में भी गिरे बिना नहीं रह सकता। आम तौर पर जिस नफरत से इस पेशे के लोगों को देखा जाता है, उसी से हिन्दुस्तानियों को इन देशों में देखा जाने लगा। जब हिन्दुस्तानियों को इसका पता चला और उनकी आंखें खुलीं, तब उनके हाथ-पैर कट चुके थे और वे उसी नौकरी में लगे रहने को लाचार थे।

एक बात और है। इन देशों में बसे हुये हिन्दुस्तानियों को ऊपर उठने के लिये ब्रिटिश सरकार ने कभी कोई सुविधा नहीं दी। इन देशों और हिन्दुस्तान में भी कुलीगिरी के विरुद्ध प्रचण्ड आन्दोलन होने पर भी उसको रोका नहीं गया। बूचड़खाने में ले जाई जाने वाली भेड़-बकरियों और जानवरों की तरह खदेड़ कर हिन्दुस्तान से इन लोगों को इन देशों में लाया जाता था। यहां उनकी और उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा तक की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। कुली और मजूरों को अपनी स्थिति सुधारने के लिये अपना कोई संगठन नहीं बनाने दिया जाता था। व्यापारियों को अनेक कठिनाइयों के बीच स्वयं अपना रास्ता बनाना पड़ा था। पग पग पर ठोकरें खाना और अपमान झेलना उनकी किस्मत में लिखा था। वहां के नागरिक भी उनके रास्ते में रोड़े अटकाने में लगे रहते थे। अलबत्ता जापान में उनकी कुछ इज्जत जरूर थी। वहां हिन्दुस्तानी भी अपने को कुछ आजाद अनुभव करते थे। वे स्वतन्त्र वातावरण में कुछ स्वतन्त्रता के साथ सांस लेते थे। कुछ धनी-व्यापारी थे और कुछ थे उनके प्रतिनिधि। फलतः उनके रहन-सहन का धरातल भी काफी ऊंचा था। जापान-युद्ध छिड़ने से पहिले पूर्वी एशिया में कुल मिला कर तीन करोड़ हिन्दुस्तानी रहते थे। इनमें से एक करोड़ बर्मा में, चालीस हजार थाईलैण्ड में, ५० हजार जावा-सुमात्रा में, पांच हजार बोर्नियो में, तीन हजार फिलिपाइना में, बीस हजार हांगकांग, शंघाई तथा चीन में और डेढ़ हजार जापान में थे।

२. बर्मा में

यहां आम तौर पर ये मजूरी पेशे में लगे हुये थे। तेल के कुओं, जंगलों और खेतों में वे काम करते थे। कुछ थोड़े से छोटे-बड़े व्यापारी, जमींदार साहूकार भी थे। मजूर आम तौर पर दक्षिण भारत से आये थे। वे गरीबी से पीड़ित होने पर भी साहस के इतने धनी थे कि पेट की ही खातिर क्यों न हो, जमीन-आसमान एक कर देने का साहस रखते थे। उनका जीवन शुरू में भावना शून्य होने पर भी पिछले दिनों में उनमें राष्ट्रीय जागृति का सूत्रपात हुआ था। लेकिन, वह राख के नीचे दबी हुई आग के समान था। १६३५ में बर्मा को हिन्दुस्तान से अलग किया गया था। उससे पहले बर्मा में राष्ट्रीय कांग्रेस की एक शाखा कायम थी। बस, वही एक राजनीतिक संस्था थी। वैसे व्यापारियों की एक संस्था 'इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स' जरूर थी। लेकिन, उसका काम उन थोड़े से व्यापारियों के हितों एवं स्वार्थों की रक्षा करना ही था।

१६३७ में बर्मियों द्वारा किये गये विद्रोह के समय तक, जिसे आम तौर पर दंगे तथा उपद्रव कहा जाता है, बर्मियों के हिन्दुस्तानियों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। इस लम्बे विप्लव में कुछ झगड़ा हिन्दुस्तानियों, विशेषकर मुसलमानों के साथ हुआ था। उसमें हिन्दुस्तानियों को काफी हानि झेलनी पड़ी थी। लूटपाट, बरबादी और कत्ल आदि का उनको शिकार होना पड़ा था। इससे परस्पर के सम्बन्ध काफी बिगड़ गये थे। उनको सुधारने का यत्न काफी किया गया। हिन्दुस्तानियों की राजनीतिक आकांक्षाओं के साथ बर्मियों की काफी सहानुभूति रही है। वे कांग्रेस के अधिवेशनों में प्रतिनिधि के रूप में भी सम्मिलित होते रहे हैं। भिक्षु उत्तमा का नाम इस सम्बन्ध में सदा ही याद किया जाता रहेगा। वे हिन्दू महासभा के प्रधान भी हुये थे। उन्हें बर्मा से निर्वासित कर दिया गया था और निर्वासित अवस्था में ही जापान में उनका स्वर्गवास हुआ था।

३. मलाया में

मलाया में भी बर्मा की तरह हिन्दुस्तानी सब ओर और सभी कार्यों में लगे हुये थे। उनमें अधिकतर मजूर थे, जो रबड़ की खेती, सीसे व जस्त की खानों और खलासी के कार्यों में लगे हुये थे। वे सब हिन्दुस्तान से बतौर कुली के भरती करके भेजे गये थे। पुलिस व सरकारी नौकरी में भी काफी लगे हुए थे। चौकीदारों और ग्वालों की संख्या भी कम न थी। एक बड़ा भाग दूकानदारों का भी था, जिनमें कुछ जमींदार और साहूकार थे। दिमागी काम करने वाले वकील, बैरिस्टर और अध्यापक भी थे।

बर्मा की अपेक्षा यहां भारतीयों में कुछ अधिक जीवन और जागृति थी। उनमें आत्म चेतना भी काफी थी। राजनीतिक जीवन का भी उनमें काफी विकास हुआ था। इसके दो कारण था। एक तो उनका अपना संगठन था और दूसरे सरकार की दुर्नीति के प्रति उनमें असन्तोष था। भारतीय संघ, मजूर संघ, व्यापारी संघ आदि कुछ संस्थायें भी उन्होंने कायम कर ली थीं। शिक्षा के क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन ने अच्छा काम किया था। इससे भारतीय संस्कृति का भी खासा प्रचार हुआ। केन्द्रीय भारतीय संघ सबसे अधिक सुदृढ़ और सुसंगठित संस्था है। श्री एन० राघवन, डाक्टर एन० के० मैनन, श्री ऐस० सी० गोहो जैसे प्रमुख व्यक्ति इसके सभापति रह चुके थे।

मलाया में मजूरी करने के लिये आये हुये लोग भी अधिकतर दक्षिण भारत से आये थे और उनको मलाया के लोग 'कुली' कह कर पुकारा करते थे। इनकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी। धनी और साहूकार इनका बुरी तरह शोषण किया करते थे। मजूर संघ ने इनकी अवस्था सुधारने के लिये काफी आन्दोलन किया। १९४१ के शुरू दिनों की बात है। क्लांग और एफ० एम० एस० के मजूरों ने महंगाई से परेशान होकर मजूरी बढ़ाने की मांग की। मालिकों ने इस कान सुना और उस कान निकाल दिया।

मजूरों को मजबूरन हड़ताल करनी पड़ी। मजूरों के पास और हथियार ही क्या था ? मालिकों ने गोलियां तक चलाईं। जुलाई १९४५ के "इण्डिया क्वाटरली" के पृष्ठ२५३ पर एक मलायानिवासी ने 'मलाया का भविष्य' शीर्षक से लिखे गये लेख में लिखा था कि "एक युरोपियन मैनेजर के बंगले के पास निहत्थी भीड़ पर मलाया सरकार ने गोलियां दागीं। पहिले एक आस्ट्रेलियन अफसर को गोली चलाने को बुलाया गया। उसने यह कह कर गोली चलाने से इनकार कर दिया कि "हम जिनकी रक्षा करने आये हैं, उन पर गोलियां नहीं चला सकते।" इस पर हिन्दुस्तानी फौज बुलाई गई। उसने बड़ी बेरहमी के साथ गोलियां चलाईं। कई मारे गये और अनेकों घायल हुए। यहीं पर काण्ड समाप्त न हुआ। धर-पकड़ शुरू हुई। श्री० एच० आर० नाथन भी पकड़े गये। उनको मलाया से निर्वासित कर दिया गया था। श्री नाथन को बाद में बेलोर की जेल में बन्द कर दिया गया। सभी हिन्दुस्तानी समाचारपत्रों पर कठोर पाबन्दियां लगा दी गईं। उनका निकलना तक मुश्किल हो गया। अन्य कई प्रकार के दमन का भी हिन्दुस्तानियों को शिकार बनाया गया। इस सबका परिणाम अच्छा ही हुआ। भीतर ही भीतर असन्तोष की आग सुलग उठी और अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा हो गई।

४. श्री राघवन

मलाया के हिन्दुस्तानियों के प्रमुख नेता श्री० ऐन० राघवन का यहां संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। आप दक्षिण भारत के मलाबार के निवासी हैं। आपने बैरिस्टरी पास की है। चतुर और तेज वकील हैं। युद्ध की आग सुलगने से बहुत पहिले से, लगभग दस वर्ष पहले से, आप मलाया में रहते थे। १९३७-३८ में आप ही 'भारतीय संघ' और 'केन्द्रीय भारतीय संघ' के भी सभापति थे। 'दी इण्डियन' नामक पत्र के आप डाइरैक्टर थे। श्री नीलकण्ठ अयर इसके सम्पादक थे। श्री अयर ने बीमा के व्यवसाय में अच्छा नाम पैदा किया था। १९४२ में टोकियो सम्मेलन

के लिये जाते हुये हवाई जहाज की दुर्घटना में आपका स्वर्गवास हो गया था। १९४२ के गोलीकाण्ड को लेकर श्री राघवन हिन्दुस्तान आये थे और यहां आकर आपने उस सम्बन्ध में आन्दोलन किया था। रामगढ कांग्रेस में भी आप उपस्थित हुये थे। पूर्वी एशिया में युद्ध छिड़ते ही आपने मलाया के हिन्दुस्तानियों को संगठित करना शुरू किया। १९४१ के मार्च मास में हुये टोकियो सम्मेलन में भी आप शामिल हुये थे। 'आजाद हिन्द संघ' की स्थापना होने पर मलाया की प्रादेशिक शाखा के आप प्रधान चुने गये। १९४२ में हुये बैंकौक सम्मेलन के पांच प्रमुख वक्ताओं में आप एक थे। आप कुशल और प्रभावशाली वक्ता हैं। आपके भाषण पर लोग मन्त्र-मुग्ध से हो गये थे। त्याग और बलिदान के लिये आपकी अपील का लोगों पर जादू का-सा असर पड़ा था। सम्मेलन को सफल बनाने में आपने प्रमुग भाग लिया था। उसकी विषय नियामक समिति में भी आप चुने गये थे। प्रस्तावों की रचना में भी आपका विशेष भाग था। युद्ध परिषद में भी आपको लिया गया था। १९४२ में उस से स्तीफा देकर आप पिनांग जाकर रहने लगे। यहां पर आपने 'स्वराज्य इन्स्टीट्यूट' कायम किया और नौजवान हिन्दुस्तानियों को राजनीति तथा हुनर की शिक्षा देने में अपने को लगा दिया। डेढ़ साल आपने शान्त रह कर एकान्त में बिताया। १९४४ में नेताजी की पुकार पर आप फिर मैदान में उतर आये। आजाद हिन्द सरकार के आप अर्थमन्त्री नियुक्त किये गये। आपने अन्त तक इस पद पर रह कर काम किया। अंग्रेजों के मलाया में फिर से आने पर आप भी गिरफ्तार कर लिये गये थे।

५. थाईलैण्ड में

थाईलैण्ड को स्वतन्त्र होने पर भी अर्ध उपनिवेश ही कहा जाना चाहिये। भारतीय और चीनी सभ्यतायें यहीं आ कर मिलती हैं! थाईलैण्ड पर चीनी सभ्यता, कला और भाषा का इतना असर नहीं पड़ा, जितना कि हिन्दुस्तानी सभ्यता, कला तथा भाषा का पड़ा है। यहां के लोगों ने

हिन्दुस्तानियों का स्वागत कर उनके प्रति सदा ही सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया है। सदियों से वे यहां रहते हैं। बृहत्तर भारत का इसे सीमा प्रदेश ही कहना चाहिये। बैंकौक, चांगमाई, अयुध्या, सिंगोग, राजवरी, नोकन, पाटन आदि में हिन्दुस्तानी अधिक संख्या में रहते थे। थाईलैण्ड का कोई भी हिस्सा ऐसा न था, जिसमें वे दीख न पड़ते हों।

लड़ाई से पहिले छोटे दूकानदारों की संख्या अधिक थी। कुछ थोड़े से बड़े व्यापारी भी थे। वे कपड़े का कारबार और रुपये का लेन-देन भी करते थे। ग्वालों और चौकीदारों की संख्या भी काफी थी। पंजाब से आये हुये अधिकतर व्यापारी थे। ग्वालों और चौकीदारों की अधिक संख्या युक्तप्रान्त से, विशेष कर गोरखपुर से आये हुओं की थी।

प्रारम्भ में वर्षों तक उनकी अपनी कोई संस्था या संगठन न था। बैंकौकस्थित अंग्रेजी दूतावास की कृपा पर उन्हें निर्भर रहना पड़ता था। अंग्रेजों ने न तो राजनीतिक चेतना पैदा होने दी और न उनकी किसी संस्था को ही पनपने दिया। हिन्दू संघ, सिख संगठन, अंजुमन इस्लाम सरीखी साम्प्रदायिक संस्थाओं को खूब बढ़ावा दिया गया। १९१४ - १८ में यहां कुछ चेतना पैदा हुई थी। लाला हरदयाल एम. ए. यहीं से होकर हिन्दुस्तान से भागे थे। तब यहां के लोगों ने उनकी खूब मदद की थी। इसकी कीमत भी उनको खासी चुकानी पड़ी। उन पर तरह तरह के अत्याचार किये गये। उनको अपमानित किया गया। श्री एस. बुद्धसिंह को कालेपानी की सजा दी गई। बाद को वहां ही उनकी मृत्यु हो गई।

१९३० के पहिले जब राजा महेन्द्रप्रताप बैंकौक आये थे, तब वहां के लोगों को उनका स्वागत करने से रोक दिया गया था। गरीब और असंगठित हिन्दुस्तानियों ने सरकारी आदेश का चुपके से पालन किया। १९३५ के आसपास यहां संगठन की चर्चा होनी शुरू हुई। इसका श्रेय स्वर्गीय स्वामी सत्यानन्दजी को है।

९. स्वामी सामानन्दजी पुरी

शान्ति निकेतन के छात्र स्वामी सत्यानन्द पुरी को थाई सरकार ने बौद्ध धर्म पर कुछ भाषण देने के लिये आमन्त्रित किया था। लेकिन, वहा के हिन्दुस्तानियों की दुरवस्था देखकर आपने यहां ही रहने का निश्चय कर लिया। आप वैदिक दर्शन और संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। पढ़े-लिखे लोगों पर आपका इतना प्रभाव बढ़ा कि उन्होंने सरकार से स्वामीजी को अधिक दिन वहां रोकने की प्रार्थना की। लोगों के अनुरोध पर आपने थाई भाषा के अनुसंधान का भी काम किया। छः ही मास में आपने थाई भाषा सीख ली और इसमें लिखना भी शुरू कर दिया। कई छोटी-मोटी पुस्तकें भी आपने लिखीं। महात्मा गांधी, गुरु गोविंदसिंह और श्री टैगोर की जीवनियां बहुत लोकप्रिय हुईं। थाई भाषा में कुछ सुधार कर उसको आधुनिक भाषाओं की श्रेणी में ला बिठाया। १९३९ में आपने बैंकाक में एक "धर्म आश्रम" स्थापित किया। भारतीय और थाई सभ्यता के मिश्रण के लिये किया गया यह पहिला ही उद्योग था। अंग्रेजों को स्वामीजी की ये साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियां भी पसंद न थीं। पर, वे कोई अड़ंगा न डाल सके। एक तो यह सांस्कृतिक संस्था थी, दूसरे थाई सरकार के प्रायः सभी प्रभावशाली अधिकारी और व्यक्ति स्वामीजी के साथ थे। १९४०–४१ के आसपास आपने 'थाई हिन्दुस्तानी कल्चर लॉज' खोला। इसका उद्देश्य भी दोनों देशों के निवासियों को पास-पास लाना था। लाज का अपना एक सुन्दर पुस्तकालय भी था।

पूर्वीय एशिया में लड़ाई का सूत्रपात होते ही बैंकौक में स्वामीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय महासभा स्थापित की गई। बाद को जब टोकियो में श्री रासबिहारी बोस ने सम्मेलन का आयोजन किया, तो उसके लिये स्वामीजी को थाईलैण्ड से निमंत्रित किया गया था। लेकिन,

दुर्भाग्य से जापान के पास 'ईसेवे खाड़ी में हवाई दुर्घटना होगई। स्वामीजी और उनके तीन साथी जिस जहाज में सवार थे, वह वहां गिर कर डूब गया। इस दुर्घटना से महान भारतीय विद्वान, पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों का महान नेता और थाईलैण्ड वालों का अन्यतम सेवक संसार में से उठ गया। आपकी स्मृति को स्थायी बनाने के लिये एक ट्रस्ट कायम किया गया और एक पुस्तकालय भी स्थापित किया गया। थाई सरकार के विदेशमन्त्री के स्थायी सलाहकार श्री एच० आर० एच० राजकुमार वान विथाकरण इसके संरक्षक थे।

७. इण्डोनेशिया, फिलिपाइन्स और चीन में

इण्डोनेशिया के जावा, सुमात्रा और बोर्नियो आदि द्वीपों में हिन्दु-स्तानियों को कुलीगीरी के लिये ही ले जाया गया था। ये लोग तेल के कुओं, जंगलों और रबर के खेतों में काम करते थे। व्यापारी बहुत ही थोड़े थे। ब्रिटिश बोर्नियो में कुछ लोग पुलिस की नौकरी और चौकी-दारी का काम करते थे।

फिलिपाइन्स में हिन्दुस्तानी छात्रों की काफी संख्या थी। कुछ तो वहां के नागरिक ही बन गये थे। कुछ व्यापारियों के प्रतिनिधि भी थे। व्यापारियों की अपनी एक संस्था थी, जिसकी ओर से एक बुलेटिन भी निकलता था। कभी-कभी इसी की ओर से कुछ व्याख्यान आदि भी हुआ करते थे।

हिन्द चीन में भी हिन्दुस्तानी अधिकतर मजूर ही थे और कुछ साहूकार भी थे। साहूकारी का काम करने वाले दक्षिण भारत के चट्टी थे। फ्रांस-अधिकृत इस प्रदेश के हिन्दुस्तानियों की स्थिति मलाया के हिन्दुस्तानियों से कुछ अधिक अच्छी न थी।

चीन में रहने वाले हिन्दुस्तानी अधिकतर मकाओ, कैण्टन, हांगकांग, शंघाई, नानकिन, तिनसिन आदि समुद्रतटवर्ती नगरों में ही रहते थे। पुलिस में नौकरी करने वालों की संख्या खासी थी। इनको अंग्रेज

सरकार ने ही भरती किया था। उसके बाद चौकीदारों की संख्या थी। सरकारी नौकरी में लगे हुये भी काफी थे। शंघाई और हांगकांग में हिन्दुस्तानियों की कारबार की बड़ी-बड़ी फर्में भी थीं। हांगकांग में विद्यार्थियों की संख्या बहुत थी। उनमें से कुछ हांगकांग विश्वविद्यालय में डाक्टरी पढ़ रहे थे। यहां हिन्दुस्तानी क्लब और सार्वजनिक संस्थायें भी थीं। लेकिन, उनका राजनीति के साथ कोई सरोकार न था।

शंघाई में अलबत्ता क्लबों और सामाजिक संस्थाओं के अलावा चीननिवासी हिन्दुस्तानियों की एक राष्ट्रीय संस्था भी थी, उसका नाम था—'इण्डियन नेशनल एसोसियेशन आफ चाइना।' इसकी स्थापना १६४० में ही हुई थी। इसके पहले प्रधान डाक्टर अब्राहम थे और बाद में श्री ए० रहमान प्रधान चुने गये थे।

८. जापान में

जापान में हिन्दुस्तानियों की संख्या अधिक न थी। लेकिन, उनमें कोई कुली या मजूर न था। वे व्यापारी संस्थाओं के या तो प्रतिनिधि थे अथवा उनमें नौकरी करते थे। इनकी वहां अधिकतर शाखायें ही थीं और उनके केन्द्रीय कार्यालय थे हिन्दुस्तान में, थाईलैण्ड में अथवा अन्य देशों में। वे अधिकतर कोबे या योकोहामा में रहते थे, कुछ टोकियों और ओसाका में भी रहते थे। उनकी सामाजिक, व्यापारिक और राजनीतिक संस्थायें बहुत ही अच्छे ढंग पर सुसंगठित थीं।

सामाजिक संस्थाओं में कोबे की इण्डियन क्लब, इण्डियन सोशल एसोशियेशन, इण्डो थाई सोसाइटी तथा भारत मन्दिर और योकोहामा की इण्डियन क्लब उल्लेखनीय हैं। हिन्दुस्तानियों के रहन-सहन का धरातल यहां उतना ही ऊँचा था, जितना कि यूरोपियनों या अन्य विदेशियों का था। इसलिये वे इज्जत और आराम की जिन्दगी काट रहे थे। व्यापारी संस्थाओं में जापान सरकार द्वारा स्वीकृत इण्डियन चैम्बर आफ़ कामर्स नाम की संस्था थी। व्यापारियों के हितों एवं स्वार्थों की रक्षा के

लिये इसको काफी संघर्ष भी करना पड़ता था और सुसंगठित होने से इसको प्रायः सफलता ही मिलती थी। राजनीतिक दृष्टि से दो बड़े संगठन थे और उनके नाम थे इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग और इण्डियन नेशनल एसोसिएशन। बाद में पूर्वी एशिया में पैदा हुये आजाद हिन्द आन्दोलन और संगठन ने जिस इतिहास का निर्माण किया है, उसका सारा श्रेय इन्हीं संस्थाओं को दिया जाना चाहिये।

टोकियो के हिन्दुस्तानी विद्यार्थी संघ और महान नेता राजा महेंद्रप्रताप के केन्द्रीय विश्व संघ का नाम भी दिया जाना आवश्यक है। टोकियो के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों ने विद्यार्थी संघ कायम किया था। स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस इसके संरक्षक थे। इसका मुख्य उद्देश्य जापान में रहनेवाले हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों में भाईचारा पैदा करके उनमें जीवन तथा जागृति पैदा करना था। श्री डी० एस० देशपाण्डे और श्री राममूर्ति इनके प्रमुख नेता थे। कोकुवंजी-टोकियो के केन्द्रीय विश्व संघ का उल्लेख करते हुये राजा महेन्द्रप्रताप का परिचय देना आवश्यक है। उनकी जीवनी और विश्व संघ दोनों एक ही चित्र के दो पहलू हैं।

६. राजा महेंद्रप्रताप

संसार के सब धर्मों का एकीकरण करने और सब जातियों का एक संघ कायम करने का स्वप्न राजा महेन्द्रप्रताप बहुत छोटी अवस्था से देखने लग गये थे। जब उनकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी, तब उन्होंने दिल्ली दरबार में पधारने वाले चीनी और तिब्बती प्रतिनिधि मण्डल को अपने यहां आने का निमन्त्रण दिया था और उनसे अपने को सब धर्मों का नेता मान लेने का अनुरोध किया था। अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही उनकी प्रकृति बहुत ही साहसी थी। विशेष गुणों की झलक उनमें साफ दीख पड़ती थी। हाथरस के पास उनकी बहुत बड़ी जमींदारी थी। वंश-परम्परा से उनको 'राजा' का खिताब था। अपने खर्च से आपने वृन्दावन में 'प्रेम महाविद्यालय' की स्थापना की

लैफ्टिनेण्ट कर्नल डाक्टर लक्ष्मी (सैनिक वेश में)

श्री आनन्दमोहन सहाय

पुस्तक के लेखक (जापान में)

थी। निश्चय ही यह एक आदर्श राष्ट्रीय संस्था बन जाती, यदि राजा साहब को स्वदेश छोड़ कर विदेशों में भटकना न पड़ता और वे अपने आदर्शों के अनुसार उसका संचालन कर सकते। फिर भी इस संस्था ने अपने संस्थापक के नाम की लाज रख कर अपने राष्ट्रीय होने का प्रमाण बराबर पेश किया है। प्रायः सभी आन्दोलनों में इस संस्था को सरकार के प्रकोप का शिकार होकर उस पर वर्षों उसका ताला और पुलिस का पहरा पड़ा रहा है। १६१४-१८ के पहिले विश्व युद्ध के दिनों में अंग्रेज सरकार का युद्ध में साथ देने के नाम पर आप अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी के बड़े पुत्र पण्डित हरिश्चन्द्रजी विद्यालंकार के साथ यूरोप के लिये यहां से बिदा हुए और कहते हैं कि इटली में जहाज से उतर कर पैदल ही जर्मनी चले गये। अपनी पत्नी, बच्चे और सारे परिवार को आप यहां ही छोड़ गये। तब से आपको भीषण क्रान्तिकारी मान कर स्वदेश लौटने नहीं दिया जाता। सब धर्मों और जातियों का केन्द्रीय विश्व संघ कायम करने की धुन में आपने एशिया और यूरोप के विभिन्न देशों में पर्यटन किया। काबुल से बर्लिन तक तो आपने कितने ही चक्कर काटे होंगे। प्रायः सभी देशों में वहां के शासकों और अधिकारियों से आपने दोस्ती गांठी। अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला, तुर्की के खलीपा अबुल मजीद, जर्मनी के कैसर विलियम आदि सभी के साथ आपका प्रत्यक्ष परिचय था। रूस के जार, टाल्सटाय, लैनिन और ट्राटस्की तथा युरोप के अन्य बड़े लोगों के साथ आपका पत्र-व्यवहार था। तभी से आप 'केन्द्रीय विश्व संघ' की स्थापना करने के उद्योग में लगे हुये थे। राजासाहब को लैनिन ने अपने एक पत्र में लिखा था कि 'ईश्वर और विश्व संघ के सम्बन्ध में आपका विचार टालस्टायवाद से भिन्न नहीं है।' राजासाहब ने इस पत्र को बहुत कीमती धरोहर के रूप में बहुत संभाल कर रखा हुआ है। १६१७ में राजासाहब ने काबुल में अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की थी। मौलाना बरकत अली परराष्ट्र-मन्त्री के रूप में उसके एक मन्त्री थे। इन्हीं दिनों में बादशाह अमा-

नुल्ला ने हिन्दुस्तान के उत्तरी दरवाजे पर आक्रमण किया था। कहा जाता है कि इसमें राजाजी की आजाद हिन्द सरकार का हाथ था। उसके तुरन्त बाद महायुद्ध समाप्त हो गया और राजाजी का स्वप्न अधूरा ही रह गया। उसके बाद आप फिर विश्व यात्रा पर निकल पड़े। अमेरिका, मैक्सिको आदि होते हुए चीन आ गये। चीन में काफी समय रहे। ब्रिटिश सरकार ने आपको 'अपराधी' घोषित किया हुआ था। इसी लिये आपका एक स्थान में रहना सभव ही न था। इस दौरे में एक बार आपका एक थैला चीन में कहीं खो गया। उसमें बहुत कीमती और महत्वपूर्ण कागजपत्र थे। उसके बाद से आप बड़े खीसों वाला लम्बा कोट पहनने लग गये और थैला न रख कर उसी में सब कीमती कागज रखने लग गये। १६३४ में आप जापान चले गये। उसी वर्ष आप जापानी जहाज मे सवार होकर बैंकौक भी आये थे। वहा के हिन्दुस्तानियों ने आपके स्वागत के लिये विराट् आयोजन किया था। लेकिन, ज्यों ही जहाज किनारे पर लगने को था कि बैंकौक-स्थित ब्रिटिश राजदूत ने हिन्दुस्तानियों पर एक नोटिस तामिल किया कि वे उनका स्वागत करने के लिये बन्दरगाह पर न जांय। ब्रिटिश दूतावास पर निर्भर रहने वाली गरीब हिन्दुस्तानी जनता के पास चुपके से उस आदेश को मानने के सिवा दूसरा उपाय ही क्या था ? केवल कुछ साहसी हिन्दुस्तानी उनका स्वागत करने के लिये गये। उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती थी। ब्रिटिश अधिकारियों के इशारे पर राजाजी को थाई सरकार ने गिरफ्तार करके दो सप्ताह तक जेल मे रखा और जापानी जहाज से जापान लौट आने के लिये आपको रिहा किया गया। १६३० में आप फिर चीन चले गये। ब्रिटिश अधिकारियों के इशारे पर चीनी पुलिस ने आपको बहुत तंग किया। इसी वर्ष टोकियो के पास कोकूबुंजी में आपने कुछ जमीन ले ली। वहां आपने थोड़े ही समय में एक छोटी सी बढ़िया झोंपड़ी और अत्यन्त रमणीक बगीचा बना लिया। 'वर्ल्ड फिडरेशन' अर्थात् 'विश्व-संघ' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी आपने निकालना शुरू किया। उसी

झोंपड़ी को आश्रम का रूप देकर उसका नाम 'केन्द्रीय विश्व संघ' रख दिया गया। उस साप्ताहिक में आप अपनी साहसपूर्ण यात्राओं का विवरण, पत्र-व्यवहार और 'विश्व संघ' के सम्बन्ध में अपने विचार दिया करते थे।

पूर्वी एशिया में की गई जापान की युद्ध-घोषणा से कुछ ही दिन पहले आपने मोशियो जोसेफ स्टालिन को एक पत्र लिख कर रूस जाने की अनुमति मांगी थी। लेकिन, आपकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। उन्हीं दिनों में राजा महेन्द्रप्रताप, स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस और श्री आनन्दमोहन सहाय ने कांग्रेस के नेताओं को हिन्दुस्तान एक आवेदन-पत्र भेज कर उनको जापान की संभावित युद्ध-घोषणा के बारे में सावधान किया था। युद्ध होने पर पूर्वी एशिया में रहने वाले हिन्दुस्तानियों का पथ-प्रदर्शन करने के लिये एक कमेटी बनाई गई थी। ये तीनों सज्जन और स्वर्गीय श्री डॉ० ऐस० देशपाण्डे उसके सदस्य थे। कमेटी यह फैसला न कर सकी कि प्रमुख या नेता किसको बनाया जाय। इससे ऊबकर राजाजी कमेटी से अलग हो गये और सक्रिय राजनीति से भी आपने संन्यास ले लिया। जापानी सरकार को आपने सूचित कर दिया कि आप उसके दोस्त नहीं हैं। चूंकि जापानस्थित हिन्दुस्तानी उनके खर्च की व्यवस्था नहीं कर सकते, इसलिये उनको खर्च के लिये मासिक एक हजार येन मिलने चाहियें। एक ही मास बाद जापान सरकार ने उस रकम को आधा कर देना चाहा। राजा साहब ने विरोध में एक भी पाई लेने से इनकार कर दिया। जापानियों ने असन्तुष्ट होकर आपको अपनी ही कुटिया में नजरबन्द कर दिया और युद्ध-काल में निरन्तर नजरबन्द रखा। जापान के पराजय के बाद जब अमेरिकन वहां पहुँचे, तब उन्होंने भी आपको गिरफ्तार कर लिया। आपको युद्ध-बंदी बनाने, ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंपने और आप पर भी मुकदमा चलाये जाने के अनेक प्रकार के समाचार सुनने में आये। हिन्दुस्तान में इस पर आन्दोलन भी हुआ। मार्च १९४६ में

आपको रिहा किया गया है। आपको अपने ही आश्रम में रहने की सुविधा दे दी गई है। स्वदेश लौटने की आपको अंग्रेज अधिकारियों ने अनुमति नहीं दी है। आपको आज भी १६१४-१८ के दिनों के समान ही भयानक क्रान्तिकारी माना जा रहा है। स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के आधार पर नये विश्व के निर्माण करने का दावा करने वाले आपके 'विश्व संघ' में आज भी विद्रोह और विप्लव की ही कल्पना किये हुये हैं।

१०. स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस

जापान में कायम की गई इण्डिपेण्डेंस आफ इंडिया लीग बनाम आजाद हिन्द संघ वस्तुतः श्री रासविहारी बोस की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का ही नाम था। श्री बोस इस संघ के संस्थापक और पूर्वी एशिया में व्यापक आजाद हिन्द आन्दोलन के तो जन्मदाता ही थे। स्वदेश की आजादी के लिये अपने जीवन को न्योछावर करने वालों में श्री बोस का नाम इतिहास में सदा ही गर्व एवं गौरव के साथ याद किया जाता रहेगा। फ्रेंच भारत के उस सुप्रसिद्ध शहर चन्द्रनगर में १८८० में आपका जन्म हुआ था, जिसका सम्बन्ध हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ विशेष रूप से जुड़ गया है। सम्भवतः इसी लिये श्री बोस भी क्रान्तिकारी रूप में सामने आये और हिन्दुस्तान की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों, आन्दोलनों तथा संगठनों के साथ बचपन से ही उनका बहुत गहरा सम्बन्ध रहा। खूनी क्रान्ति में आपका दृढ़ विश्वास था। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन से पहिले हिन्दुस्तान सरीखे गुलाम देश के लोगों के लिये आजादी प्राप्त करने का खूनी क्रान्ति के सिवा दूसरा रास्ता ही न था। हिन्दुस्तान ही में क्यों; संसार के सभी आधीन देशों के शोषित और पीड़ित लोगों ने इसी का सहारा लिया था। राष्ट्रवाद का जहां भी कहीं जन्म हुआ, वहां आतंकवाद और खूनी विप्लव का भी स्वतः ही जन्म हो गया। हिन्दूस्तान में बंग-भंग के साथ पैदा हुये राष्ट्रवाद के साथ ही आतंकवाद का सूत्रपात् होता है। मानो, राष्ट्रवाद के पेड़ में लगने वाले

फलों का नाम ही आतंकवाद और खूनी क्रान्ति है। श्री रासबिहारी बोस की सार्वजनिक प्रवृत्तियों का प्रारम्भ भी यहीं से होता है। यह भी कहा जा सकता है कि बंग-भंग से पैदा हुये राष्ट्रवाद ने जिस अतंकवाद को जन्म दिया था, उसीने श्री बोस को पैदा किया था। देश के युवकों को एक सूत्र में पिरो कर आतंकवादी आन्दोलन का देशव्यापी संगठन बनाने में आप जुट गये। बाद में आपने लाहौर को अपना केन्द्रिय निवासस्थान बना कर पंजाब में भी कुछ वर्ष विताये। देहरादून में किसी सरकारी दफ्तर में कुछ वर्ष विताने की भी बात कही जाती है।

१९११ का वर्ष आपके जीवन का अत्यन्त साहसपूर्ण वर्ष था। दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंग का दरबार और राजधानी में उनका राजकीय प्रवेश होने को था। श्री बोस ने तय किया कि इसी समय कोई कार्यवाही की जानी चाहिये। १० अक्टूबर को जलूस जब चांदनी चौक में पहुँचा, तब बम का जोरदार धड़ाका हुआ। वायसराय बाल-बाल बच गये। उनके साधारण-सी चोट आई। सारा खेल बिगड़ गया। पुलिस और खुफिया पुलिस की चारों ओर दौड़-धूप शुरु हो गई। 'अभियुक्त' को जहां-तहां खोजा जाने लगा। निस्सन्देह, श्री बोस पर उसकी आंखें थीं। आपकी गिरफ्तारी के लिये बड़े-बड़े ईनाम रखे गये और स्थान-स्थान पर लम्बे-चौड़े पोस्टर लगाये गये। पुलिस ने छाया की तरह आपका पीछा किया, पर आप उसके हाथ न लगे। कितनी ही कहानियां और किम्बदन्तियां आपके बारे में उन दिनों में सुन पड़ती थीं। १९१४ के महायुद्ध के शुरू होने पर आपने आतंकवादी आन्दोलन को देशव्यापी बनाने का एक बार फिर उद्योग किया। बनारस, पंजाब और कलकत्ता को एक शृंखला में बांधने में आप लग गये। देहरादून में तब आप विशेष रूप से रहने लगे। सेनाओं में व्यापक प्रचार करके हिन्दुस्तान की सभी छावनियों और सिंगापुर में भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों के व्यापक विद्रोह करने के लिये २१ फरवरी १९१४ का दिन नियत किया गया। लेकिन, दुर्भाग्य

देश का कि वह षड़यंत्र भी सफल न हो सका। १६१५ तक किसी प्रकार लुक-छिपकर श्री बोस आतंकवादी प्रवृत्तियों में भाग लेते रहे। पुलिस को बुरी तरह पीछा करते देखकर १८१५ में उसको चकमा देकर आप जापान निकल गये। जिस पुलिस ने आपकी गिरफ्तारी के लिये आपके चारों ओर जाल बिछा रखा था, उसकी आंखों में धूल झोंककर आपका निकल भागना असाधारण घटना थी। जापान सरकार पर जोर डाला गया कि वह आपको ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दे। उस महायुद्ध में जापान इंग्लैण्ड के साथ था और वहां की सरकार भी इतनी मजबूत न थी। भारत सरकार की ओर से ब्रिटिश राजदूत ने जब जापान सरकार के पास लगातार कई आवेदन पत्र भेजे, तब वह इसके लिये सहमत हो गई कि तीन दिन में खोजकर वह आपको उसके आधीन कर देगी। लेकिन, जापान में रहनेवाले राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानियों को इसका पता लगा, तब उन्होंने यह तय कर लिया कि वे श्री बोस को अंग्रेज सरकार के हाथ में न पड़ने देंगे। जापानी राष्ट्रवादियों ने भी ऐसा ही फैसला किया। जापान सरकार से अपील की गई कि वह ब्रिटिश सरकार के सामने कमजोरी न दिखाये। लेकिन, वह अपील बहरे कानों सुनी गई। वह अपील जापान ब्लैक ड्रैगन पार्टी के नेता मित्सुरो तोयामा की ओर से की गई थी। अपील का कुछ फल न निकलने पर पार्टी के लोगों ने आपको उड़ा लिया और अपने यहां छिपा लिया। खोज के लिये स्काटलैण्ड से खुफिया पुलिस बुलाई गई। लेकिन, आपका कहीं भी कुछ भी पता न चला। छः वर्षों तक आपको इसी प्रकार छिपाकर रखा गया। लेकिन, आपने इन दिनों को व्यर्थ न खोकर उनका सदुपयोग किया। आपने जापानी भाषा सीख ली और जापानी रहनसहन आदि में भी अपने को अभ्यस्त बना लिया। १६२० में आपको जापानी नागरिक मान लिया गया। एक जापानी सामन्त बैरन सोमा ने अपनी कन्या का आपसे विवाह करने का प्रस्ताव किया। टोकियो के व्यापारी केन्द्र शिंजीकू में काका मुराया एक होटल

है। जापान में विवाह करने के बाद श्री बोस ने ही इसको कायम किया था। यहां हिन्दुस्तानी खाने का इन्तजाम था। रेन्जुकी बोस नाम के एक पुत्र और तेतसुको नाम की एक कन्या ने आपके यहां जन्म लिया। गत महायुद्ध में आपका पुत्र जापानी सेना में कप्तान नियत किया गया था। श्रीमती बोस का १६३० में देहान्त हो गया।

१६२१ में आपने इण्डियन इण्डिपेण्डस लीग—आजाद हिन्द संघ की स्थापना की। प्रारम्भ में इसका प्रधान उद्देश्य जापानी जनता में हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रचार करना था। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में आपने जापानी और अंग्रेजी भाषाओं में एक मासिक पत्र भी निकाला था। अनेक पुस्तकें और पुस्तिकायें भी आपने लिखीं।

जापान में रहने वाले हिन्दुस्तानियों, विशेषतः विद्यार्थियों के हितों की आप विशेष चिन्ता करने लगे। श्री डी० ऐस० देशपाण्डे आपके विशेष विश्वासपात्र थे। श्री देशपाण्डे जापान में १६३० से रह रहे थे और तभी से आप हिन्दुस्तानियों और जापानियों में सद्भावना पैदा करने में श्री बोस का हाथ बटा रहे थे। दक्षिण एशिया के दौरे में भी श्री देशपाण्डे आपके साथ गये थे। १६४५ में जहाज से जापान जाते हुये आपकी हृदयविदारक मृत्यु हुई थी। अमेरिकन पनडुब्बी ने वह जहाज पानी में डुबोया और नष्ट किया था। स्वदेश के लिये काम करने वालों में श्री देशपाण्डे बहुत सच्चे, ईमानदार और मेहनती व्यक्ति थे।

पूर्वी एशिया के महायुद्ध का सूत्रपात होने पर श्री रासबिहारी बोस ने जापानी नेताओं के साथ घनिष्ट सम्पर्क कायम किया। युद्ध से पैदा हुये सुनहरे अवसर से लाभ उठाने की आपने अपने देशवासियों से अपील की और इस उद्देश्य से टोकियो रेडियो से कई भाषण भी दिये। आपकी दृष्टि में देश की आजादी के लिये प्रयत्न करने का यह सुन्दर

अवसर था। टोकियो में मार्च १९४२ में आपने पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों के एक सम्मेलन का आयोजन कर सभी देशों के प्रतिनिधियों को उसके लिये आमन्त्रित किया था। २८ मार्च को वह सम्मेलन हुआ। बैंकौक में एक और सम्मेलन करने का इसमें निश्चय किया गया, जिसमें सरदार मोहनसिंह द्वारा कायम की गई आजाद हिन्द फौज और नागरिकों के प्रतिनिधि मिलकर भविष्य के कार्यक्रम के सम्बन्ध में समुचित निर्णय कर सकें। पहिली मई १९४२ को दस अन्य प्रतिनिधियों के साथ आप इस सम्मेलन के लिये जापान से बैंकौक के लिये रवाना हुये थे। लेखक भी उनमें से एक था। १५ जून को वह सम्मेलन हुआ। १२० प्रतिनिधि उसमें शामिल हुये। श्री बोस उसके सभापति चुने गये और उनकी सहायता के लिये चार सदस्यों की एक युद्ध परिषद् निर्वाचित की गई। इसी सम्मेलन में आजाद हिन्द संघ का केन्द्र बैंकौक में कायम किया जा कर उसकी शाखायें सब स्थानों पर कायम करने का निश्चय किया गया। श्री बोस ने इसके लिये सारे पूर्वी एशिया का दौरा किया। थाईलैंड, मलाया, बर्मा, जावा, सुमात्रा आदि में आप गये। स्थान स्थान पर आपने लोगों को आजादी का सन्देश सुनाया। हिन्दुस्तान के नेताओं के नाम भी आपने रेडियो से कई अपीलें कीं और जनता को लक्ष्य करके कुछ भाषण भी दिये। पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों की प्रतिनिधि संस्था "आजाद हिन्द संघ" की सेवायें उनके सामने पेश करते हुये आपने शत्रु का सामना करने के लिये संयुक्त मोर्चा कायम करने की अपील की। भाषण की अपेक्षा ठोस कार्य में अधिक विश्वास होने और बोलने की अधिक आदत न होने पर भी आप एक कुशल वक्ता थे। ठोस काम करने वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आपकी देशभक्ति स्फटिक मणि की तरह सर्वथा निर्लेप थी। दिसम्बर १९४२ के अन्त में हुई घटनायें बहुत दुर्भाग्यपूर्ण थीं। फिर भी आपने जिस धैर्य, दृढ़ता और साहस के साथ उनका सामना किया और आन्दोलन तथा संगठन को जीवित रखा, उसके लिये आपकी जितनी सराहना की जाय, कम है।

हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में गांधीजी से श्री बोस का गहरा मत-भेद होने पर भी उनके नेतृत्व में उनकी अपार श्रद्धा थी। बैंकौक सम्मेलन के ठीक बाद जून १९४२ में श्री रासबिहारी बोस ने श्री सुभाषचन्द्र बोस के साथ बर्लिन में टेलीफोन पर बात की थी। दोनों ने देश से बाहर विदेशों में स्वदेश की आजादी के लिये किये जाने वाले आन्दोलन का नेता महात्मा गान्धी को मानना तय किया था।

अप्रैल १९४३ में श्री रासबिहारी बोस सिंगापुर के सदर मुकाम को छोड़कर जापान लौट गये। कारण यह सुनने में आया कि सुभाष बाबू पूर्वी एशिया आने वाले थे। उनके आने के बारे में तरह-तरह की अफ-वाहें सुनने में आने लगीं। सच तो यह है कि हिन्दुस्तानियोंको सुभाष बाबू से बहुत बड़ी-बड़ी आशायें थीं। आन्दोलन उस समय बहुत ठंडा पड़ रहा था। जो उस समय आन्दोलन के साथ थे, वे इसी आशा से थे कि किसी न किसी दिन सुभाष बाबू आकर उसका नेतृत्व अपने हाथों में ले लेंगे। एक दिन लोगों ने नयी आशा जगाने वाला यह हर्षप्रद समाचार सुना कि सुभाषबाबू १३ जून १९४३ को टोकियो पधार गये हैं। सिंगापुर में ४ जुलाई १९४३ को एक वृहत सम्मेलन का आयोजन किया गया। पूर्वी एशिया के सभी देशों से प्रतिनिधि इसके लिये आमन्त्रित किये गये। २ जुलाई को श्री रासबिहारी बोस महान शक्तिशाली और प्रभावशाली नेता के साथ सिंगापुर पधारे। कैथी में सम्मेलन हुआ और उसमें श्री रासबिहारी बोस का एक लम्बा भाषण हुआ। उसमें आपने और बातों के साथ यह भी कहा कि "मैं आपके लिये सुभाष बाबू के रूप में एक महान भेंट लाया हूँ। आजाद हिन्द के सभापति के पद की भारी जिम्मेवारी से मैं मुक्त किये जाने की आप से प्रार्थना करता हूँ और मैं अपने महान शूरवीर नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस का नाम प्रधान-पद के लिये पेश करता हूँ।" यह कह कर आपने अपने कर्तव्य का भार उनके कंधों पर सौंप दिया। सुभाष बाबू ने आभार के साथ उस भार को स्वीकार किया और श्री रासबिहारी बोस से अपना प्रधान सलाहकार बनने की प्रार्थना की।

जुलाई १९४३ के अन्त में श्री रासबिहारी बोस बैंकौक आये थे। बैंकौक-सम्मेलन के समय और उसके बाद भी इस पुस्तक का लेखक आपका सेक्रेटरी रहा था। तब आपने उससे कहा था कि "सरदार! मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। अब तुम युवकों को यह सारा काम सम्भालना चाहिये।" आप उस समय बहुत बूढ़े और अशक्त जान पड़ते थे। आप की मधुमेह की पुरानी बीमारी ने बहुत उग्र रूप धारण कर लिया था। टोकियो लौटने पर डाक्टरों ने आपको किसी स्वाथ्य सदन में पूरा आराम करने की सलाह दी थी। राजनीतिक मामलों में सक्रिय भाग लेना आपके लिये संभव न रहा। इस लिये आप टोकियो में ही रहने लग गये।

जनवरी १९४५ में जब आप के जीवन-स्वप्न को पूरा करने के लिये आजाद हिन्द फौजें वर्मा की ओर बढ़ती हुई वर्मा-हिन्दुस्तान की सीमा भी पार कर चुकी थीं, तब आप की बीमारी के बढ़ने और दिन पर दिन आप के जीवन की संध्या निकट दीख पड़ने लगी। आपको इतना ही सन्तोष था और यह सन्तोष भी कुछ कम न था कि जिन बीजों को आपने १९१४ में रोपा था, उनमें अब अंकुर फूट रहे थे और शीघ्र ही वह एक बड़ा वृक्ष बन जाने वाले थे। नौ राष्ट्रों द्वारा स्वीकार की गई आजाद हिन्द सरकार की आजाद हिन्द फौजों का दुश्मन पर हमला करने के लिये हिन्दुस्तान की ओर कूच करना, अन्डमान तथा निकोबार में उसकी स्वतन्त्र सत्ता का कायम होना और उस पर शान के साथ तिरंगे झण्डे का फहराना कम गर्व की बात न थी। २१ जनवरी १९४४ की रात को इंग्लैंड के रेडियो से यह दारुण समाचार सुनकर पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानी निस्तब्ध रह गये कि "अभी अभी यह समाचार मिला है कि श्री सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सरकार के प्रधान सलाकार श्री रासबिहारी बोस का देहान्त हो गया है। लार्ड हार्डिंग के साथ हुये बम काण्ड के साथ आपका सम्बन्ध था और आप पच्चीस वर्षों से अधिक से जापान में ही रहते थे।" यह दुःखपूर्ण समाचार सारे

पूर्वीय एशिया में बड़ी वेदना के साथ सुना गया। हम में से एक ने सहसा कहा कि "बोस चल बसे, दीर्घजीवी हों बोस।" उनका अभिप्राय श्री रासबिहारी बोस और श्रीसुभाषचन्द्र बोस से था। मातृभूमि के लिये अहोरात्र निरन्तर चिन्तन एवं प्रयत्न करने वाले एक महान् जीवन का इस प्रकार अन्त हो गया। अपनी आंखों से १९४५ की असफलता को भी उस बुढ़ापे में आपको देखना न था। लेकिन, आप इस विश्वास के साथ चिर निद्रा में लीन हुये कि आपके आयुभर निरन्तर किये गये प्रयत्न अब फल देने वाले हैं और स्वतन्तत्रता का प्रभाव प्रगट होने ही वाला है। स्वदेश वापिस लौटने और स्वतन्त्र भारतभूमि के दर्शन करने की आपकी इच्छा अधूरी ही रह गई।

११. इण्डियन नेशनल एसोसियेशन

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले जापान के हिन्दुस्तानियों के दूसरे राजनीतिक संगठन का परिचच देना भी आवश्यक है। श्री आनन्द-मोहन सहाय ने इसकी स्थापना की थी। श्री सहाय भागलपुर (बिहार) के निवासी हैं और देशरत्न डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के प्राइवेट सेक्रेटरी भी रहे हैं। बीस वर्ष की आयु में ही आप जापान चले गये थे। वहां आप श्री रासबिहारी बोस के सम्पर्क में आये। इसी से आप राजनीति में कूद पड़े। पत्रकारिता में भी आपकी रुचि पैदा हुई। १९२५ में आप एक बार हिन्दुस्तान आये थे, किन्तु शीघ्र ही फिर वापस लौट गये। आप अपने साथ अपनी पत्नी श्रीमती सती सहाय को भी लेते गये। आप देशबन्धु दास की बहन श्रीमती ऊर्मिला देवी की लड़की हैं।

१९३० के शुरू में आपने जापान में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शाखा कायम की और आपही उसके जापान में प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। १९३५ में कांग्रेस के विधान में परिवर्तन होकर विदेशों में कांग्रेस की सभी शाखायें भंग कर दी गई थीं। जापान की शाखा का नाम तब 'इण्डियन नेशनल एसोसियेशन' रख दिया गया। श्री आनन्दमोहन सहाय

इसके प्रधान और श्री देवनाथ दास मन्त्री नियुक्त किये गये। इसी वर्ष श्री दास को थाईलैण्ड भेज दिया गया और इस पुस्तिका के लेखक को उनके स्थान में एसोसियेशन का मन्त्री चुना गया। "हिन्दुस्तान की आवाज" यानी "दी वायस आफ इण्डिया" नाम का संस्था का अपना एक पत्र भी निकलता था। श्री आनन्दमोहन सहाय ही उसके सम्पादक थे। स्वदेश की आजादी की लड़ाई के सम्बन्ध में समय-समय परछोटी-छोटी पुस्तिकायें भी प्रकाशित की जाती थीं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के परराष्ट्रविभाग के साथ संस्था का सीधा सम्बन्ध था। उसकी ओर से प्रकाशित सब पत्र-पत्रिकायें जापान प्रकाशन के लिये भेजी जाती थी। उनको वहां अंग्रेजी और जापानी भाषाओं में प्रकाशित किया जाता था।

१६३६ में श्री आनन्दमोहन सहाय को मनीला विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित किया गया था। ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने न तो आपको पासपोर्ट दिया और न वहां जाने की सुविधायें ही दीं। इसलिये आप वहां न जा सके। १६४० में आप चीन गये। आपने चीन, मंचूरिया, नानकिंग और शंघाई का दौरा किया। शंघाई में अधिकतर हिन्दुस्तानी चौकीदार और पुलिस की नौकरी में थे। उनको संगठित कर वहां आपने 'इण्डियन नेशनल एसोसियेशन आफ चीन' नाम की संस्था की स्थापना की।

नेताजी के सिंगापुर आने के बाद आप आजाद हिंद संघ के सिंगापुर के सदर मुकाम में प्रवासी विभाग के सेक्रेटरी नियुक्त किये गये। थाईलैण्ड प्रादेशिक आजाद हिंद संघ कमेटी का आपको प्रधान चुना गया। फिर आपको मन्त्री की हैसियत से आजाद हिंद सरकार में सेक्रेटरी नियुक्त किया गया। १६४४ के अन्तिम दिनों में आजाद हिंद संघ की समस्त शाखाओं का निरीक्षण करने के लिये आपने पूर्वी एशिया का दौरा किया। आप सब शाखाओं के "इन्स्पेक्टर जनरल" नियुक्त किये गये। मार्च १६४५ में आप अपनी बड़ी लड़की आशालता के साथ

बैंकोक आ गये। बाद में वह रानी झांसी रेजीमेण्ट में भरती हुई। श्रीमती सती सहाय तीन बच्चों के साथ अभी टोकियो में ही हैं। श्री सहाय अभी १९४६ में ही हिन्दुस्तान लौट सके हैं।

५.

युद्ध का सूत्रपात

१. आजाद हिंद भावना का प्रादुर्भाव

८ दिसम्बर १९४१ को जापान ने इंग्लैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। युद्ध की घोषणा के साथ ही जापान की सशस्त्र फौजें पूर्वी एशिया पर बादलों की काली घटा की तरह छा गईं। ब्रिटिश साम्राज्य में कभी न डूबने वाला सूर्य पूर्व में १५ फरवरी १९४२ को डूब गया। जापान का सूरजमुखी झण्डा, बीस वर्षों की निरन्तर मेहनत से ५० करोड खर्च करके बनाये गये अजेय दुर्ग, मलाया की राजधानी सिंगापुर में फहराने लगा। पूर्वमें इंग्लैण्ड के जिब्राल्टर का नाम 'शोनान' 'दक्षिण का प्रकाश' रख दिया गया। उससे पहिले पर्ल हारर, हांगकांग, शंघाई, मनीला आदि के बिना किसी विशेष प्रतिरोध के पतन होने के समाचारों पर सारा संसार चकित रह गया। १२ ही दिन में २० दिसम्बर को सिंगापुर में इंग्लैण्ड के जंगी जहाजों 'रिपल्स' और 'प्रिंस आफ वेल्ल' का पहिली ही हवाई बम वर्षा में कागज का नौकाओं की तरह समुद्र के गहरे गर्भ में डूब जाना और भी अधिक विस्मयजनक था। युद्ध-घोषणा के दूसरे ही दिन शंघाई के इंग्लैण्ड और अमेरिका के अधिकृत तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रदेश पर जापान ने अधिकार कर लिया। १२ दिसम्बर को थाईलैण्ड ने जापान से दोस्ती करने की घोषणा कर दी। १३ दिसम्बर को गुआम, २० दिसम्बर को सेगोन, २२ दिसम्बर को हांगकांग, २९ दिसम्बर को ईपोह और २ जनवरी को मनीला का पतन होकर मलाया का अधिकांश भाग भी जापानियों के हाथ लग चुका था और बर्मा में लड़ाई शुरु हो चुकी थी। यह सब इस तेजी और इस क्रम से हुआ कि इसकी किसी को

भी कल्पना न थी। हिटलर की सेनायें यूरोप पर जिस तीव्र गति से छा गई थीं, उससे भी कहीं अधिक तीव्र गति से जापान की सेनायें टिड्डियों की तरह पूर्वी एशिया पर छा गईं। चारों ओर बब्बर की तरह घुर्राने वाला शेर भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाकर रह गया। सिंगापुर में उसको बिना शर्त आत्म-समर्पण करना पड़ गया। खून की एक भी बूंद बहाये और एक भी गोली दागे बिना वह अजेय दुर्ग जापान के हाथों में पड़ गया। मलाया के बाद ७ मार्च को रंगून, ६ मार्च को पेगू, २३ मार्च को अण्डमान, २६ मार्च को लाशियो तथा वर्मा रोड़ और १ मई को माण्डले का पतन होकर सारे पूर्वी एशिया, वर्मा और बंगाल की खाड़ी पर भी चार-पाच मास में ही जापान का अधिकार होगया और उगते हुए उस सूर्य की किरणें सब ओर चमकने लगीं। संसार ने इन सब घटनाओं के समाचार बहुत ही आश्चर्य और विस्मय के साथ सुने। ऐसा प्रतीत होने लगा कि जापान की प्रगति को रोकना असम्भव है और उसकी विजय सुनिश्चित है।

इन अनिश्चित और परिवर्तन के दिनों में पूर्वी एशिया में एक नयी भावना, नयी कल्पना और नयी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। पुराने वीजों में अनुकूल परिस्थिति पाकर अंकुर फूट निकला और वह आकाश में सिर ऊंचा उठाकर ऊपर की ओर बढ़ने लगा। उसको फलने, फूलने और बढ़ने में अधिक समय न लगा। इसी को बाद में 'आजाद हिंद' नाम दिया गया। इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक बातों को शामिल किया जाता है। जापान की अजेय शक्ति, उसके द्वारा मिलने वाले प्रोत्साहन, इंग्लैण्ड के पतन एव पराजय, हिन्दुस्तान में तेजी से बदलती हुई परिस्थिति और युद्धजन्य अवस्था से लाभ उठाने की आकांक्षा आदि का उल्लेख उन बातों में किया जाता है, जिन्होंने हिंन्द की आजादी के लिये किये जाने वाले आन्दोलन को बलशाली और प्रभावशाली बनाने की भावना पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों में पैदा की थी। लेकिन, सच यह है कि इसका प्रादुर्भाव हिन्दुस्तानियों के हृदय में स्वतः ही हुआ था।

इन बाहरी बातों से उसको केवल बल मिला ।

२. जापान में

जापान की युद्ध-घोषणा के दिन ८ दिसम्बर १६४१ को स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस ने हिन्दुस्तानी राष्ट्र के नाम टोंकियो रेडियो से एक संदेश ब्राडकास्ट किया था । उसी में पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों के नाम भी एक अपील थी । उसमें आपने युद्ध से पैदा हुई स्थिति से लाभ उठाने के लिये देशवासियों का आवाहन किया था । आपने यह भी कहा था कि जापान उनका मित्र है और वह आजादी प्राप्त करने के प्रयत्नों में उनकी यथेच्छ सहायता करेगा । स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस, राजा महेन्द्रप्रताप और श्री आनन्दमोहन सहाय द्वारा इसी उद्देश्य से बनाई गई कमेटी की चर्चा पीछे यथास्थान की जा चुकी है । स्वर्गीय श्री डी. ऐस. देशपाण्डे भी इस कमेटी में ले लिये गये थे । जापानी जंगी अफसरों के साथ आपकी कई मुलाकात हुईं और परस्पर विचार-विनिमय भी हुआ । काफी दिनों तक वह चर्चा चलती रही । राजा महेन्द्रप्रताप उससे अलग हो गये । बाद में इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग और इण्डियन नेशनल एसोसियेशन को मिलाकर एक कर देने के सम्बन्ध में स्वर्गीय बोस और श्री सहाय में भी कुछ मतभेद होगया । जनवरी १६४२ में दोनों को एक किया जा सका, किन्तु अन्तिम निर्णय तो अप्रैल १६४२ में ही हुआ । स्वर्गीय श्री रासबिहारी के प्रयत्नों तथा टोंकियो सम्मेलन आदि की चर्चा यथास्थान की गई है और आगे भी यथा स्थान की जायगी ।

३. शंघाई में

युद्ध-घोषणा करने के साथ ही जापान ने शंघाई पर चढ़ाई करके वहां के अन्तराष्ट्रीय, अमेरिकन और ब्रिटेन क्षेत्रों पर सहसा कब्जा कर लिया । हिन्दुस्तानियों के प्रति उनका रुख सहृदयतापूर्ण था । हिन्दुस्तानियों में अपने को संगठित करने की भावना पैदा हुई और जापानियों के रुख से उसको उनके लिये काफी प्रोत्साहन मिला । इण्डियन नेशनल

नेताजी शोनान में (पहली बार)—२ जुलाई १९४३।
श्री रासबिहारी बोस और जनरल भोंसले पीछे खड़े हैं।
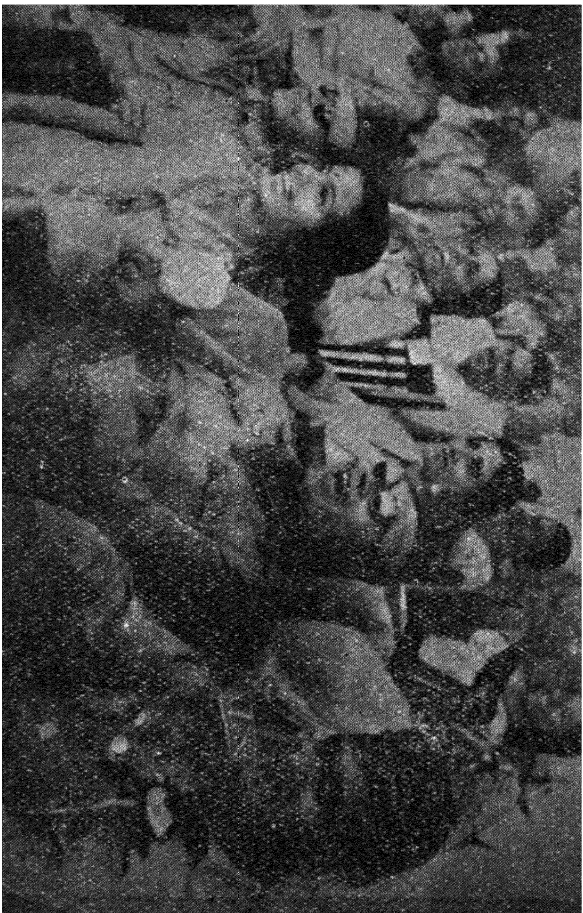
नेताजी शोनान के थियटर हाल में--जुलाई १९४५। नेताजी-सप्ताह में रानी झांसी रेजीमेण्ट का नाटक देख रहे हैं। एक ओर मेजर जनरल कियानी ग्रौर दूसरी ग्रोर श्री राघवन हैं।

एसोसियेशन तो वहां कायम ही था। कोमागाताभारू के सुप्रसिद्ध नेता बाबा ऐच. एस. उस्मान भी वहां इसी बीच आ पहुंचे। जनवरी १९४२ में श्री आनन्दमोहन सहाय और श्री देशपाण्डे जी जापान से वहां आये थे। इस पुस्तिका का लेखक भी वहां आकर उनके साथ मिल गया। हिन्दुस्तानियों को संगठित करने के लिये जोरों से प्रयत्न किया गया। घुड़दौड़ के मैदान में २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाने के लिये एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। उसमें यहां भी 'आजाद हिंद संघ' की स्थापना की गई। बाकी सब संस्थायें इंण्डियन नेशनल एसोसियेशन भी भंग कर दी गईं। लाला नानकचन्द आनन्द उसके प्रधान चुने गये। सी ऐम. ऐस. डोशी, श्री बी. बौबी, श्री ए० रहमान और सरदार साधुसिंह भी उसमें शामिल थे। युद्ध की समाप्ति के बाद नवम्बर में लाला नानकचन्द आनन्द को शंघाई में चीनियों ने गिरफ्तार कर लिया था। अब तक भी उनको रिहा नहीं किया गया है। श्री आनन्दमोहन सहाय ने शंघाई के जर्मन रेडियो स्टेशन ऐक्स. जी. आर. एस. से ब्राडकास्ट करने का भी प्रबन्ध किया। रात को ८ बजे आजाद हिंद रेडियो से प्रतिदिन नियम से कार्यक्रम सुनाया जाता था। यह एक घण्टा तक चलता था। नियमित रूप से हिन्दुस्तानी कार्यक्रम सुनाने वाला पूर्वीय एशिया में यह पहिला ही रेडियो स्टेशन था।

४. हांगकांग में

हांगकांग का पतन १९४१ के बड़े दिन २५ दिसम्बर को हुआ था। नागरिक जनता के अलावा अंग्रेज सेना के ७००० सिपाही भी उस समय हांगकांग में थे, जिनको जापानियों ने युद्ध-बंदी बना लिया था। हांगकांग पर जापान का कब्जा होते ही हिन्दुस्तानियों ने अपने को संगठित करना शुरू कर दिया था। विद्यार्थियों ने उसमें प्रमुख भाग लिया। यहां भी २६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाते हुये विराट सार्वजनिक सभा में "आजाद हिंद संघ" की स्थापना करने का निश्चय किया गया। हांगकांग

विश्वविद्यालय में छठवें वर्ष में डाक्टरी पढ़ने वाले डाक्टर पी. एन. शर्मा हांगकांग और कौलून में रहने वाले हिन्दुस्तानियों के नेता थे। शर्माने उनको राजनीतिक दृष्टि से संगठित करने के साथ-साथ संकटापन्न हिन्दुस्तानियों की भोजन आदि से भी सहायता करनी शुरू की। हांगकांग एक द्वीप है। वहां अन्न की समस्या बहुत विकट हो रही थी। इसलिये आजाद हिंद संघ का यह काम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। डाक्टर शर्मा स्वयं तो इतना सामने नहीं आये, किन्तु सारे काम के प्राण वे ही थे! वे जिसे योग्य देखते, उसको 'संघ' का प्रधान बना देते थे। जापानियों के साथ भी उनको कई बार संघर्ष में आना पड़ा। अपनी स्वतन्त्र वृत्ति और अति साहस के कारण कई बार उनको भीषण संकट का भी सामना करना पड़ गया। कई बार उनका जीवन भारी खतरे में पड़ गया। उन्होंने जब भी कुछ किया, तब सदा ही यह ध्यान में रखा कि आजाद हिंद संघ पर किसी भी विदेशी सत्ता का प्रभाव या प्रभुत्व कायम नहीं होना चाहिये। हांगकांग के आजाद हिंद रेडियो का भी उन्होंने संचालन किया। अपने किसी भी काम में जापानियों का हस्तक्षेप उन्होंने कभी भी सहन नहीं किया।

हांगकांग के अन्य हिन्दुस्तानी नेताओं में आजाद हिन्द संघ के बाद में सलाहकार बनने वाले श्री डी० एस० खान, स्थानीय आजाद हिन्द संघ के मन्त्री श्री पी० ए० कृष्णा और डाक्टर नायडू के नाम उल्लेखनीय हैं। आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने वाले एक बड़े व्यापारी भी थे, जो यह दावा किया करते थे कि उन्होंने हिन्दुस्तान में वर्षों तक कांग्रेस में काम किया है। लेकिन, बाद में ये एक बड़ी बाधा सिद्ध हुए। डा० शर्म्मा और उनके साथियों की दूरदर्शिता के कारण वे कोई अड़चन पैदा नहीं कर सके।

स्वर्गीय श्री जहूर अहमद भी डाक्टर साहब के एक अन्तरंग साथी थे। वे पहले अंग्रेज-सेना में थे। अंग्रेज-सेना के पराजय के बाद उन्होंने

डाक्टर शर्मा के काम में हाथ बटाया और हिन्दुस्तानियों का संगठन करने में जुट गये। १९४२ के अन्त में डाक्टर शर्मा को आजाद हिन्द संघ के सदर मुकाम में बुला लिया गया था। श्री जहूर अहमद भी उनके साथ चले आये। १९४३ के अन्तिम दिनों में वे आजाद हिन्द सेना की सबसे आगे की टुकड़ी के साथ गिरफ्तार कर लिये गये थे। भारतमाता की इस वीर सन्तान को "शत्रु का एजेण्ट" बात कर १९४५ में फांसी पर लटका दिया गया था। भारतमाता को आजादी के लक्ष्य के पास पहुंचाने वाले सभी देशभक्तों और कार्यकर्ताओं में श्री जहूर अहमद सरीखों ने सचमुच ही सराहनीय काम किया है।

हांगकांग में आजाद हिन्द संघ की स्थापना और जनरल मोहनसिंह के नेतृत्व में मलाया में आजाद हिन्द फौज के संगठित किये जाने के समाचारों से हांगकांग के हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उन्होंने कप्तान हकीम खां के नेतृत्व में अपना स्वयं सेवक दल संगठित किया। कइयों ने आजाद हिन्द सेना में भरती होने की भी इच्छा प्रकट की। कैण्टन और मैंकू के हिन्दुस्तानियों में भी हलचल शुरू हुई। उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी, किन्तु उन्होंने भी अपने यहां आजाद हिन्द संघ की शाखायें स्थापित कर लीं।

५. इण्डोनेशिया, फिलिपाइंस और हिंद चीन में

जनवरी १९४२ में सारा इण्डोनेशिया जापान के हाथों में आ चुका था। टोकियो से रेडियो पर होने वाले स्वर्गीय रासबिहारी बोस के भाषण ये लोग बहुत शौक से सुना करते थे। पूर्वीय एशिया में घटने वाली घटनाओं पर भी उनकी आंखें लगी रहती थीं। दूसरों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों के प्रति जापानियों का व्यवहार अधिक सहृदय था। ऐसी सब बातों से इण्डोनेशिया के हिन्दुस्तानियों का अपने को संगठित करने के लिये विशेष प्रोत्साहन मिला। परिणाम यह हुआ कि सभी द्वीपों में आजाद हिन्द संघ की शाखायें कायम हो गईं। जावा में श्री हक, सुमात्रा में श्री

मलवानी और बोर्नियो में श्री बी० के० एम० पिल्लई ने संगठन में विशेष भाग लिया।

फिलिपाइन्स में अमेरिकनों को पराजित करने में जापानियों को अपेक्षा से कुछ अधिक ही समय लग गया। इस लिये हिन्दुस्तानियों को भी अपने को संगठित करने में मई १६४२ तक का समय लग गया।

हिन्द चीन में फ्रांसीसियों को किसी भी हिन्दुस्तानी संस्था का कायम होना पसंद न था। इस प्रदेश में १६४४ तक भी उनकी अपनी कोई संस्था कायम न हो सकी।

६. थाईलैंड में

८ दिसम्बर १६४१ को युद्ध की घोषणा के साथ ही जापानी सेनाओं ने हिन्द चीन पर हमला कर दिया था और वे हिन्दचीन और थाईलैंड की सीमा पर पहुंच गई थीं। इस लिये उनको थाईलैंड पर हमला करने में अधिक समय नहीं लगा। केवल छः दिन के प्रतिरोध के बाद ही थाईलैंड ने जापानी सेनाओं का अपने देश में आना-जाना स्वीकार कर लिया। थाईलैण्ड में स्वामी सत्यानन्द पुरी के नेतृत्व में "थाई हिन्द सांस्कृतिक संघ" के नाम से हिन्दुस्तानियों की एक संस्था पहिले ही कायम थी। पूर्वीय एशिया में युद्ध का सूत्रपात होने के साथ ही 'इण्डियन नेशनल कौंसिल' के नाम से स्वामीजी के सभापतित्व में एक नयी संस्था स्थापित की गई। श्री देवनाथ दास उसके मन्त्री चुने गये। एक स्वयंसैनिक दल का भी संगठन किया गया। हिन्दुस्तानियों विशेषतः युक्तप्रान्त से आये हुये ग्वालों ने संगठन के इस काम में बड़ा उत्साह दिखाया। सरदार ईशरसिंह, पण्डित रघुनाथ शास्त्री, मौलवी मुहम्मद अकबर, श्री ए० शुक्ला आदि ने इस आन्दोलन और संगठन में प्रमुख भाग लिया। बैंकौक के रेडियो स्टेशन से आजाद हिन्द रेडियो प्रोग्राम भी शुरू किया गया। युद्धजन्य परिस्थिति से लाभ उठाने के लिये इसी रेडियो स्टेशन से हिन्दुस्तानी नेताओं के नाम सन्देश जारी किये जाते थे। स्वर्गीय ज्ञानी प्रीतमसिंह भी बहुत

उत्साही युवक कार्यकर्ता थे। आपने पहिले थाईलैण्ड में और बाद में मलाया में बहुत उत्साह के साथ काम किया। बैंकौक में आपने "इण्डिपैंडैंस लीग आफ इण्डिया" की स्थापना की। इण्डियन नेशनल कौंसिल की यह विरोधी या समानान्तर संस्था न थी, अपितु और भी अधिक उग्र कार्यक्रम उसके सामने था। ज्ञानी प्रीतमसिंह मलाया में हिन्दुस्तानी सैनिकों और जनरल मोहनसिंह के सम्पर्क में सबसे पहिले आये। आप एक सच्चे देशभक्त और उत्साही कार्यकर्ता थे। आपके साथ ऐसे युवकों का एक दल भी था, जो बड़ा सच्चा, उत्साही और मृत्यु का भी सामना करने का साहस रखता था। आपने अपने ढंग से अपने देश की आजादी के लिये खूब काम किया। बाद में दोनों संस्थाओं इण्डियन नेशनल कौंसिल और इण्डिपैण्डेंस लीग को मिला कर एक कर दिया गया। कुछ समय बाद उसको भी आजाद हिन्द संघ का ही रूप दे दिया गया।

८. मलाया में

मलाया में हिन्दुस्तानियों की संख्या सबसे अधिक ७-८ लाख के लगभग थी। नागरिक और सैनिक दोनों ही अंग्रेजों की रीति-नीति से बहुत अधिक असन्तुष्ट थे। रंगभेद का पक्षपात भी जोरों पर था। सिंगापुर की स्विमिंग क्लब और स्विमिंग पूल (स्नान घर) के दरवाजे उनके लिये बंद थे। बाद में तीव्र आन्दोलन करने पर उनके लिये क्लब के सदस्य होने का रास्ता खोल दिया गया था। मेजर जनरल शाहनवाज खां ने रंगभेद के इस पक्षपात का चित्र फौजी अदालत में दिये गये बयान में बहुत अच्छा खींचा है। आपने उसमें कहा है कि "हिन्दुस्तानी और अंग्रेज सिपाही में किये जाने वाले पक्षपात को समझना हमारे लिये कठिन था। जहां तक लड़ाई का सम्बन्ध है, दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं। अपितु हिन्दुस्तानी सिपाही अपने स्थान पर चट्टान की तरह खड़ा होकर अन्त तक लड़ता है। फिर भी उनके वेतन, भत्ते, भोजन, कपड़ों तथा

रहन-सहन में कितना भेद है ? यह भीषण अन्याय था। साधारण सैनिकों में भी यही भावना काम कर रही थी कि उनके साथ कुछ अच्छा व्यवहार नहीं होता। फिर, मलाया में लड़ाई के साज-सामान की भी ठीक ठीक व्यवस्था नहीं थी। युद्धसामग्री की कमी के कारण ही भारतीय सेनायें मलाया में अपने जौहर न दिखा सकीं। कुछ विचारशील सैनिक और अफसर यह सोचा करते थे कि आखिर हम किसके लिये लड़ रहे हैं।" इस विचार से ही आजाद हिन्द फौज का जन्म हुआ समझना चाहिये। ३१ जनवरी १९४२ तक मलाया की लड़ाई प्रायः समाप्त हो चुकी थी। तब तक हजारों हिन्दुस्तानी सैनिक बंदी बनाये जा चुके थे और सरदार मोहनसिंह ने आजाद हिन्द सेना के संगठन का सूत्रपात भी कर दिया था।

१५ फरवरी १९४२ को सिंगापुर का भी पतन हो गया। दूसरे दिन पचास हजार हिन्दुस्तानी सैनिकों को फरेर पार्क में इकठ्ठा किया गया। अंग्रेज कमाण्डर इन चीफ के प्रतिनिधि कर्नल हण्ट ने उनको जापानी कमाण्डर इन चीफ के प्रतिनिधि मेजर फूजीवारा को सौंप दिया। कर्नल हण्ट ने छोटा-सा भाषण देते हुये कहा कि "सिंगापुर की अंग्रेज और हिन्दुस्तानी सेना ने जापान की शाही सेना के सामने आत्मसमर्पण किया है। हम सब उनके हाथों में कैदी हैं। बादशाह की ओर से तुम सब को मैं मेजर फूजीवारा के हाथों में सौंपता हूं। अब तुम जापानी सेना में हो और तुमको हमारे हुक्म की तरह उसका हुक्म मानना होगा।" मेजर फूजीवारा ने भी एक भाषण दिया और हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों के प्रति जापान के रुख को स्पष्ट करते हुये उसने कहा कि "हमारी नजरों में तुम युद्ध-बन्दी नहीं हो। तुम सर्वथा स्वतन्त्र हो और मैं तुमको कप्तान मोहनसिंह के हाथों में सौंपता हूं। तुमको उसका हुक्म वैसे ही मानना होगा, जैसे कि तुम हमारे आधीन होने पर हमारा हुक्म मानते।" कप्तान मोहनसिंह ने भी कुछ शब्द कहे और संगठित होकर हिन्दुस्तान

की आजादी के लिये लड़ने की अपील की। बस, यहीं से आजाद हिन्द फौज का सूत्रपात हुआ।

१ फरवरी को भी फूजीवारा ने कुछ प्रमुख हिन्दुस्तानियों को जापानी सेना के सदर मुकाम में बुलाया। श्री ऐस० सी० गोहो और श्री के० पी० मैनन उनमें मुख्य थे। कई विषयों पर चर्चा हुई। मेजर फूजीवारा ने उनसे कहा कि स्वदेश की आजादी के लिये प्रयत्न करने का उनके लिये यह सुवर्ण अवसर है। इसमें जापानी उनकी पूरी सहायता करेंगे। चूंकि हिन्दुस्तानी स्वेच्छा से अंग्रेजों की प्रजा नहीं थे। इस लिये पूर्वीय एशिया में उनको 'दुश्मन' नहीं माना जायगा। मलाया के हिन्दुस्तानियों के संगठित होने पर भी उसने जोर दिया। सब बातों पर विचार करके कुछ दिन बाद मिलने का वायदा करके हिन्दुस्तानी उसके पास से चले आये। इन सब बातों पर विचार करने के लिये १० मार्च को सिंगापुर में एक सम्मेलन के आयोजन करने का निश्चय किया गया।

टोकियो में श्री रासबिहारी बोस भी एक वैसे ही सम्मेलन का आयोजन कर रहे थे। उन्होंने मलाया और थाईलैण्ड आदि में निमन्त्रण भी भेज दिये। सिंगापुर के सम्मेलन में थाईलैण्ड से भी कुछ लोग शामिल हुये थे। जापानियों की इच्छा यह थी कि टोकियो विशेष प्रतिनिधि भेजे जांय; किन्तु मलाया और थाईलैण्ड से केवल सद्भावना प्रगट करने के लिये एक मिशन भेजने का निश्चय किया गया। कारण यह था कि यहां के हिन्दुस्तानी अन्तिम निर्णय के सम्बन्ध में अपने को सर्वथा स्वतन्त्र रखना चाहते थे।

६. जनरल मोहनसिंह

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहिले आजाद हिन्द फौज के संस्थापक और उत्पादक जनरल मोहनसिंह के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखने जरूरी हैं। आपकी आयु केवल ३५ वर्ष की है। आप पंजाब के सियालकोट जिले के एक गांव यूगोक के निवासी हैं। १६३० के लगभग

आप फौज में भरती हुये थे। १९३४ में आपको देहरादून के सैनिक विद्यालय में भेजा गया। वहां से लैफ्टिनेण्ट होने के बाद आपकी नियुक्ति समुद्र पार सेना के लिये कर दी गई और मार्च १९४१ में आप १-१४ पंजाब रजीमेण्ट के साथ मलाया भेज दिये गये। पूर्वीय एशिया का युद्ध छिड़ने पर आपकी बटालियन थाईलैण्ड के निकटवर्ती प्रदेश जितने मोर्चे पर तैनात थी। आप बड़ी बहादुरी के साथ लड़े। ११ दिसम्बर को एक जापानी टैंक ने आपकी बटालियन को अस्तव्यस्त कर दिया। कप्तान मोहनसिंह और उनके साथी जंगलों में छिप गये और आपकी यूनिट के कप्तान मुहम्मद अकरम भी बाद में आपके साथ आ मिले। इन्हीं दिनों में आपने सारी स्थिति पर गम्भीर विचार किया। आपके हृदय में यह जिज्ञासा पैदा होने लगी कि हम किसके लिये लड़ रहे हैं? हमें गुलाम रखते हुये आजादी के नाम पर ब्रिटेन हमारा अपने लिये तो उपयोग नहीं कर रहा? जिन दिनों में इस प्रकार की जिज्ञासा युवक कप्तान के हृदय में पैदा हो रही थी, उन्हीं दिनों में आपको जापानियों के हाथों में आत्मसमर्पण करना पड़ा। आत्मसमर्पण करने के बाद जापानियों का सहृदय रुख देख कर आपको और भी अधिक आश्चर्य हुआ। मेजर फूजीवारा के भाषण और व्यवहार से आपको और भी अधिक प्रोत्साहन मिला।

सारी परिस्थिति पर गंभीर विचार करने के बाद आपने यह अनुभव किया कि जापानी हिन्दुस्तान पर आक्रमण किये बिना न रहेंगे। उसके लिये उन्होंने तैय्यारी भी शुरू कर दी थी। इस लिये आपने स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिये 'करो या मरो' का आदर्श सामने रख कर लड़ने वाली सेना का संगठन करना तय कर लिया। आप स्वभाव से ही प्रभावशाली वक्ता हैं। इस लिये अस्थिर लोगों को भी आपने सहज में अपने साथ ले लिया। आपका विचार ऐसे दो लाख सैनिकों की सेना खड़ा करने का था। सिंगापुर के पतन से पहिले आप ८००० सैनिकों की ऐसी फौज खड़ी कर चुके थे। इन्हीं दिनों में थाईलैण्ड से आकर ज्ञानी प्रीतमसिंह आप

थी वह साथ आ मिले थे। फरेर पार्क की घटना के बाद आपने फौज के ऊंचे अफसरों की एक सभा बुलाई। सबने आपको सर्वसम्मति से अपना नेता मान लिया। जिन हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों ने स्वदेश की आजादी के लिये आजाद हिन्द फौज में भरती होना स्वीकार किया था, उनके प्रतिनिधि-नेता के रूप में आप टोकियो-सम्मेलन और बाद में बैंकौक सम्मेलन में भी शामिल हुये। बैंकौक सम्मेलन में आप आजाद हिन्द फौज के 'जनरल अफसर कमाण्डर' चुने गये। इसी बीच में आपके एक अन्यतम मित्र कप्तान मुहम्मद अकरम खां का टोकियो जाते हुये हवाई दुर्घटना में स्वर्गवास हो गया। उनके बाद कर्नल गिल ने आपका साथ दिया और वे ही आपके मुख्य सलाहकार रहे। बैंकौक सम्मेलन में युद्ध समिति के सदस्य चुने वाले कर्नल गिलानी भी आपके अन्यतम साथी थे।

५५ हजार हिन्दुस्तानी युद्ध-बन्दियों में से ४५ हजार स्वेच्छा से आजाद हिन्द फौज में भरती होने को तैय्यार हो गये। लेकिन, जापानियों ने जनरल मोहनसिंह को १५ हजार से अधिक की सेना खड़ी नहीं करने दी। जापानियों की कुछ भी परवा न करके आप अपने काम में लगे रहे और फौजियों को अपने ढंग पर शिक्षित एवं संगठित करते रहे। जापानियों का हस्तक्षेप और सन्देह बढ़ता चला गया। बैंकोक सम्मेलन के निश्चय के अनुसार जब जापानियों से कुछ बातें साफ करने को कहा गया और वहां पास किये गये कुछ प्रस्तावों पर उनकी साफ राय मांगी गई, तब दोनों के बीच में एक खाई-सी पैदा हो गई। इसी से "दिसम्बर का संकट" पैदा हुआ। सर्वथा निराधार कारण पर कर्नल निरंजनसिंह गिल को गिरफ्तार कर लिया गया। जनरल मोहनसिंह ने उनको तुरन्त रिहा करने की मांग की। इस मांग को पूरा न करने पर युद्ध परिषद के चारों सदस्यों ने स्तीफा दे दिया। जनरल मोहनसिंह ने एक विशेष हुक्म निकाल कर आजाद हिन्द फौज को भंग कर दिया। २६ दिसम्बर १९४२ को आपको

भी गिरफ्तार कर लिया गय । आजाद हिन्द फौज का संस्थापक और उत्पादक लगातार तीन वर्षों तक जापानी कैम्प में नजरबंद रहा। १९४५ के अगस्त मास में आपको सुमात्रा की जापानी जेल में से रिहा किया गया और वहां से हिन्दुस्तान लाकर लाल किले में कैद रखा गया। मई १९४६ में काफी आन्दोलन होने के बाद इस बहादुर को दिल्ली छावनी की काबुल लाइन्स से रिहा किया गया, जहां कि लाल किले के बाद आपको नजरबंद रखा गया था।

———

६.
टोकियो और बैंकौक सम्मेलन

पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों में जापान की युद्ध-घोषणा के साथ ही नये जीवन का अंकुर फूट निकला। "एशिया एशिया वालों के लिये है,"—के जापान के नारे का उन पर जादू का-सा असर पड़ा। चारों ओर हिन्दुस्तानियों की अनेक संस्थायें पैदा हो कर नये उत्साह से काम किया जाने लगा। लेकिन, इन सब संस्थाओं का केन्द्रीय संगठन कोई न था और सब अलग-अलग अपने-अपने स्थानों में अपना काम कर रहीं थी। फिर भी सबका उद्देश्य और कार्यशैली प्रायः एक ही थी। उन सब का झण्डा भी 'तिरंगा' एक ही था, जिसके नीचे उन्होंने अपने को संगठित किया था। 'संयुक्त मोर्चा' कायम हो कर एक दिशा में काम होना अभी बाकी था। यही समय था जब स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस ने अपने आकाशवाणी भाषण में लोगों से इसके लिये अपील की और टोकियो में एक सम्मेलन का आयोजन किया।

१. टोकियो सम्मेलन

जापान-अधिकृत प्रदेशों में कायम हुई सभी संस्थाओं को सम्मेलन के लिये अपने प्रतिनिधि टोकियो भेजने का निमन्त्रण दिया गया। टोकियो के सान्नो होटल में २८ से ३० मार्च तक इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। कुल सोलह प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शामिल हुये थे। इसी सम्मेलन के लिये बैंकौक से स्वामी सत्यानन्द पुरी तथा ज्ञानी प्रीतमसिंह और मलाया से कप्तान मुहम्मद अकराम खां तथा श्री नीलकण्ठ अय्यर टोकियो आते हुए जापान के पास ईसे की खाड़ी में हवाई दुर्घटना के शिकार हुये थे और वहां ही इन हिन्दुस्तानी नेताओं का स्वर्गवास हो गया था। स्वतंत्रता की वेदी पर जिस महान् उत्सर्ग की भेंट चढ़ाने के

लिये इस सम्मेलन में तय्यारी की जाने वाली थी, मानो उसके लिये यह पहली आहुति थी।

मलाया के युद्ध-बन्दियों की ओर से जनरल मोहनसिंह तथा कर्नल निरंजनसिंह गिल और नागरिकों की ओर से श्री ऐन० पी० गोहो तथा श्री के० पी० के० मैनन सद्भावना-मिशन के सदस्य की हैसियत से, हांग-कांग से श्री डी० ऐम० खान तथा श्री मल्लिक, शंघाई से श्री ऐच० ऐस० उस्मान तथा श्री बोत्रो और जापान से श्री डी० ऐस० देशपाण्डे तथा कुछ अन्य सज्जन इस सम्मेलन में उपस्थित हुये थे। स्वर्गीय श्री रास-बिहारी बोस इसके प्रधान थे।

सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि स्वदेश की आजादी के लिये आन्दोलन शुरू करने का यही उपयुक्त अवसर है। यह भी तय किया गया कि विदेशी प्रभाव, हस्तक्षेप और नियन्त्रण से सर्वथा रहित देश की पूर्ण आजादी इस आन्दोलन का लक्ष्य होगा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये हिन्दुस्तानियों की कमान में आजाद हिन्द फौज द्वारा हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय भी किया गया और जापानियों की सेना, नौशक्ति और हवाई शक्ति से उतनी ही सहायता और सहयोग प्राप्त करना तय किया गया, जितनी कि आजाद हिन्द संघ की युद्ध परिषद द्वारा मांग की जायगी। यह भी निश्चय किया गया कि हिन्द की आजादी के बाद उसके लिये शासन-विधान बनाने का कार्य हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि ही मिल कर करेंगे।

पूर्वीय एशिया से हिन्दुस्तानियों के जो प्रतिनिधि टोकियो सम्मेलन में आये थे, वे चूंकि केवल सद्भावना मिशन के सदस्य के नाते ही आये थे, इसलिये थाईलैण्ड की राजधानी बैंकौक में शीघ्र ही एक और सम्मेलन करने और उसके लिये पूर्वीय एशिया के समस्त देशों से प्रतिनिधियों को निमन्त्रित करने का भी निश्चय किया गया। इस सम्मेलन के आयोजन का मुख्य उद्देश्य अधिकृत रूप से आजाद हिन्द आन्दोलन का सूत्र-

पात करना और व्यापक संगठन की योजना तथा विधान बनाना था।

सम्मेलन के बाद उसमें पधारे हुए प्रायः सभी प्रतिनिधि और सद्-भावना मिशन के सदस्य जापान सरकार के युद्ध मन्त्रिमंडल के सदस्यों एवं अधिकारियों से मिले और उनके साथ उन्होंने गहरा सम्पर्क कायम किया। इन लोगों ने राजा महेन्द्रप्रताप से भी मिलने का यत्न किया। आपको अपने स्थान कोकूबूंजी में गैरसरकारी तौर पर नजरबंद रखा गया था। जापानी नहीं चाहते थे कि यह मुलाकात हो। लेकिन, वे इनकार भी नहीं कर सके। इसलिये कुछ लोग आपसे भी मिले।

२. बैंकौक सम्मेलन

स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस को प्रस्तावित बैंकौक-सम्मेलन के सम्बन्ध में जापानी अधिकारियों से कई बार मिलना पड़ा। कई मुलाकातों के बाद १५ जून को सम्मेलन करने का निश्चय किया गया। पूर्वी एशिया के सभी देशों की सभी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को इसके लिये निमन्त्रण भेजे गये। जापान के दस अन्य प्रतिनिधियों और मंचूरिया के भी एक प्रति-निधि के साथ श्री रासबिहारी बोस १ मई को जापान से बिदा हुये। तीन सप्ताह की थका देने वाली लम्बी यात्रा के बाद हम लोग हिन्दचीन में सैगोन में पहुंचे और वहां से हवाई जहाज से बैंकौक आ गये। सैगोन में हम जिस मैजेस्टिक होटल में ठहरे थे, उसी में उस समय बोर्नियो और फिलिपाइन्स के प्रतिनिधि भी ठहरे हुये थे। जापानी बहुत अधिक संशय वृत्ति के अविश्वासी लोग हैं। वे यह नहीं चाहते थे कि हम सब आपस में वहां एक-दूसरे से मिलें। हिन्दुस्तानी नेताओं ने इसको बहुत बुरा माना और जापानियों को उसके लिये माफी तक मांगनी पड़ी। इस पुस्तक का लेखक जापान से प्रतिनिधि हो कर आया था और वह बैंकौक में विषय-नियामक-समिति का सदस्य भी चुना गया था। इस लिये इस सम्मेलन का सारा ब्योरा तो वह व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर दे सकता है।

श्री देवनाथ दास सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गये थे। जब हम और दूसरे स्थानों के प्रतिनिधि बैंकौक पहुंचे, तब भी सम्मेलन की तय्यारियां चल रहीं थीं। बैंकौक के सबसे बड़े और प्रमुख सिलपाकोर्न थियेटर हाल में सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन के करने का निश्चय किया गया। जून के दूसरे सप्ताह के शुरू में प्रायः सभी प्रतिनिधि बैंकौक आ पहुँचे थे। कुल १२० प्रतिनिधि थे। आधे सैनिकों के और आधे नागरिकों के प्रतिनिधि थे। बैंकौक के प्रमुख होटल ट्रोकेडैरो में सबके ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। वहां कितना उत्साहप्रद वातावरण था! अंग्रेज सेना के जो महारथी अंग्रेजी राज को वहां कायम रखने के लिये हिन्दुस्तान से ले जाये गये थे, वे यह विचार करने के लिये इकट्ठे हुये थे कि हिन्दुस्तान में से भी अंग्रेजी राज की जड़ों को कैसे उखाड़ फेंका जाय? जिन्होंने उनको अपने लिये लड़ने को वहां भेजा था, वे उन्हीं के विरुद्ध युद्ध करने की योजना बनाने के लिये मन्त्रणा करने को एकत्रित हुये थे। कैसा वह दृश्य था? १५ जून की सवेरे ६ बजे सिल-पाकोर्न थियेटर के विशाल भवन में ऐतिहासिक सम्मेलन की कार्यवाही शुरू हुई। सिर्फ महत्वपूर्ण होने से ही वह 'ऐतिहासिक' न था, अपितु उसमें एक नये इतिहास का भी निर्माण होने को था। बैंकौक की सारी ही हिन्दुस्तानी जनता उस भवन पर उमड़ पड़ी थी। वह यह जानने को उत्सुक थी कि उसका और उसके देश का भाग्य-निर्माण करने वाले ऐसे कौन-से निश्चय उस सम्मेलन में होते हैं। साथी राष्ट्रों के कूटनीतिक प्रतिनिधि भी विशेषरूप से उपस्थित थे।

महात्मा गांधी के एक विशाल चित्रके अलावा मौलाना अब्दुलकलाम आजाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस के चित्र भी लगाये गये थे। तिरंगे राष्ट्रीय झण्डों के साथ कुछ राष्ट्रीय वाक्य भी मोटे अक्षरों में लिखकर लगाये गये थे। उनमें मुख्य ये थे—"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" "इंग्लैण्ड का दुर्भाग्य ही हिन्दुस्तान का

सौभाग्य है।" "एशिया, एशिया के लोगों के लिये है।" "विदेशी सत्ता के प्रभाव से सर्वथा रहित पूर्ण आजादी हमारा लक्ष्य है।"

युद्धबंदियों के अलावा नागरिक जनता के प्रतिनिधि भी जापान, मंचुकुओ, हांगकांग, शंघाई, बोर्नियो, फिलिपाइन्स, जावा, थाईलैण्ड, मलाया और बर्मा सभी स्थानों से आये थे।

जापान से श्री रासबिहारी बोस के अलावा श्री आनन्दमोहन सहाय के नेतृत्व में दस प्रतिनिधि आये थे। स्वर्गीय डी. ऐस. देशपाण्डे श्री सहाय के सुयोग्य सहायक थे।

मंचूरिया से श्री ए. एम. नायर अकेले ही प्रतिनिधि थे।

शंघाई से सरदार प्यारासिंह के नेतृत्व में तीन प्रतिनिधि आये थे।

हांगकांग से श्री डी. एस. खान के नेतृत्व में तीन, फिलिपाइनस से सरदार बलजीतसिंह के नेतृत्व में तीन, बोर्नियो से श्री जे. लालचन्द के नेतृत्व में, जिनके सहायक श्री बी. एन. के. पिल्लई थे, चार, जावा-सुमात्रा से श्री. ए. हक के नेतृत्व में तीन, थाईलैण्ड से श्री देवनाथ दास के नेतृत्व में बारह, मलाया से श्री एन. राघवन के नेतृत्व में अठारह और बर्मा से श्री लाठिया के नेतृत्व में सात प्रतिनिधि शामिल हुये थे। थाई-लैण्ड से सरदार ईशरसिंह, पं० रघुनन्दन शर्मा तथा श्रीमती जे. डे. मेहतानी, मलाया से श्री के. पी. के. मैनन, श्री बी. के. दास तथा श्री बुधसिंह बर्मा से श्री मुस्ताक और रंघेरी श्री अब्दुलसत्तार के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

सैनिकों के भी साठ प्रतिनिधि शामिल हुये थे। जी. ओ. सी. जनरल मोहनसिंह इनके नेता थे। हांगकांग के युद्धबंदी कैम्प से चार प्रतिनिधि कप्तान हकीम खां के नेतृत्व में आये थे। सैनिक प्रतिनिधियों में मेजर जनरल ए. सी. चटर्जी, कर्नल निरंजनसिंह गिल, कर्नल हबीबुल रहमान, कर्नल जी. क्यु. गिलानी, कर्नल बुरहानुद्दीन, कर्नल प्रकाश और कर्नल रामस्वरूप के नाम उल्लेखनीय हैं।

साथी राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों में थाईलैण्ड के परराष्ट्रमन्त्री श्रीमान (नाय) विचित्र वथाकान, जापानी राजदूत सी सुबोकामी, जर्मन राजदूत डा० वेडलर, इटालियन राजदूत कमाण्डर ग्रिमोलिया तथा कुछ जापानी जनरल भी उपस्थित थे।

"वन्देमातरम" के राष्ट्रीय गानके साथ ठीक १० बजे सवेरे सम्मेलन की कार्यवाही शुरू हुई। देशभक्त श्री सुबासचन्द्र बोस, जापान के प्रधान-मन्त्री जनरल हिदेकी तोजो, थाईलैण्ड के प्रधानमन्त्री फील्ड मार्शल फिबुन संग्राम, जर्मनी के परराष्ट्रमन्त्री हर वान रिबनट्राप और इटली के परराष्ट्रमन्त्री काउण्ट चियानो के उत्साहप्रद और सहानुभूतिसूचक संदेश पढ़े गये। स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस सर्वसम्मिति से प्रधान चुने गये।

स्वागताध्यक्ष श्री देवनाथ दास ने अपने स्वागत-भाषण में स्वदेश की आजादी के लिये लड़ी गई लम्बी लड़ाई का सिंहावलोकन करते हुये आशा प्रकट की कि एक दिन देशभक्त श्री सुभाषचन्द्र बोस पूर्वीय एशिया पधार कर यहां शुरू किये गये आजादी के इस आन्दोलन में प्रमुख भाग लेंगे। स्वागताध्यक्ष के भाषण के बाद श्री रघुनाथ शर्मा ने अपने संक्षिप्त भाषण में थाईलैण्ड के हिन्दुस्तानियों की ओर से प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुये कहा कि हमें इस बात का गर्व है कि पूर्वीय एशिया के समस्त हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधि आज हमारे यहां अपने देश की आजादी के लिये संसार के विप्लवी इतिहास में सदा ही याद रहने वाला नया कदम उठाने का निश्चय करने के लिये यहां एकत्रित हुये हैं और इस कदम को सफल बनाने के लिये थाईलैण्ड के हिन्दुस्तानी कुछ भी उठा न रखेंगे।

तुमुल करतलध्वनि के बीच श्री बोस अध्यक्ष-पद से अपना भाषण देने खड़े हुये। आपने प्लासी की लड़ाई से शुरू हुई हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई के इतिहास का सिंहावलोकन किया। १८५७ की स्वतन्त्रता की लड़ाई, वंग-भंग, १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन तथा सत्याग्रह आन्दोलन और १९२८ के कांग्रेस के पूर्ण आजादी के प्रस्ताव पर

नेताजी और बाल-सेना—बाल-सैनिकों को नेताजी इनाम बांटे रहे हैं।
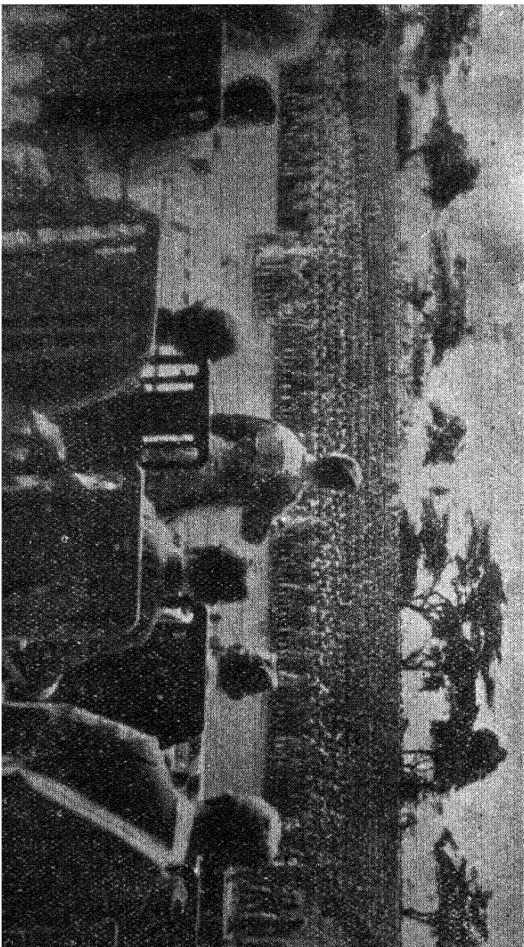
फौज का मुआयना—शोनान में म्यूनिस्पल ग्राफिस के सामनें ग्राजाद हिन्द फौज की पहिली परेड। ५ जुलाई १९४३।

आपने विशेष प्रकाश डाला। पूर्वीय एशिया में शुरू हुये युद्ध की चर्चा करते हुये आपने कहा कि "अपनी आजादी हासिल करने का हमें यह सुवर्ण सुयोग मिला है। इंग्लैण्ड के अनिच्छुक हाथों से जबरन अपनी आजादी छीनने के किसी भी प्रयत्न या आन्दोलन में जापान हमारी पूरी सहायता करेगा। वह हमारा मित्रराष्ट्र है। १५ मार्च १६४२ को जापानी पार्लमेण्ट में दिये गये जापान के प्रधानमन्त्री जनरल तोजो के वक्तव्य का भी आपने उल्लेख किया। श्री बोस ने फिर कहा कि जापान की यह निश्चित धारणा है कि पूर्वीय एशिया के इस युद्ध से जो स्वर्ण सुयोग हिन्दुस्तानियों को अपनी आजादी प्राप्त करने के लिये मिला है, उससे वे पूरा लाभ उठायेंगे और उसके लिये जापान का सारा सहयोग और सहायता हमारे साथ है।

अध्यक्ष के उत्साहप्रद ओजस्वी भाषण के बाद जी. ओ. सी. जनरल मोहनसिंह, श्री राघवन. श्री निरंजनसिंह गिल. श्री आनन्दमोहन सहाय और सम्मेलन में उपस्थित अकेली महिला प्रतिनिधि श्रीमती जे. डी. मेहतानी के भाषण हुये।

जनरल मोहनसिंह ने हिन्दुस्तानी में भाषण दिया। आपका भाषण एक घंटा से अधिक ही हुआ। वह बहुत ही ओजस्वी और प्रभावशाली था। आपने अंग्रेजों के पराजय और आत्मसमर्पण से पहले और पीछे की मलाया की स्थिति का विस्तार के साथ विवेचन किया। स्वदेश की आजादी हासिल करने के लिये संगठित किये जाने वाले इस आंदोलन को आपने विश्वास दिलाया कि, युद्ध-बन्दी कैम्पों में से स्वयं सैनिक बने हुये लोगों की सारी सेवायें बिना किसी संकोच के प्राप्त होंगी। स्वदेश की आजादी के लिये संगठित की गई आजाद हिन्द फौज केवल हिन्दुस्तानियों की कमान के नीचे ही लड़ेगी। उसका लक्ष्य एकमात्र हिन्दुस्तान की आजादी ही होगा और वह आजादी विदेश सत्ता के सब प्रकार के प्रभाव, हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण से सर्वथा रहित 'पूर्ण' होगी। महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आपने कहा कि "वे संसार के

सबसे बड़े महापुरुष हैं। स्वदेश की आजादी की बलि-वेदी पर अपने को न्यौछावर करनेवाले सिपाहियों के लिये उनका नाम स्फूर्ति, प्रोत्साहन और प्रेरणा का स्रोत है।"

मलाया के हिन्दुस्तानियों के नेता और कुशल वक्ता श्री एन् राघवन् ने "हमारी भारतमाता हमें पुकार रही हैं," शब्दों से अपना भाषण शुरू किया। आपने कहा कि "आज हम सब, सभी देशों और वर्गों के लोग तिरंगे राष्ट्रीय झंडे के नीचे इकट्ठे होकर स्वदेश की आजादी के लिये इतिहास में बेजोड़ भीषण लड़ाई का श्रीगणेश करने वाले हैं। कांग्रेस को संसार की सबसे बड़ी प्रजातन्त्रीय संस्था बताते हुये आपने उसके इतिहास का सिंहावलोकन किया। आपने चेतावनी देते हुये कहा कि आज जो हमारे मित्र बन रहे हैं, उनसे भी हमें सावधान रहना होगा और उनके किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को सहन नहीं करना होगा। हमें स्वयं इस बात का फैसला करना होगा कि हम किस प्रकार अपनी लड़ाई का संचालन करेंगे।

कर्नल निरंजनसिंह गिल पूर्वीय एशिया में फौजी दिमाग रखने वालों में अपना ही स्थान रखते थे। आपका भाषण फौजी ढंग का हुआ। आपने बताया कि पूर्वीय एशिया की लड़ाई छिड़ने से पहिले अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी फौजियों की विचारधारा क्या थी और उसके बाद किस उनकी विचारधारा में क्या परिवर्तन हुआ। फिर, सिंगापुर के पतन, पराजय तथा आत्म समर्पण का उन पर क्या असर पड़ा? आपने अंग्रेजी फौज में हिन्दुस्तानियों के साथ किये जाने वाले पक्षपातपूर्ण व्यवहार पर भी रोशनी डाली और यह भी बताया कि उनको संसार की सभी भली बातों, यहां तक कि देश की आजादी के लिये होने वाले आन्दोलन से भी सर्वथा अपरिचित रखा जाता है।

जापानी प्रतिनिधियों के नेता श्री आनन्दमोहन सहाय ने "हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों का है" के सूत्र की व्याख्या करते हुये इस की

पूर्ति के लिये बहुत ही भीषण संघर्ष शुरू करने की मार्मिक अपील की।

पूर्वीय एशिया का हिन्दुस्तानी महिलाओं की ओर से श्रीमती जे० ही० मेहतानी ने, जो सम्मेलन में अकेली महिला प्रतिनिधि थी, घोषणाकी कि मातृभूमि की सेवा में महिलायें पुरुषों से एक कदम भी पीछे न रहेंगी।

यह प्रारम्भिक अधिवेशन इन भाषणों के साथ समाप्त हो गया। १६ से २३ जून तक की कार्यवाही ओरियण्टल होटल में बंद कमरे में हुई। १६ जून को, १८ सदस्यों की विषय नियामक समिति चुनी गई और श्री एन० राघव इसके अध्यक्ष चुने गये। समिति ने ३४ प्रस्ताव तैय्यार किये, जो सभी सम्मेलन में पास किये गये। कुछ प्रस्तावों में कुछ संशोधन अवश्य हुये। एक प्रस्ताव युद्ध परिषद् के कायम करने के सम्बन्ध में था। इसके स्वीकृत होने के बाद परिषद् का चुनाव भी हुआ। चार स्थानों लिये निम्न सात सज्जनों के नाम पेश किये गये।:—जी० ओ० सी० जनरल मोहनसिंह, जनरल जी० क्यू० गिलानी, श्री ऐन० राघवन, श्री के० पी० के० मैनन, श्री ए० एम० सहाय, श्री देवनाथ दास और श्री बुधसिंह। पहिले चार बहुमत से परिषद् के सदस्य चुन लिये गये।

महत्वपूर्ण प्रस्ताव निम्न लिखित आशय के थे :—

(१) हिन्दुस्तान की पूर्ण आजादी शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्त करने लिये आन्दोलन शुरू किया जाय।

(२) इस आन्दोलन का महात्मा गांधी को सबसे बड़ा नेता माना जाय।

(३) टोकियो में मार्च १९४२ में हुये सम्मेलन के इस विचार का यह सम्मेलन समर्थन करता है कि विदेशी सत्ता के सब प्रकार के नियन्त्रण, प्रभाव और हस्तक्षेप से सर्वथा रहित हिन्दुस्तान की पूर्ण आजादी प्राप्त करना इस आन्दोलन का ध्येय होगा और उसकी यह स्पष्ट सम्मति है कि उस ध्येय की पूर्ति के लिये कदम उठाने का यही उपयुक्त अवसर है।

(४) यह सम्मेलन देश की आजादी हासिल करने के लिये किस

आन्दोलन का सूत्रपात करना चाहता है, उसका आधार निम्न मन्तव्य होंगे :—

(क) एकता, विश्वास और बलिदान उसके आदर्श यनो (मोटो) होंगे।

(ख) हिन्दुस्तान को एक और अखण्ड मानना होगा।

(ग) उसका आधार वर्ग, सम्प्रदाय या धर्म न होकर केवल राष्ट्र या राष्ट्रीयता ही होगा।

(घ) चूंकि राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ही एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो समस्त हिन्दुस्तानियों के हितों का प्रतिनिधित्व करती है और उसको ही हिन्दुस्तान की प्रतिनिधि संस्था माना जा सकता है, इस लिये इस सम्मेलन की यह सम्मति है कि उसके द्वारा शुरू किये जाने वाले आन्दोलन का नेतृत्व, नियन्त्रण और संचालन इस रूप में होना चाहिये कि वह राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के आदर्शों के सर्वथा अनुकूल हो।

(ङ) हिन्दुस्तान के भावी विधान के बनाने का कार्य हिन्दुस्तान की जनता के प्रतिनिधि ही करेंगे।

(५) हिन्द की आजादी के लिये शुरू किये जाने वाले आन्दोलन का संचालन करने के लिये एक संस्था कायम की जाय और उसका नाम 'आजाद हिन्द संघ' रखा जाय।

(६) 'आजाद हिन्द संघ' तुरन्त एक फौज खड़ी करेगा, उसका नाम 'आजाद हिन्द फौज' होगा और वह हिन्दुस्तानी सिपाहियों में से खड़ी की की जायगी। स्वदेश की आजादी के लिये खड़ी की गई इस सेना में वे नागरिक भी भरती हो सकेंगे, जो सैनिक सेवा का व्रत लेना चाहेंगे।

(७) 'आजाद हिन्द संघ' के अन्तर्गत निम्न विभाग होंगे :—

क. युद्ध परिषद यानी "कौंसिल आफ एक्शन।"

ख. प्रतिनिधि समिति।

ग. प्रदेशिक शाखायें।

घ. स्थानीय शाखायें।

(८) युद्ध परिषद का चुनाव इस सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि करेंगे। इसमें अध्यक्ष के अलावा चार सदस्य होंगे और आधे सदस्य पूर्वी एशिया की आजाद हिन्द फौज में से होंगे। पहिले अध्यक्ष श्री रास-बिहारी बोस होंगे और अन्य चार सदस्य होंगे, श्री ऐन० राघवन, कप्तान मोहनसिंह, श्री के० पी० एन० मैनन, कर्नल जी० क्यू० गिलागी।

(६) इस सम्मेलन द्वारा नियत नीति तथा कार्यक्रम को और बाद में प्रतिनिधि समिति द्वारा नियत की जाने वाली नीति तथा कार्यक्रम को कार्य में परिणत करने का यादित्व युद्ध-परिषद पर होगा। समय-समय पर उन सब बातो का निर्णय भी वह स्वयं करेगी, जिनके सम्बन्ध में प्रतिनिधि समिति ने कोई फैसला न किया होगा।

(१०) जापान-सरकार से प्रार्थना की जाय कि वह पूर्वीय एशिया के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपने आधीन समस्त हिन्दुस्तानो फौजियों को इस आन्दोलन के लिये तुरन्त युद्ध परिषद के आधीन कर दे।

(११) आजाद हिन्द फौज के संगठन, नियन्त्रण और संचालन करने का सारा कार्य हिन्दुस्तानी स्वयं करेंगे।

(१२) इस सम्मेलन की यह दृढ़ इच्छा है कि आजाद हिन्द फौज की स्थापना के साथ ही उसको आजाद हिन्द की राष्ट्रीय सेना की हैसि-यत से जापान तथा साथी राष्ट्रों की सेना के सर्वथा समान अधिकार और स्थिति प्राप्त होनी चाहिये।

(१३) आजाद हिन्द फौज सिर्फ निम्नलिखित कार्य करेगी :—

क. वह केवल हिन्दुस्तान में अंग्रेजों या विदेशी सत्ता पर ही आक्रमण करेगी।

ख. हिन्दुस्तान की आजादी को हासिल करने और उसको सुरक्षित रखने के लिये ही वह युद्ध करेगी। हिन्दुस्तान की आजादी को हासिल करने के कार्यों में वह सहायक भी हो सकेगी।

(१४) आजाद हिन्द फौज के अफसर और सैनिक सब 'आजाद हिन्द संघ' के सदस्य होंगे और संघ के प्रति वफादार रहेंगे।

(१५) आजाद हिन्द फौज, युद्ध-परिषद के सीधे नियन्त्रण में रहेगी और 'जनरल आफिसर कमांडिंग' उसका संगठन तथा नियन्त्रण युद्ध परिषद के आदेशों के अनुसार ही करेंगे।

(१६) हिन्दुस्तान में अंग्रेजों या किसी भी विदेशी सत्ता के विरुद्ध फौजी कार्यवाही करने से पहिले युद्ध परिषद निश्चिय रूप से यह जान लेगी कि यह कार्यवाही राष्ट्रीय कांग्रेस की इच्छा के अनुकूल भी है कि नहीं!

(१७) किसी भी प्रकार की विदेशी सहायता उसी अंश तक ली या स्वीकार की जायगी, जितनी कि युद्ध परिषद उचित समझेगी।

(१८) इस आन्दोलन के निमित्त आर्थिक व्यवस्था करने के लिये यह सम्मेलन युद्ध-परिषद को पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों से चंदा इकट्ठा करने का अधिकार देता है।

(१९) इस सम्मेलन को यह जान कर वेदना हुई कि जापान द्वारा अधिकृत कुछ देशों मे हिन्दुस्तानियों के साथ शत्रुओं का-सा व्यवहार होता है। उनको काफी कठिनाइ तथा हानि उठानी पड़ती है। इसलिये यह सम्मेलन निश्चय करता है कि जापान-सरकार यह घोषणा करे कि:—

क. जापानियों द्वारा अधिकृत प्रदेशों में रहने वाले हिन्दुस्तानी तब तक शत्रु न माने जायें, जब तक कि वे इस आन्दोलन के लिये कोई घातक या जापान के विरुद्ध कार्यवाही न करेंगे।

ख. उन हिन्दुस्तानियों और हिन्दुस्तानी कम्पनियों तथा फर्मों आदि की सम्पत्ति को, जो हिन्दुस्तान या कहीं और चले गये हैं, तब तक शत्रु की सम्पत्ति न माना जाय, जब तक उसका नियंत्रण जापान या उस द्वारा अधिकृत देश में रहने वालों के आधीन या प्रभाव मे है। सब प्रदेशों के अधिकारियों को इस नीति के अनुसार कार्यवाही करने की तुरन्त सूचना

दी जाय।

(२०) हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय झण्डे को इस आन्दोलन के लिये अपनाया जाय। जापान, थाईलैण्ड तथा अन्य साथी राष्ट्रों से अनुरोध किया जाय कि वे अपने प्रदेशों में इस झण्डे को स्वीकार करें।

(२१) यह सम्मेलन श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस से पूर्वीय एशिया आने की प्रार्थना करता है और जापान-सरकार से अनुरोध करता है कि वह उनको जर्मनी से यहां लाने की समुचित व्यवस्था करे।

अन्तिम और चौतीसवां प्रस्ताव यह था कि इस सम्मेलन के प्रस्तावों की नकलें जापान-सरकार के पास भेजी जांय और वह इन्हें स्वीकार करने की घोषणा करें।

इन प्रस्तावों को स्वीकार करने और सारा कार्यक्रम पूरा करने में आठ दिन लग गये। इन प्रस्तावों पर हुई बहस में निम्नलिखित प्रति, निधियों ने विशेष भाग लिया---श्री एन० राघवन, श्री के० पी० ऐन० मैनन, कप्तान मोहनसिंह, श्री आनन्दमोहन सहाय, कर्नल गिल, श्री बी० के० दलाल, श्री ऐन० पी० पिल्लई, प्रो० ई० नाव, श्री लाठिया, श्री मुस्ताक, श्री ए० सकार, श्री देवनाथ दास, श्री डी० ऐस० देशपाण्डे श्री डी० एम० खान, श्री ए० सी० चटर्जी और श्री ५लजीतसिंह।

प्रस्तावों की शब्द-रचना करने में मुख्य हाथ श्री राघवन का था और उन्हीं को सम्मेलन की सफलता का विशेष य है।

इस प्रकार 'आजाद हिंद संघ' की स्थापना हुई, 'आजाद हिद फौज' का सूत्रपात हुआ और 'आजाद हिंद आंदोलन' का प्रादुर्भाव हुआ।

७.

'आजाद हिन्द संघ' का जन्म और जापानी 'ग्रहण'

बैंकाक-सम्मेलन के बाद बैंकाक में 'आजाद हिन्द संघ' का केन्द्रीय-कार्यालय कायम हो गया। उसकी प्रादेशिक शाखायें थाईलण्ड, मलाया, बर्मा आदि सभी देशों में कायम हो गईं। इन प्रादेशिक शाखाओं के अन्तर्गत स्थानीय शाखाओं का जाल भी चारों ओर बिछ गया। यहाँ इस प्रकार एक नये आन्दोलन एवं संगठन का जन्म हो रहा था कि स्वदेश से 'अंग्रेजो ! हिन्दुस्तान छोड़ो' का नारा सुन पड़ा। इसी के साथ कांग्रेस महासमिति के ऐतिहासिक अगस्त-प्रस्ताव और अगस्त-क्रान्ति के समाचार सुनने में आये। सब राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी और उसके बाद विप्लवी घटनाओं के समाचारों से पूर्वीय एशिया के आजाद हिन्द आन्दोलन को और भी अधिक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। स्वदेश में हुई इस क्रान्ति के समर्थ नये पूर्वीय एशिया में सभी स्थानों पर उत्साहपूर्ण प्रदर्शन हुये।

१. 'आजाद हिंद संघ' का संगठन

आजाद हिन्द संघ का बैंकाक में सारे ही पूर्वीय एशिया का केन्द्रीय कार्यालय कायम हो गया और मलाया के सुप्रसिद्ध और प्रमुख वकील श्री बी० के० दास उसके प्रधान-मन्त्री नियुक्त किये गये। अध्यक्ष के सहित युद्ध परिषद के जो पांच सदस्य नियुक्त किये थे, उनके आधीन कार्य का बंटवारा निम्न लिखित किया गया:—

१. अध्यक्ष श्री रासबिहारी बोस—अर्थ-व्यवस्था और आन्तरिक व्यवस्था।

२. कप्तान मोहनसिंह—आजाद हिन्द फौज के प्रधान सेनापति अर्थात् जी० ओ० सी० ।

३. श्री एन० राघवन—संगठन एवं जन-सम्पर्क ।

४. श्री के० पी० के० मैनन—प्रकाशन और प्रचार ।

५. कर्नल जी० क्यू० गिलानी—फौजी शिक्षण आदि ।

श्री मैनन के मातहत प्रकाशन और ब्राडकास्ट का काम श्री एस० ए० अय्यर को सौंपा गया था । श्री डी० एस० देशपाण्डे, कर्नल एन० एस० गिल, श्री ए० एस० सहाय और श्री ए० एम० नायर के नाम भी केन्द्रीय कार्यालय के संचालन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं ।

बैंकोक के रेडियो स्टेशन से 'आजाद हिन्द संघ सदर मुकाम रेडियो' के नाम से रेडियो का कार्यक्रम भी शुरू किया गया ।

एक पन्ने का 'आजाद' नाम से एक दैनिक पत्र भी शुरू किया गया था । श्री बोस ने श्री देशपाण्डे के साथ पूर्वीय एशिया का दौरा भी किया । गया । इसका उद्देश्य स्थान-स्थान के लोगों की स्थिति देखना और उनको संगठित करना था । आपने दक्षिण-पूर्वीय एशिया से यह दौरा शुरू किया था । इससे लाभ यह हुआ कि स्थानीय संस्थाओं का संगठन केन्द्रीय संगठन की शाखाओं के रूप में सुदृढ़ हो गया ।

थाईलैण्ड में प्रादेशिक शाखा का संगठन श्री देवनाथ दास के सभापतित्व में किया गया । प्रमुख हिन्दुस्तानियों ने तन-मन-धन से संघ का साथ दिया । पं० रघुनाथ शास्त्री, श्री बी० ए० कपासी, श्री साठेभाई, श्री एम० अली खान, सरदार ईशरसिंह, सरदार वचनसिंह के नाम सहयोग देने वालों में उल्लेखनीय हैं । थाईलैण्ड के सब शहरों और बस्तियों में संघ की शाखाओं का जाल बिछ गया ।

मलाया में श्री एन. राघवन के रूप में संघ को बहुत ही योग्य और प्रभावशाली नेता मिल गया । आप ही यहां की प्रादेशिक शाखा के अध्यक्ष चुने गये । सभी हिन्दुस्तानी संघ के तिरंगे झण्डे के नीचे आकर खड़े हो गये, और स्वदेश की आजादी के लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई में उन्होंने पूरे

उत्साह से भाग लेने की तत्परता दिखाई। अनेक समाचार पत्र भी प्रकाशित किये गये। उनमें पिनांग से निकलने वाले 'पूर्ण स्वराज्य' और सिंगापुर से निकलने वाले 'आजाद हिन्दुस्तान' के नाम उल्लेखनीय हैं। सिंगापुर के रेडियो स्टेशन से भी संघ की ओर से ब्राडकास्ट होने लगे।

बर्मा की प्रादेशिक कमेटी को भी फिर से संगठित किया गया। श्री लाठिया के स्थान में उत्साही युवक-कार्यकर्ता सी. वी. प्रसाद अध्यक्ष चुने गये। युद्ध की दृष्टि से बर्मा की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इसलिये श्री डी. ऐस. देशपाण्डे ने स्वेच्छा से बर्मा के प्रधान-मंत्री का काम संभाला।

बोर्नियो में प्रादेशिक शाखा के अध्यक्ष सी. ऐम. सी. चक्रवर्ती थे। उन्होंने संघ की शाखायें कायम करने में अद्भुत साहस का परिचय दिया।

हिन्द चीन में फ्रेंच-सरकार की प्रतिगामी नीति के कारण आजाद हिन्द आन्दोलन और संगठन पनप नहीं सका। फ्रेंच हुकूमत ने मुर्झाते हुये भी अपनी इस नीति को नहीं छोड़ा। फिर भी सैगान से आजाद हिन्द रेडियो ने जो काम किया, वह बहुत ही अद्भुत और एक चमत्कार ही था। इसका सारा श्रेय कर्नल अहसान कादिर और कर्नल आई. हसन को है। आजाद हिन्द सेना के इन उत्साही युवक कर्नलों के संचालन में चलने वाला सैगान का यह आजाद हिन्द रेडियो आन्दोलन के लिये बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। उसके मारे अंग्रेजों के नाकों दम था और हिन्दुस्तान का आल इण्डिया रेडियो भी उससे परेशान था। इसके प्रभाव को नष्ट करने के लिये आल इण्डिया रेडियो को तो एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन करना पड़ा था। दोनों कर्नलों को अपना कार्यक्रम जापानियों के हस्तक्षेप के बिना सर्वथा स्वतन्त्र रूप में करने के लिये उनके साथ निरन्तर संघर्ष करना पड़ता था। इन दोनों ने इस रेडियो से कांग्रेस महासमिति के 'अंग्रेजों! भारत छोड़ो' प्रस्ताव का धुंआधार प्रचार किया।

२. 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन

हिन्दुस्तान को अंग्रेजों और विदेशी सत्ता से सर्वथा मुक्त कर पूर्ण

आजादी प्राप्त करने के उद्देश्य से 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन करने के लिये बैंकाक सम्मेलन में जो प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था, उसको सितम्बर १६४२ में कार्य में परिणत किया गया। बैंकाक सम्मेलन के बाद जनरल मोहनसिंह उसमें जुट गये और उन्होंने उसके लिये दिन-रात एक कर दिया। इस फौज का संगठन हिन्दुस्तान की आजादी के लिये किये गये आन्दोलन के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश था। इस फौज में दिसम्बर १६४२ तक १७००० स्वेच्छा से फौजी शामिल हो गये थे। नं० १ हिन्द फील्ड सर्विस में निम्न लिखित ब्रिगेड और टुकड़ियां शामिल थीं।

१. गांधी ब्रिगेड—कमाण्डर मेजर ऐच. एस. बरार।
२. नेहरू ब्रिगेड—कमाण्डर मेजर आई. जे. कियानी।
३. आजाद ब्रिगेड--कमाण्डर मेजर प्रकाश।
४. ऐस. ऐस. ग्रुप—कमाण्डर मेजर ताज।
५. इण्टेलिजेंस ब्रांच—कमाण्डर ताजमुल हुसैन।
६. नं० १ फौजी अस्पताल।
७. नं० १ डाक्टरी सहायता दल।
८. नं० १ इंजिनियरिंग कम्पनी।
६. नं० १ फौजी यातायात कम्पनी।
१०. फौजी प्रचार यूनिट।
११. फील्ड फोर्स ग्रुप।

३. 'आजाद हिंद फौज' का शिक्षण

जनरल मोहनसिंह की आधीनता में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को जो शिक्षण यानी ट्रेनिंग दी जाती थी, वह बिलकुल ही नयी थी। पुराना सैनिक क्रम नीचे से ऊपर तक सारा-का-सारा बदल दिया गया था। जो लोग केवल पेट के लिये बतौर एक पेशे के फौज में भरती हुये थे, उनको लेकर देशभक्तों की सेना खड़ी करने में जो कठिनाई पेश आ सकती थी, उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। अंग्रेज सेना में रहते हुये उनको न तो

कुछ पढ़ाया-लिखाया गया था और न उनका कुछ बौद्धिक विकास ही किया गया था। ऐसे लोगों का बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास कर उनमें देशभक्ति की भावना पैदा करना उनके शिक्षण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग था। 'गांधी' 'नेहरू' और 'आजाद' नाम से पहिले तीन ब्रिगेड का संगठित किया जाना इस दिशा में स्वतः ही पहिला पाठ था। भिन्न-भिन्न कैम्पोंमें समय-समय पर राष्ट्रीय विषयों पर व्याख्यानों का प्रबन्ध किया जाता था और इनसे उनमें राष्ट्रीय भावना पैदा करने का प्रयत्न किया जाता था। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का इतिहास और हिन्दुस्तान को सर्वथा असहाय एवं नपुंसक बना देने वाले साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के विरुद्ध उस द्वारा किये गये भीषण संघर्ष का वृतान्त उन व्याख्यानों के मुख्य विषय होते थे। मातृभूमि को ब्रिटिश साम्राज्य के क्रूर पंजे से छुड़ाने के लिये हिन्दुस्तान के स्त्री-पुरुषों द्वारा किये गये महान् बलिदान एवं उत्सर्ग का आदर्श उनके सामने पेश किया जाता था और कहा जाता था कि उन्होंने उसी का अनुकरण करना है। महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, श्री सुभाषचन्द्र बोस और मौलाना मुहम्मदअली सरीखे हिन्दुस्तान के महापुरुषों की जीवनियां उनके सामने इसलिये पेश की जाती थीं कि उनसे उनको प्रेरणा और प्रोत्साहन मिल सके। धीरे-धीरे राष्ट्रीयता की भावना उनमें जागृत हुई। वे सब अपने को एक राष्ट्र का निवासी मानने लगे। उनके हृदयों पर "राष्ट्र देवो भव" के मन्त्र की छाप लग गई।

उनको साक्षर बनाने का आन्दोलन भी बड़े उत्साह के साथ शुरु किया गया। हर यूनिट के कमाण्डर के नाम यह आदेश जारी किया गया कि वह यह देखे कि उसकी यूनिट में कोई भी व्यक्ति निरक्षर न रहने पावे। शिक्षित लोगों से कहा गया कि वे इस काम में विशेष उत्साह से भाग लें। कुछ समय बाद आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को वह सब विप्लवी साहित्य पढ़ने के लिये दिया गया, जो हिन्दुस्तान में सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। आजाद हिन्द सैनिकों को वास्तविक राजनीतिक

शिक्षा दी गई और उनमें राजनीतिक चेतना जागृत की गई। जनरल मोहनसिंह जी. ओ. सी. ने आजाद हिन्द की पहिली फौज के तैय्यार करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण और सराहनीय भाग लिया।

नीसून, बिदादरी और सलीतार में सितम्बर १६४२ में फौजी हलचलें जोरों के साथ शुरु हुईं। इन सब कैम्पों में आजाद हिन्द फौज के लोगों ने इकट्ठा रहना, एक साथ शिक्षण प्राप्त करना, एक साथ भोजन करना और जाति, सम्प्रदाय, वर्ग अथवा वर्ण के सब प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठ कर सबने एक साथ मिलकर त्यौहार मनाने भी शुरू किये। 'भेदभाव पैदा करके शासन करने की दुर्नीति' के असर का कहीं पता भी न रहा। 'एकता', 'विश्वास' और 'बलिदान' की ऊंची भावना सहज में सब में समा गई। उनको जो सैनिक शिक्षा दी जाती थी, वह भी सर्वथा नवीन थी। फौजी कमान के लिये हिन्दुस्तानी शब्द काम में लाये जाने लगे। अंग्रेजी राज के दिनों में कूटचाल और सैनिक गति-विधि की शिक्षा केवल ऊंचे अफसरों के लिये 'रिजर्व' थी। अब उसका द्वार आजाद हिन्द फौज के हर सिपाही के लिये खोल दिया गया। अफसरों के विशेष शिक्षण के लिये स्कूल खोला गया और कर्नल हबीबुर रहमान उसके कमाण्डर नियुक्त किये गये। यह स्कूल हर फौजी के लिये खुला था और सबको वहां कूटचाल और सैनिक गति-विधि की पूरी शिक्षा दी जाती थी। जिन दिनों में शिक्षा का यह क्रम शुरू हुआ ही था, उन्हीं दिनों में हिन्दुस्तान में 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया जा कर अगस्त-क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था। नेताओं की गिरफ्तारी, अंधाधुन्ध दमन और आतंक के भीषण समाचार इन कैम्पों में पहुँचने शुरू हुये। निःशस्त्र और निरीह लोगों पर जो भीषण अत्याचार किये गये, उनके भयानक समाचारों की प्रतिक्रिया यह हुई कि शिक्षण का काम और भी जोरों के साथ बड़े उत्साह से चलने लगा। बलिदान की भावना और उत्साह उस समय चोटी पर पहुंचा हुआ था। आजाद हिन्द फौज के सिपाही यह सोचा करते थे कि यदि हिन्दुस्तान की जेलें कहीं नजदीक

ही होतीं, तो उन्होंने उनके दरवाजे और दीवारें मिट्टी में मिला दी होतीं। अपने नेताओं को रिहा कर भारत माता को आजाद करने का जो जोश उस समय लोगों में था, उसको काबू में रखना बहुत मुश्किल था।

स्वदेश और राष्ट्रीय तिरंगे झंडे की मान-मर्यादा की रक्षा करने का आजाद हिन्द फौज के हर सैनिक ने प्रण किया हुआ था और उस प्रण की पूर्ति के लिये सब सम्भावनाओं, संकटों और मृत्यु तक का सामना करने की वे सब तैय्यारी कर रहे थे। रात को लम्बे पड़ाव पार करने का अभ्यास, कठोर शस्त्र-शिक्षा, नकली आक्रमण एवं प्रत्याक्रमण, भीषण युद्ध में आत्मरक्षा के उपायों का अभ्यास, सवेरे व्यायाम, नैतिक शिक्षा इत्यादि से आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को मोर्चे के लिये फौलाद की दीवार बनाया जा रहा था। संक्षेप में कहा जाय, तो कहना होगा कि आजाद हिन्द फौज के रूप में नये जीवन का सूत्रपात हो कर सैनिकों में नवीन चैतन्य और नयी स्फूर्ति का संचार किया जा रहा था। कहना होगा कि इस सब का श्रेय जनरल मोहनसिंह को था।

दिसम्बर १९४२ तक शिक्षा का यह क्रम निरन्तर अव्याहत गति से चलता रहा।

४. दुर्भाग्यपूर्ण संकट

इस समय आजाद हिन्द संघ और आजाद हिन्द फौज को दुर्भाग्यपूर्ण संकट का सामना करना पड़ गया। इसका मुख्य कारण जापानी थे। उनका रुख इस आन्दोलन एवं संगठन के प्रति कुछ साफ न था। बैंकाक सम्मेलन में स्वीकार किये गये अन्तिम प्रस्ताव पर जापान-सरकार ने कुछ भी ध्यान न दिया। उसमें जापान-सरकार से उन प्रस्तावों को स्वीकार करके उनके सम्बन्ध में स्वीकृतिसूचक एक वक्तव्य देने का अनुरोध किया गया था। २२ जुलाई १९४२ को जापान-सरकार के पास सब प्रस्तावों की नकलें भेज दी गई थीं। साधारण तौर पर यह उत्तर तो दिया गया था कि जापान हिन्दुस्तान को अपनी आजादी प्राप्त करने में पूरी सहायता

करेगा और उसकी हिन्दुस्तान में या उसके किसी भी प्रदेश या हिस्से में अपनी हकूमत कायम करने की इच्छा कदापि नहीं है, किन्तु उन प्रस्तावों के बारे में कुछ भी स्पष्ट उत्तर टोकियो से नहीं दिया गया था। युद्ध परिषद में जापान के इस रुख के प्रति असन्तोष पैदा हुआ।

दूसरा कारण यह था कि जापान के हाई कमाण्ड ने आजाद हिन्द फौज का तेजी के साथ विस्तार करने में सहायता देने में अनिच्छा-सी प्रगट करनी शुरू की।

तीसरा कारण यह था कि जापान के सरकारी संगठन ईवाकुरो कीकान ने, जो कि जापानी सरकार तथा जापानी फौजी अफसरों और आजाद हिन्द संघ तथा आजाद हिन्द फौज के बीच में मध्यस्थ का काम करता था, संघ और फौज के काम में बहुत-ही अधिक हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। उसने भेदनीति से भी काम लेना शुरू किया और कुछ स्वार्थी हिन्दुस्तानी सहज में उसके हाथ का खिलौना बन गये।

५. बर्मा में संकट की घटा

सबसे पहिला संकट जापानी फौजी अफसरों तथा कीकान और बर्मा के आजाद हिन्द संघ की प्रादेशिक शाखा में पैदा हुआ। संघ के प्रधान श्री बी० प्रसाद तथा प्रधानमन्त्री श्री डी० ऐस० देशपाण्डे और ईवाकुरो कीकान के कर्नल किताबे, कर्नल ओगुरा तथा अन्य फौजी अफसरों में मत-भेद पैदा हो कर संकट का श्रीगणेश हुआ। जापानी अफसर और उनके मातहत लोग संघ के काम में बहुत अधिक दस्तन्दाजी करने लगे। यह दस्तन्दाजी हिन्दुस्तानी युवक नेताओं को सहन न हुई। अन्त में बर्मा छोड़ कर हिन्दुस्तान चले जाने वाले हिन्दुस्तानियों की जायदाद की देखभाल को ले कर मतभेद बहुत बढ़ गया। जापानियों ने उसको 'शत्रु की जाय-दाद' मान कर यह चाहा कि उसका प्रबन्ध, संघ की ओर से जापानियों के आदेश के अनुसार ही किया जाना चाहिये। सबसे अधिक आपत्तिजनक बात तो यह थी कि हिन्दुस्तान चले जाने वाले हिन्दुस्तानियों के जो

गोदाम आदि संघ की देखरेख में थे, उस पर साधारण-सा भी जापानी फौजी जाकर ताला तोड़ डालता और उसमें से जो कुछ भी चाहता, निकाल लाता था। श्री प्रसाद और श्री देशपाण्डे ने इस पर आपत्ति की।

संघ के कुछ पदाधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में भी जापानियों ने हस्तक्षेप किया। लेकिन, श्री प्रसाद ने अपनी आजादी की रक्षा करते हुए उनकी परवा नहीं की। उन्होंने अपने और संस्था के गौरव के उसको सर्वथा विपरीत माना। इसको ले कर जापानी अधिकारियों के साथ उनका बहुत-सा पत्र-व्यवहार हुआ और कई मुलाकातें भी हुईं। गरमागरम बहस भी हुई। श्री प्रसाद के लिये कर्नल किताबे ने कुछ अपमानास्पद शब्द भी कह डाले। उन्होंने उनका प्रतिवाद किया। श्री प्रसाद और श्री देशपाण्डे ने इन सबकी रिपोर्ट श्री बोस के पास भेजी। लेकिन, जापानियों ने उसको उन तक पहुंचने न दिया। परिणाम यह हुआ कि श्री प्रसाद को बर्मा से निर्वासित करके १६४२-४३ में थाईलैण्ड भेज दिया गया। जापान के आत्म-समर्पण करने के समय तक आप वहां ही रहे और १६४५ में अंग्रेज जब वहां आये, तब आपको भी गिरफ्तार कर लिया गया। श्री डी० ऐस० देशपाण्डे भी बर्मा से सिंगापुर चले गये। इस प्रकार सबसे पहिले बर्मा में संघ को जापानी ग्रहण ने ग्रस लिया।

६. आजाद हिन्द फौज पर संकट

बैंकौक-सम्मेलन के प्रस्तावों पर जापानी सरकार ने अपना मत नवम्बर १६४२ तक भी प्रगट नहीं किया। बार-बार लिखने पर भी उसकी ओर से कुछ भी स्पष्टीकरण किया नहीं गया। इस लिये युद्ध-परिषद की एक बैठक में सरदार मोहनसिंह ने जापानियों के रुख के प्रति अपना सन्देह प्रगट करते हुये जोर दिया कि उन से अपना रुख स्पष्ट करने की एक बार फिर मांग करनी चाहिये। युद्ध परिषद की ओर से उसके अध्यक्ष श्री बोस ने जापानी अधिकारियों से इसके लिये मांग की। लेकिन, मामला बिगड़ता चला गया। इसी बीच मलाया में संगठित की गई आजाद हिन्द फौज को जापानी अधिकारियों

की मांग पर युद्ध परिषद ने बर्मा भेजने से इनकार कर दिया। ८ दिसम्बर को एकाएक कर्नल गिल के जापानियों द्वारा गिरफ्तार कर लिये जाने से स्थिति बद से बदतर हो गई। असन्तोष की आग में घी डल गया। गिरफ्तारी के समय कर्नल गिल जनरल मोहनसिंह के मकान पर थे। जनरल द्वारा तीव्र प्रतिवाद किये जाने पर भी जापानी फौजी पुलिस वाले कर्नल को अपने साथ ले ही गये।

दूसरे दिन ६ दिसम्बर को युद्ध-परिषद की एक महत्वपूर्ण बैठक बुलाई गई। श्री एन. राघवन इसमें सम्मिलित न हुये। बाद में पता चला कि उन्होंने उसमें स्तीफा दे दिया था। बैठक में अन्य तीन सदस्यों जनरल मोहनसिंह, श्री के० पी० के० मैनन, लैफ्टिनेण्ट जी० क्यू० गिलानी ने भी स्तीफे पेश कर दिये। अध्यक्ष श्री बोस ने सब के स्तीफे मंजूर कर लिये। सारे आन्दोलन की बागडोर आपने अकेले ही अपने हाथों में संभाल ली।

उसके बाद कुछ दिनों तक यह अनुभव होने लगा कि सारी स्थिति सुधर गई है। लेकिन, २६ दिसम्बर १६४२ को एक प्रकार से जापानी ग्रहण ने आजाद हिन्द फौज को पूरी तरह ही ग्रस लिया। जनरल मोहनसिंह भी इस दिन जापानियों द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। इसकी पहिले ही संभावना करके जनरल मोहनसिंह ने आजाद हिन्द संघ की सभी शाखाओं को गुप्त पत्र भेज कर यह आदेश दे दिया था कि उनकी गिरफ्तारी के बाद आजाद हिन्द फौज तुरन्त भंग कर दी जाय। वैसा ही किया गया।

७. मलाया पर संकट के बादल

आजाद हिन्द संघ और आजाद हिन्द फौज के भी जब श्री बोस एकाधिकारी बन गये, तब आपने यह घोषणा की कि आप सब मामलों की जापानी सरकार और अधिकारियों से सफाई कराने के लिये टोकियो जायेंगे। तब तक 'संघ' के संगठन और काम को निरंतर जारी रखने की

आपने अपील की। अन्य सब प्रादेशिक शाखायें तो इससे सहमत हो गईं, किन्तु मलाया की प्रादेशिक शाखाने शीघ्र से शीघ्र स्पष्टीकरण की मांग करते हुये श्री रासबिहारी बोस से कहा कि इस बारे में जापानी सरकार को कोई स्पष्ट वक्तव्य देना या घोषणा करनी चाहिये। जब तक ऐसा वक्तव्य न दिया जाय या घोषणा न की जाय, तब तक साधारण कामकाज जारी रखते हुए भी कोई नया काम न किया जाय।

स्थिति में सुधार होने की आशा तो हुई, किन्तु वह जल्दी ही मुर्झा गई। ईवाकुरो किकान से एक नया समानान्तर आन्दोलन तथा संगठन खड़ा करने का यत्न शुरू किया गया। उसका उद्देश्य आजाद हिन्द संघ के संगठन को कमजोर बनाकर हिन्दुस्तानियों से अपना उल्लू सीधा करना था। 'संघ' और उसके नेताओं के विरुद्ध भ्रमपूर्ण प्रचार भी शुरू किया गया।

फरवरी १६४३ में मलाया प्रादेशिक शाखा की एक बैठक हुई। तीन दिन के विचार-विनिमय के बाद श्री रासबिहारी बोस के पास एक आवेदन पत्र भेजने का निश्चय किया गया। इसमें सारी स्थिति का सिंहावलोकन किया गया। स्थिति में सुधार न होने पर सारी कमेटी ने स्तीफा देने का निश्चय कर लिया। यह आवेदन-पत्र भी श्री बोस के पास न पहुँच सका और जापानियों ने उसको उड़ा लिया। जापानियों ने इस आवेदन पत्र के कारण श्री बोस पर दबाव डाला कि वे श्री राघवन को मलाया की प्रादेशिक कमेटी के अध्यक्ष-पद से स्तीफा देने को मजबूर करें। श्री राघवन को स्तीफा देना पड़ा। अन्य पदाधिकारियों ने स्तीफा नहीं दिया। जापान के हाथों में खेलने वाले लोगों के लिये उन्होंने स्थान खाली नहीं किये। जापानियों की कोशिश थी कि वे ऐसे लोगों को 'संघ' में भर दें। इस प्रकार मलाया पर भी जापानी ग्रहण की छाया पड़ गई।

८. पूर्ण ग्रहण

कुछ समय के लिये तो पूर्णिमा के चांद को जापानी राहू ने ग्रस ही

लिया। जो आन्दोलन एवं संगठन अपने यौवन पर था, वह मुर्झाता-सा दीख पड़ने लगा। यद्यपि वयोवृद्ध श्री रासविहारी बोस ने आन्दोलन एवं संगठन के संचालन का सारा भार अपने कंधों पर ले लिया और आपने उसको मरने न देने की पूरी कोशिश की; फिर भी इस संकट या ग्रहण का सारे ही पूर्वीय एशिया पर बहुत बुरा असर पड़ा। कुछ समय के लिये सारा ही आन्दोलन एकदम रुक-सा गया। आजाद हिन्द फौज के फौजियों और जनता का उत्साह भी प्रायः ठण्डा पड़ गया। श्री रासबिहारी बोस और जनरल मोहनसिंह के बीच पैदा हुई खाई को कितना भी दुर्भाग्यपूर्ण क्यों न माना जाय और उसके बारे में कुछ भी क्यों न कहा जाय; लेकिन इससे यह प्रगट हो गया कि पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी और अंग्रेज सेना से आजाद हिन्द फौज में आये हुए लोग तथा अफसर भी किसी भी हालत में और किसी भी कीमत पर जापानियों के हाथों में खेलने को तय्यार न थे। दिन के प्रकाश की तरह यह प्रगट हो गया कि अपने देश में उनको अंग्रेजों के स्थान में जापानियों की हकूमत का कायम होना कदापि अभीष्ट न था। वे तो अपने देश को सर्वथा स्वाधीन देखना चाहते थे। किसी भी विदेशी सत्ता के नियन्त्रण, प्रभाव तथा हस्तक्षेप से सर्वथा रहित स्वदेश की पूर्ण आजादी उनका सुनिश्चित लक्ष्य था।

८.

नेताजी का पदार्पण : नये जीवन का प्रभात

जनरल मोहनसिंह की गिरफ्तारी के बाद आजाद हिन्द फौज के अनेक सैनिक विरोधस्वरूप उससे अलग होगये। लेकिन, कुछ ऐसे भी थे, जो स्वदेश की आजादी के लिये शुरू किये गये इस आन्दोलन को हर हालत में चालू रखने का दृढ़ निश्चय किये हुये थे। श्री रासबिहारी बोस का यह मत था कि देश की आजादी के लिये शुरू किया गया आन्दोलन किसी भी हालत में बंद नहीं किया जा सकता और कोई भी अकेला व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, आजाद हिन्द फौज को भंग नहीं कर सकता। ऐसी सम्मति रखने वालों ने इस आन्दोलन को मरने न देकर उसको चालू रखा। संकट से एक लाभ यह भी हुआ कि हिन्दुस्तानियों में नया जीवन, जागृति और चेतना पैदा हो कर वे इस बारे में पूरी तरह सावधान एवं सचेत हो गये कि किसी भी विदेशी सत्ता के हाथों वे अपना या अपने देश का शोषण न होने देंगे।

आजाद हिन्द फौज के अफसरों की, जिनमें नानकमिशण्ड अफसर भी शामिल थे, १० फरवरी १६४३ को एक सभा हुई। श्री बोस ने फौज के संचालन का सारा काम सीधे तौर पर अपने हाथ में ले लिया। आपने यह आश्वासन एक बार फिर दिया कि इस फौज से देश को स्वतन्त्र करने के सिवा कोई भी और काम न लिया जायगा। इस आश्वासन पर उनमें से भी बहुत से लोग फिर से फौज में शामिल हो गये, जो जनरल मोहनसिंह की गिरफ्तारी के विरोध में उससे अलग हो गये थे।

आजाद हिन्द संघ के सदर मुकाम में एक नया विभाग डाइरैक्टोरेट आफ मिलिटरी ब्यूरो कायम किया गया और उसके आधीन बिलकुल नये आधार पर फौज का संगठन किया गया। १७ अप्रैल १६४२ को

इस डाइरैक्टोरेट का निम्न लिखित संगठन था:—

डाईरैक्टर आफ मिलिटरी ब्यूरो—लैफ्टिनेएट कर्नल जे० के० भोंसले।

मिलिटरी सेक्रेटरी—मेजर पी० के० सहगल।

जनरल स्टाफ के चीफ-लैफ्टिनेएट कर्नल शाह नवाज खां।

चीफ एडमिनिस्ट्रेटर—लैफ्टिनेएट कर्नल ए० डी० लोकनाथन।

डी० पी० ऐम०—कप्तान अब्दुल रशीद।

ओ०टी०ऐस०—मेजर हबीबुल रहमान।

एडजुटैएट—मेजर सी० जे० स्ट्रासी।

अर्थ-व्यवस्था—कप्तान कृष्णमूर्ति।

री-इनफोर्समेएट—मेजर मता उल मल्लिक।

क्यू ब्रांच—मेजर के० पी० थमाया।

डी० ऐम० ऐम०—लैफ्टिनेएट कर्नल जी० सी० अलागप्पान।

१. पहिला सिंगापुर सम्मेलन

आजाद हिन्द फौज के पुनर्गठन के साथ साथ आजाद हिन्द संघ के केन्द्रीय कार्यालय यानी सदर मुकाम का भी फिर से संगठन किया गया। श्री० बी० के० दास की जगह लैफ्टिनेएट कर्नल ए० सी० चैटर्जी संघ के प्रधानमन्त्री नियत किये गये। शोनान (सिंगापुर) में अप्रैल १६४३ के अन्त में पूर्वीय एशिया की समस्त प्रादेशिक शाखाओं के प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन का आयोजन श्री रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में किया गया। इसमें उपस्थित होने वालों में कुछ मुख्य व्यक्ति निम्न लिखित थे:—बर्मा प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष श्री बी० प्रसाद; थाईलैण्ड के श्री देवनाथ दास, सरदार ईशरसिंह, पण्डित रघुनाथ शास्त्री, श्री एम० अली अकबर; मलाया प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष श्री चिदम्बरम; हांगकांग के डाक्टर ए० सी० नायडू, और श्री डी० ऐम० खान; बोर्नियो के श्री ऐस० सी० चक्रवर्ती और जापान के श्री डी० ऐस० देशपाण्डे।

इस सम्मेलन में आजाद हिन्द संघ के बैंकौक-सम्मेलन में स्वीकार किये गये विधान में कुछ संशोधन किये गये। इस संशोधनों का उद्देश्य संगठन को और भी अधिक दृढ़ बनाना था। इसी सम्मेलन में श्री रासबिहारी बोस ने यह घोषणा की थी कि श्री सुभाषचन्द्र बोस के किसी भी समय पूर्वीय एशिया में आने की आशा की जा सकती है।

२. नेताजी का शुभागमन

सिंगापुर के सम्मेलन के बाद ही श्री रासबिहारी बोस जापान के लिये बिदा हो गये। आपके जापान जाने का उद्देश्य हिन्दुस्तान की आजादी के लिये पूर्वीय एशिया में शुरू किये गये आन्दोलन के सम्बन्ध में जापान सरकार से बातचीत करना और उसके प्रति उसके रुख को स्पष्ट कराना था। बैंकोक-सम्मेलन के प्रस्तावों के सम्बन्ध में चर्चा करना और हिन्दुस्तानियों में पैदा हुये सन्देह को दूर करना भी इस यात्रा का उद्देश्य था।

ठीक इसी समय पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों ने यह हर्षप्रद समाचार सुना कि १३ जून १९४३ को श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस बर्लिन से टोकियो आ पहुंचे हैं। इस समाचार से चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। पूर्वीय एशिया की लड़ाई शुरू होने के दिन से पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी हजारों मील दूर से अपने महान नेता के ओजस्वी भाषण और अपीलें सुना करते थे। दूर-दूर स्थानों में रहने वाले भी उन अपीलों को बड़े ध्यान और प्रेम से सुना करते थे। उनकी सचाई से हर हिन्दुस्तानी प्रभावित होकर मन्त्रमुग्ध हो जाता था। पूर्वीय एशिया में स्वदेश की आजादी के इस आन्दोलन तथा संगठन का जब से सूत्रपात हुआ था, तभी से वहांके हिन्दुस्तानी यह मनाया करते थे कि सुभाष बाबू उनका नेतृत्व करने के लिये उनके बीच में उपस्थित हो जांय। बैंकौक-सम्मेलन में तो एक प्रस्ताव पास करके इस इच्छा को प्रकट भी किया गया था। लेकिन, उनकी यह इच्छा पूरे एक वर्ष बाद पूरी हुई।

अपने महान नेता के १३ जून १९४३ को टोकियो पहुँचने का समा-

चार पूर्वीय एशिया में १५ जून को पहुँचा और साथ में यह भी पता चला कि आते ही सुभाष बाबू जापान के प्रधानमन्त्री जनरल हिदेकीतोजो से मिले थे। उसी दिन टोकियो रेडियो से आपका तेजस्वी भाषण भी सुनने को मिला। जो आवाज इससे पहिले बर्लिन सरीखे सुदूर स्थान से सुन पड़ती थी, उसको रेडियो से सुनकर बहुत से आश्चर्य चकित रह गये और बहुतों को तो आपके टोकियो में होने का विश्वास तक न हुआ। अन्त में उनके स्वप्न पूरे हुये। हिन्दुस्तान से १९४१ में सहसा गायब हुये अपने महान नेता को अब अपने बीच में देखने की लालसा हर किसी में समा रही थी। वे शीघ्र से शीघ्र आपके प्रत्यक्ष दर्शन करने को लालायित थे।

३. सिंगापुर में दूसरा सम्मेलन

४ जुलाई १९४३ को सिंगापुर में दूसरे सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके लिये पूर्वीय एशिया के समस्त देशों के हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधि निमन्त्रित किये गये। श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस श्री रासबिहारी बोस साथ-साथ २ जुलाई को सिंगापुर आ पहुँचे। सुभाष बाबू खूब स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट थे। "करो या मरो" की साधना से प्रेरित हुये आप उत्साह और दृढ़ निश्चय की मूर्ति ही जान पड़ते थे। हिन्दुस्तानियों की आजादी की चिर-अकांक्षा की पूर्ति करने के लिये तो मानो आप अवतार के रूप में ही प्रकट हुये थे। आपके भाग्यों में निस्सन्देह आजाद हिन्द की आजाद फौज का सिपहसालार बनना लिखा था। विधि-विधान की इस अमिट रेखा की अटल सचाई को प्रमाणित करने के लिये ही सम्भवतः यह सारा खेल महाभारत की लड़ाई की तरह रचा गया था।

शोनान की कैथी बिल्डिंग के तोआ गेकिजो (महा पूर्वीय एशिया थियेटर हॉल) में इस सम्मेलन का आयोजन ४ जुलाई १९४३ को किया गया। श्री रासबिहारी बोस ने अध्यक्ष-पद को सुशोभित किया। वयोवृद्ध अध्यक्ष ने अपने सामयिक भावनापूर्ण भाषण में अन्य बातों की चर्चा करने के बाद सुभाष बाबू का उल्लेख बहुत ही नाटकीय ढंग से किया।

वहां उपस्थित हिन्दुस्तानी नेताओं को लक्ष्य करते हुये आपने कहा कि मैं आपके लिये एक बहुत बढ़िया सौगात लाया हूँ। वह सौगात लाखों जनता के अनभिषिक्त राजा या नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के रूप में है। आपने श्री बोस से पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों के नेतृत्व की बागडोर अपने मजबूत हाथों में संभालने के लिये आजाद हिन्द संघ के सभापतित्व को स्वीकार करने की अपील की।

श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस ने इस भारी दायित्व को अपने कन्धों पर संभालते हुये अत्यन्त ओजस्वी, मार्मिक और प्रभावशाली भाषण दिया। आपने अपने भाषण में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का बहुत विस्तार के साथ विवेचन करते हुए उन घटनाओं का वर्णन किया, जिनका स्वाभाविक परिणाम महायुद्ध था। हिन्दुस्तान से भाग निकलने और कहीं विदेश में बैठ कर स्वदेश की आजादी की लड़ाई को जारी रखने की अपनी योजना पर भी आपने प्रकाश डाला। वर्तमान अवसर और परिस्थितियों को सर्वथा उपयुक्त बता कर आपने अपने देश को गुलामी से आजाद करने के लिये कूच करने वाली राष्ट्रीय सेना का संचालन करने के लिये आजाद हिन्द अस्थायी सरकार कायम करने की ओर भी इशारा किया। संघ के प्रधान-पद को स्वीकार करते हुये आपने श्री रासबिहारी बोस को अपना प्रमुख सलाहकार नियुक्त करने की घोषणा की।

आजाद हिन्द संघ के अध्यक्ष-पद का दायित्व अपने कन्धों पर संभालने के अगले दिन ५ जुलाई को श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस ने शोनान के म्यूनिस्पल आफिस के सामने के विशाल मैदान में आजाद हिन्द फौज की परेड देखी और सलामी ली। दूध के से सफेद रंग की अचकन, पाजामा और गांधी टोपी के वेश में सुभाष बोस के व्यक्तित्व में कितना आकर्षण था ! आपने फौज के सैनिकों को लक्ष्य करते हुये एक भाषण भी दिया। पूर्वीय एशिया में आपका यह पहिला ही सार्वजनिक भाषण था। अपने स्वदेश की आजादी के निमित्त कूच करने वालों के लिये उस नारे का इस भाषण में आपने उल्लेख किया, जो बाद में सबके मुंह पर चढ़ गया। आपने

कहा कि जर्मनों ने जब फ्रांस पर चढ़ाई की थी, तब उन सबके मुख पर यही शब्द थे कि "चलो, पेरिस को।" उन्होंने अन्त में पेरिस पर कब्जा कर लिया। जापान ने जब एशिया में अंग्रेजों तथा अमेरिकनों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी, तब हर जापानी के मुख पर एक ही नारा था और वह था—"चलो सिंगापुर को।" जापानियों ने बात की बात में सिंगापुर पर सूरजमुखी झण्डा फहरा दिया। अब हमें अपने पवित्र और ऐतिहासिक युद्ध का श्रीगणेश करना है। इसके लिये हमारा नारा होगा—'चलो दिल्ली,' 'चलो दिल्ली' 'चलो दिल्ली'। सुभाष बोस के मुंह से निकले हुये इन शब्दों ने फौजियों पर जादू का-सा असर किया। उस समय के उत्साह और जोश का कोई ठिकाना न था। वहां खड़े हुये भी सब सैनिक दिल्ली की ओर कूच करते हुये-से अपने को अनुभव कर रहे थे।

६ जुलाई को उसी मैदान में आजाद हिन्द फौज की फिर परेड हुई। सुभाष बाबू और जापान के प्रधानमन्त्री जनरल हिदेकी तोजो दोनों ने सम्मिलित रूप से उसकी सलामी ली।

८ जुलाई १९४३ को सुभाष बोस ने एक घोषणा करते हुये संसार के समस्त लोगों को आजाद हिन्द फौज के कायम किये जाने का समाचार दिया।

९ जुलाई को अपने महान् नेता का स्वागत करने के लिये एक महान् समारोह का विराट आयोजन किया गया। पचास हजार से अधिक हिन्दुस्तानी उसमें शामिल हुये। इस अवसर पर दिये गये भाषण में सुभाष बाबू ने पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों से अपने देश की पूर्ण आजादी के लिये अपने सर्वस्व की बाजी लगा देने की अपील की। तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करने का अनुरोध करते हुये आपने इसी भाषण में पहली बार एक नये नारे "जयहिन्द" का उच्चारण किया और वह सहसा सबके मुंह पर चढ़ गया।

तीन दिन बाद १२ जुलाई को सुभाष बाबू ने एक और घोषणा की, जिससे सब ओर बिजली सी दौड़ गई। वह घोषणा १८५७ के स्वतंत्रता-

युद्ध की वीरांगना झांसी की वीर लक्ष्मी बाई के नाम पर हिन्दुस्तानी महिलाओं की एक सेना खड़ी करने के बारे में थी।

एक ही सप्ताह में सुभाषबाबू ने इस प्रकार सारी हवा बदल दी। निराश हृदयों में भी आशा का संचार हो गया और सूखी नसों में भी नया खून भरने लगा। एक नये संसार का निर्माण हो गया। सिंगापुर में आपका जो स्वागत हुआ, वह वहां के इतिहास में 'भूतो न भावी' था। महाराजाओं और सेनापतियों के दिलों में भी उसके लिये ईर्ष्या पैदा हो सकती थी। अपने महान नेता के अपने बीच में आने पर सिंगापुर के समान सारे ही पूर्वीय एशिया में विराट आयोजन किये गये। इन महान समारोहों में हिन्दुस्तानियों ने अपनी प्रसन्नता के साथ साथ अपने महान नेता के प्रति अपनी श्रद्धा और विश्वास भी प्रकट किया। पूर्वीय एशिया के समस्त हिन्दुस्तानी अपने नेता को पाकर एक व्यक्ति की तरह खड़े हो गये और उसके हाथों में उन्होंने अपनी तथा अपने देश की किस्मत सौंप दी। सुभाष बाबू को पाकर पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी धन्य हो गये और "नेताजी" शब्द भी आपको पाकर धन्य होगया। जिस 'ग्रहण' ने आजाद हिन्द के आन्दोलन, संगठन और फौज को ग्रस लिया था, उसका कहीं पता भी न रहा। उस दुर्भाग्यपूर्ण संकट से पैदा हुई मूर्छा भी सर्वथा दूर हो गई। निराशा की छाया तक कहीं दीख न पड़ती थी। जीवन, जागृति और चैतन्य का सब ओर संचार हो गया। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों और आम जनता के दिल भी बांसों उछलने लगे। उनके उत्साह का परावार न रहा। जो लोग अपने नेताओं के प्रति सन्देह और जापानियों के प्रति अविश्वास के कारण आजाद हिन्द संघ तथा आजाद हिन्द फौज में शामिल होने और सक्रिय भाग लेने में आगा-पीछा कर रहे थे, वे भी वेग के साथ आगे बढ़े और उन्होंने बिना किसी संकोच के अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी। उन पर भारत माता के उस महान सपूत के व्यक्तित्व ने जादू कर दिया, जिसकी स्वदेश की आजादी के लिये सचाई

तथा ईमानदारी कई बार परखी जा चुकी थी, जिसकी निःस्वार्थ साधना, निष्कलंक देशभक्ति तथा निर्लेप बलिदान की पवित्र भावना दिन के प्रकाश के समान सब पर प्रकट हो चुकी थी और बड़े से बड़ा खतरा उठा कर अपने जीवन को मातृभूमि के चरणों में अर्पित करने की जिसकी तैयारी को अनेकों बार कसौटी पर कसा जा चुका था। पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी यह सोचकर अपने भाग्यों को सराहते न थकते थे कि उनको एक ऐसा महान नेता मिल गया है, जिसको कूटनीति में निष्णात राजनीतिज्ञ भी ठग नहीं सकते और जो देश की आजादी के सवाल के साथ किसी भी प्रकार का कोई भी सौदा या समझौता किसी के भी साथ कर नहीं सकता। उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि वे अपने इस महान नेता के नेतृत्व में निश्चय ही अपने देश को पूरी तरह स्वतन्त्र और हर दिशा में शान के साथ प्रगति करता हुआ देखेंगे। इसी विश्वास से प्रेरित होकर उन्होंने अपना तन, मन धन—सर्वस्व नेताजी के चरणों में रख दिया। महाराणा प्रताप के चरणों में भामाशाह द्वारा अपने अक्षय भण्डार के प्रस्तुत किये जाने का इतिहास पूर्वीय एशिया में एक बार फिर देखने और पढ़ने को मिल गया।

९.

युरोप में आजाद हिन्द संगठन

पूर्वीय एशिया में नेताजी के महान कार्य, तूफानी दौरों और आजाद हिन्द संघ तथा फौज के पुर्गटन की चर्चा करने से पहले युरोप में नेताजी द्वारा किये गये कार्य की भी संक्षेप में चर्चा कर देनी आवश्यक है। जो महान कार्य आपने पूर्वीय एशिया में आकर किया, उसका सूत्रपात आपने युरोप में ही कर दिया था। अक्तूबर १९४१ में युरोप में लोगों को पता चला था कि जनवरी १९४१ में कलकत्ता से एकाएक गायब होजाने वाले सुभाष बाबू बर्लिन पहुँच गये हैं। उस महीने में बर्लिन के कुछ प्रमुख हिन्दुस्तानियों को सेनर ओ० मोजोता के नाम से चाय पार्टी का निमन्त्रण मिला। ये निमन्त्रण पत्र बर्लिन के नं० ६ सोफियनस्ट्रासे से, जहां कि युद्ध से पहले ब्रिटिश राजदूत रहता था, जारी किये गये थे। आमन्त्रित सज्जनों ने उन स्थान पर पहुंचने से पहिले उस निमन्त्रण-पत्र से यह समझा हुआ था कि किसी इटालियन ने उनको चाय के लिये निमंत्रित किया है। लेकिन, वे चकित रह गये, जब उनके सामने एक लम्बा, सुडौल, हृष्ट-पुष्ट, खूबसूरत. गोरे वदन का, भरे हुये चेहरे का, आंखों पर चषमा लगाये एक व्यक्ति आ खड़ा हुआ और उसने उन सबका हिन्दुस्तानी में स्वागत किया। सभी निमंत्रित व्यक्ति सिर्फ हिन्दुस्तानी ही थे। अब उनको यह जानने में अधिक समय न लगा कि उनको चाय पर बुलाने वाला इटालियन नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी है और वह उनके अन्यतम नेता देश-भक्त सुभाषचन्द्र बोस हैं। सहसा एक बिजली-सी दौड़ गई और कुछ मिनटों के लिये चारों ओर निस्तब्धता छा गई। नेताजी ने उस शान्ति को भंग करते हुये कहा कि मैं युरोप में इस विचार से आया हूं कि देश की आजादी की लड़ाई कहीं विदेश में बैठ कर जारी रख सकूं।

इन्हीं दिनों में मिश्र और लीबिया के युद्ध-क्षेत्रों में सैंकड़ों-हजारों हिन्दुस्तानियों ने जर्मनों के सामने आत्म समर्पण किया था। उनको यह जानकर बहुत खुशी हुई कि सुभाष बाबू यूरोप में हैं और वे देश की आजादी की लड़ाई के लिये एक सेना का संगठन करना चाहते हैं। वे उसमें भरती होने को लालायित हो गये।

इस सेना का संगठन करने से पहले नेताजी ने आजाद हिन्द संघ का संगटन किया और बर्लिन में उसका केन्द्रीय कार्यालय कायम किया। नेताजी के प्राईवेट सेक्रेटरी के रूप में उनके साथ पूर्वीय एशिया आनेवाले श्री आबिद हुसैन, जिनको कि पूर्वीय एशिया आने के बाद आजाद हिन्द फौज में लैफ्टिनेण्ट कर्नल बनाया गया था, नेताजी का युरोप में साथ देने वाले पहिले हिन्दुस्तानी थे। युरोप में आजाद हिन्द संघ की ओर से सबसे पहिला काम 'रेडियो प्रोग्राम' का शुरू किया जाना था। उसका यह काम सबसे महत्वपूर्ण था। यह काम जनवरी १६४२ से शुरू कर दिया गया था। इसी समय पहिला प्रोग्राम ब्राडकास्ट किया गया। इसी वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर २६ जनवरी १६४२ को "आजाद हिन्द फौज" यानी 'फ्री इण्डिया आर्मी' के संगटन का सूत्रपात्र किया गया और हमबुर्ग में इसकी छावनी डाली गई। इसका नाम 'फ्राइज इण्डीन लीजन' रखा गया। बड़े समारोह के साथ इसका प्रारम्भ किया गया। इस अवसर पर जर्मन और जापानी प्रतिनिधि भी उपस्थित हुये थे।

नेताजी का विचार पहले इस फौज में केवल चार सौ सैनिक भरती करने का था। लेकिन, नेताजी की अपील का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भरती होनेवालों की संख्या शीघ्र ही चार हजार तक पहुँच गई। उनमें कई युनिट शामिल थे। इनमें पैराशूटी, पैदल, घुड़सवार, यान्त्रिक आदि सभी युनिट थीं। रेगेनवामलेगर से ८ मील की दूरी पर मैर्जारित्स में शिक्षण कैम्प लगाकर सैनिकों को आवश्यक ट्रेनिंग देने का काम किया गया था। ग्यूनिग्सबुर्ग में भी शिक्षण के लिये एक कैंप लगाया गया था। शिक्षण यानी ट्रेनिंग का काम बहुत उत्साह के साथ चला और सभी प्रकार के

शस्त्रास्त्र की शिक्षा दी जाने लगी। छोटी-बड़ी मशीनगनों, टैंकों का प्रतिरोध करनेवाली तोपों, मोटरस, पहाड़ी आक्रमणों, तैराकी, घुड़सवारी, निशानेबाजी आदि सभी का अभ्यास कराया जाने लगा। ब्रूनिग्सवर्ग के शिक्षण से पहिले फ्रांकेनबुर्ग में प्रारंभिक शिक्षण प्राप्त करना आवश्यक था।

कठोर फौजी शिक्षण के अलावा 'फ्राइज इण्डीन लीजन' के लोगों और अफसरों को राजनीतिक शिक्षण भी दिया जाता था। अपने देश और संसार का इतिहास, १८५७ से पहिले और बाद की आजादी की लड़ाई का इतिहास, राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां और संसार की भिन्न भिन्न क्रान्तियों का वृत्तान्त राजनीतिक शिक्षण में शामिल था।

इस फौजी संगठन के साथ आजाद हिन्द संघ ने युरोप में रहने वाले समस्त हिन्दुस्तानियों को तिरगे झण्डे के नीचे संगठित कर सिविल संगठन को सुदृढ़ बनाने का यत्न किया। यूरोप के सभी प्रमुख नगरों में उसकी शाखायें कायम की गईं। युरोप में रहने वाले हिन्दुस्तानियों में श्री ए० सी० ऐन० नैम्बियार का प्रमुख स्थान था। इस लिये नेताजी ने उनको युरोप के केन्द्रीय संगठन का प्रमुख बनाया। नेताजी ने जब पूर्वीय एशिया के लिये युरोप से प्रस्थान किया, तब श्री नैम्बियार को आजाद हिन्द सरकार का प्रधान मन्त्री नियुक्त किया गया। आजाद हिन्द संगठन एवं आन्दोलन में काम करने वाले अन्य व्यक्तियों में प्रमुख ये थे—परराष्ट्र विभाग के प्रमुख डा० सुलतान, पेरिस-शाखा के अध्यक्ष श्री ऐम० वी० राव, डा० मल्लिक, श्री गनपिल्लई, श्री सुरगुप्ता और डा० करताराम। श्री नैम्बियार पेरिस में अंग्रेजों द्वारा नजरबंद या कैद बताये जाते हैं।

युरोप के आजाद हिन्द संघ की ओर से प्रकाशन और प्रचार का कार्य भी बहुत व्यवस्थित और नियमित ढंग से किया गयाथा।

संघ की ओर से "आजाद हिन्द" नाम का समाचार पत्र भी निकलता था। संघ के आधीन तीन रेडियो स्टेशन थे। उनके नाम थे—आजाद हिन्द रेडियो, नेशनल कांग्रेस रेडियो और आजाद मुस्लिम रेडियो।

नेताजी ने फरवरी १९४३ में युरोप से पूर्वीय एशिया के लिये प्रस्थान किया था। जनवरी १९४३ में भी आपने पूर्वीय एशिया के लिये प्रस्थान करने का यत्न किया था और आप बर्लिन से चल कर रोम पहुँच गये थे। लेकिन, प्रस्थान करते न-करते आपको मालूम हो गया कि आपकी योजना और कार्यक्रम का पता अंग्रेज खुफियाओं को लग गया है। इस लिये तब यात्रा एकाएक स्थगित कर दी गई। दुबारा फरवरी में आप फिर जर्मनी से विदा हुये। इस बार आपकी विदाई, विदाई की तारीख, विदाई का रस्ता, विदाई का कार्यक्रम और विदाई के साधन आदि सब सर्वथा गुप्त रखे गए। बहुत ही थोड़ों, केवल अन्तरंग लोगों को इसका पता दिया गया। अब तक यह सब गुप्त रहस्य बना हुआ है। बाद में लैफ्टिनेण्ट कर्नल ए० हसन और मेजर एन० जी० स्वामी ने, जो नेताजी के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में आपके साथ बर्लिन से टोकियो आये थे, इतना ही पता दिया कि आप सब जर्मन पनडुब्बी से टोकियो पहुंचे थे।

१०.

नेताजी के तूफानी दौरे

आजाद हिन्द संघ के प्रधान पद को स्वीकार करने के साथ ही श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों के हृदय-सम्राट और अनभिषिक्त राजा बन गये। इस गुरुतर दायित्व को निभाने में आपने दिन-रात एक कर दिया। सोते हुये लोगों को आपने झकझोर कर उठा दिया और उनके कानों में आजादी का मन्त्र फूंक दिया। आपके भाषणों का जादू का-सा असर होता था। जहां भी कहीं आप जाते, लोग आपका भाषण सुनकर मन्त्रमुग्ध हो जाते। सभी स्थानों पर आपके लिये एक साथ पहुँचना सम्भव न था, किन्तु सभी स्थानों के लोग आपके दर्शनों और आपके मुख से आपका भाषण सुनने को लालायित थे। आपके पिछले जीवन की विशेष जानकारी न रखने वालों को भी इतना तो मालूम हो ही गया था कि आप दो बार कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट यानी राष्ट्रपति चुने गये थे, सन् १९४१ के जनवरी मास में स्वतन्त्रता दिवस पर हिन्दुस्तान की सर्व-साधनसम्पन्न नौकरशाही की सर्वशक्तिसम्पन्न खुफिया पुलिस की आंखों में धूल झोंक कर कलकत्ता से आप निकल भागे थे, युरोप में रहते हुये आपने स्वदेश की आजादी के लिये महान् आजाद हिन्द संगठन एवं आन्दोलन का सूत्रपात् किया था और अब उसी महान कार्य को सम्पन्न करने के लिये आप युद्ध का भीषण खतरा उठा कर, अपने जीवन को जोखम में डाल कर, युरोप से पूर्वीय एशिया आ पहुंचे हैं। आपके महान् व्यक्तित्व का भी स्पष्ट आभास उनको मिल चुका था। आपका दर्शन करने और आपके श्रीमुख से आपका भाषण सुनने की उनमें उत्सुकता पैदा करने के लिये इतनी ही जानकारी बहुत थी।

१५ जुलाई १९४३ के बाद आपने मलाया का तूफानी दौरा किया

शोनान में —आजाद हिन्द स्मारक, पर बाल-सेना के सैनिक ।

नेताजी—आजाद हिन्द की सीमा में आजाद हिन्द फौजके प्रवेश करने की २१ मार्च १९४४ को घोषणा करते हुये श्री करीम गनी, जनरल कियानी और जनरल चैटर्जी पास में खड़े हैं।

और कोने-को मैंने पहुंचने का आपने यत्न किया। ५ अगस्त को आप बैंकौक गये। वहां जनता ने आपका हार्दिक स्वागत किया। वहां आप लगभग एक सप्ताह रहे। छुलोनक्रोन विश्वविद्यालय के हाल में आपके कई सार्वजनिक भाषण हुये। अगस्त क्रान्ति के 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो!' के महत्वपूर्ण प्रस्ताव के ऐतिहासिक दिवस की ८ तारीख को आप बैंकौक में ही थे। उस दिन भी आपका विराट सभा में सार्वजनिक भाषण हुआ।

बैंकौक के बाद आप बर्मा गये। वहां से इण्डोनेशिया के जावा, सुमात्रा और बोर्नियो आदि स्थानों में गये। जहां भी आप जाते, हिन्दुस्तानी आपको सिरमाथे पर बिठा कर आपका स्वागत करते। सार्वजनिक सभाओं में भीड़ का तो कहना ही क्या था? जनसमूह उमड़ पड़ता था। चारों ओर नर-मुण्ड ही दीख पड़ते थे। लाखों आंखें आप पर लगी रहती थीं। घण्टों आपके भाषण सुनने पर भी लोगों की लालसा पूरी न होती थी। प्रायः आपके भाषण हिन्दुस्तानी में हुआ करते थे। एक-एक शब्द सुनने वालों के हृदय में तीर की तरह जा बैठता था। भाषणों में प्रवाह-ओज-तेज इतना स्वाभाविक होता था कि उनमें बनावट की कहीं छाया तक न रहती थी। अपने भाषणों में आप आम तौर पर हिन्दुस्तान की मुसीबतों का हृदयविदारक शब्दों में वर्णन किया करते और उन सबका एक ही उपाय बताया करते कि हम सबको ऐसे भ्रातृभाव की शृङ्खला में बंध जाना चाहिये, जिसके सामने जाति, सम्प्रदाय और धर्म अथवा वर्ग का भी कोई भेदभाव रहने न पाये। आपके भाषणों का सुनने वालों पर जादू का-सा असर पड़ता और आपकी बातें सुनने वालों के दिल और दिमाग में घर कर लेतीं। वे मन्त्रमुग्ध हो कर रह जाते। उन पर जब वे विचार करते, तब उनसे मिलने वाली प्रेरणा से उनमें नयी आशा और नये जीवन का संचार हो जाता। १९४३ के उन नाजुक दिनों में, इसमें तनिक भी सन्देह और अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों के लिये मसीहा

या अवतार बन कर ही वहां पहुँचे थे।

आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये आपके भाषण और भी अधिक स्फूर्ति एवं प्रेरणा देने वाले होते थे। उनमें उस अनुभव का पुट रहता था, जो आपने यूरोप के देशों का दौरा करके लड़ाई के मैदानों में प्राप्त किया था। फिर, संसार की सब विराट क्रान्तियों के अनुशीलन का उनमें निचोड़ रहता था। रूस, तुर्की, आयर की क्रान्तियों के अलावा १८५७ के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का भी विशद् वर्णन उन भाषणों में रहता था। आपके इस गहरे ऐतिहासिक अध्ययन और युद्ध संचालन की वर्तमान नीति-रीति के व्यापक अनुभव से आपके महान् व्यक्तित्व में चुम्बक का-सा आकर्षण पैदा होगया था। इसी लिये आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने तो यह अनुभव करना शुरू कर दिया कि उनको वह महान् नेता हाथ लग गया है, जो उनको निश्चित रूप से विजय के मार्ग पर ले जा कर खड़ा कर देगा। जिस महान् उद्देश्य के लिये वे सर हथेली पर रख कर मैदान में उतरने की तय्यारी करने में लगे हुये थे, उसकी पूर्ति में उनको तनिक भी सन्देह न रहा। इससे उनके हृदय और भी अधिक आशा और उत्साह से भर गये।

सार्वजनिक भाषणों के अलावा नेताजी ने प्रेस-सम्मेलनों का भी आयोजन करना शुरू किया। इनमें हिन्दुस्तानी, जापानी, चीनी, श्यामी, जर्मन और इटालियन पत्रकार भी उपस्थित रहा करते थे। उनमें संवाद-दाताओं के प्रश्नों का आप इतना स्पष्ट उत्तर तुरन्त दिया करते थे कि सभी पर आपकी विद्वत्ता, अनुभव और हाजिरजबाबी का बहुत अच्छा असर पडता। प्रकाशन, आन्दोलन और प्रचार का महत्व आप खूब समझते थे।

१. दौरों का अद्भुत प्रभाव

नेताजी के दौरों और उनमें दिये गये आपके भाषणों का जो सहज औ स्वाभामिक असर पड़ा, वह बहुत ही अद्भुत और आश्चर्यजनक था। हर स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उनसे प्रभावित हो कर कुछ न-कुछ करने को

तय्यार हो गया। स्वदेश की आजादी के लिये सब सम्भव बलिदान करने को वे सहसा तय्यार हो गये। गरीबों पर उनका और भी अधिक आश्चर्य-जनक एवं अद्भुत प्रभाव पड़ा। मलाया और थाईलैण्ड के मजूरों और ग्वालों, बर्मा के रिक्शा हांकने वालों और अन्य प्रदेशों के भी ऐसे लोगों ने धनियों को मात दे डाली। उनकी जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है। वे पहिले थे, जिन्होंने नेताजी के आदेश पर अपना सर्वस्व उनके चरणों पर न्यौछावर कर दिया था। वे सार्वजनिक सभाओं में इस श्रद्धा-भक्ति के साथ आते कि नेताजी पर सर्वस्व लुटा कर वापिस लौटते। वह दृश्य कितना सुन्दर, आकर्षक और प्रभावोत्पादक होता था, जब कि वे लोग उन सभाओं में अपने जीवन की सारी कमाई या बचत छोटी छोटी पेटियों में रख कर लाते और उनको अपने महान् नेता के चरणों में चढ़ा कर वापिस लौटते। भगवान के मन्दिर में भेंट चढ़ाने के लिये जाने वाले भक्त से कहीं अधिक भक्ति एवं श्रद्धा उनके हृदय में होती थी। उनके श्रद्धा-भक्ति से युक्त इस बलिदान या उत्सर्ग पर नेताजी मुग्ध हो जाते और भावावेश में आपका हृदय भर आता। उनको हृदय से लगा कर आप धनियों के सामने उनका आदर्श उपस्थित कर उनसे उनका अनुकरण करने की अपील करते। मलाया और थाईलैण्ड के ग्वालों में तो उत्साह का इतना अधिक संचार हुआ कि उन्होंने अपना सर्वस्व और पशु आदि भी आजाद हिन्द संघ को सिपुर्द कर अपने को नेताजी के चरणों में सौंप दिया और स्वदेश की आजादी के लिये खड़ी की गई सेना में वे भरती हो गये। आजाद हिन्द आन्दोलन और संगठन को इतना मजबूत बनाने का अधिकतर श्रेय युक्तप्रान्त और पंजाब से आने वाले इन ग्वालों और दक्षिण भारत से आनेवाले इन मजूरों को ही है। थाईलैण्ड में रहने वाले ग्वाले तो प्रायः गोरखपुर जिले के ही थे। लेकिन, धनी और सम्पन्न व्यक्ति भी पीछे न रहे। देर से ही क्यों न हों, जब वे आये, तब उन्होंने भी त्याग और बलिदान करने में कुछ उठा न रखा। वे भी हजारों की संख्या में आये और उन्होंने भी दिल खोल कर रुपये-पैसे

आदि से भरपूर सहायता की।

सार्वजनिक सभाओं में नेताजी को मालाओं से लाद दिया जाता था। कभी कभी नेताजी उन मालाओं को नीलामी पर चढ़ा देते। सदा ही लाखों रुपया इस प्रकार जमा होता।

२. आजाद हिंद फौज नेता जी की कमान में

आम जनता में उत्साह की लहर दौड़ जाने पर नेताजी ने अपने को आजाद हिन्द संगठन का कायाकल्प कर उसको सुसंगठित करने में लगा दिया। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों और जनता के अनुरोध पर नेताजी ने 'सुप्रीम कमाण्डर' की हैसियत से आजाद हिन्द फौज की कमान भी अपने हाथों में ले ली। इस अवसर पर २५ अगस्त १९४३ को आपने फौज के नाम निम्न आशय का विशेष आदेश जारी किया :—

"आजाद हिन्द आन्दोलन और आजाद हिन्द फौज के हित में मैं अपनी फौज की कमान आज अपने हाथों में लेता हूँ। मेरे लिये यह परम गर्व और गौरव की बात है, क्योंकि किसी भी हिन्दुस्तानी के लिये इससे बड़ी इज्जत और क्या हो सकती है कि उसको हिन्दुस्तान की आजादी के लिये खड़ी की गई सेना का सेनापति नियुक्त किया जाय। मुझे जो काम सौंपा गया है, उसके गुरूतर भार को मैं भली प्रकार अनुभव करता हूँ। मैं इस जिम्मेवारी के भार के नीचे दब-सा गया हूँ। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे हिन्दुस्तानियों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के लिये यथेष्ट और आवश्यक शक्ति प्रदान करें। मैं किसी भी अवस्था में, चाहे वह कितनी भी कठोर और विपरीत क्यों न हो, उससे विमुख न होऊं।

"मैं अपने को अपने ३८ करोड़ देशवासियों का सेवक मानता हूँ, भले ही वे भिन्न भिन्न धर्मों के मानने वाले क्यों न हों। मैं इस रूप में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये दृढ़ निश्चय हूं कि मेरे हाथों में इन ३८ करोड़ के हित सर्वथा सुरक्षित रहें और हर हिन्दुस्तानी का मुझ में व्यक्तिगत विश्वास बना रहे। निष्कलंक राष्ट्रीयता, विशुद्ध न्याय और

सर्वथा निष्पक्ष व्यवहार के आधार पर ही हिन्दुस्तान की आजादी के लिये जूझने वाली फौज खड़ी की जा सकती है।

"मातृभूमि की आजादी प्राप्त करने, ३८ करोड़ हिन्दुस्तानियों की सद्भावना पर निर्भर आजाद हिन्द की सरकार की स्थापना करने और स्वदेश की आजादी की निरन्तर रक्षा करने वाली स्थायी सेना के संगठन करने में आजाद हिन्द फौज को बहुत अधिक हाथ बटाना है। इसी लिये हमें अपने को ऐसी फौज के ढांचे में ढालना है, जिसका एकमात्र लक्ष्य होगा हिन्दुस्तानियों की आजादी और एकमात्र इच्छा होगी स्वदेश की आजादी के लिये कुछ कर गुजरने या मर मिटने की। जब हम खड़े हों, तब आजाद हिन्द फौज पत्थर की दीवार बन जाय और जब हम कूच करें, तब हम पत्थर कूटने वाली मशीन बन जांय।

"हमारा काम इतना आसान नहीं है। युद्ध बहुत लम्बा और बहुत भयानक हो सकता है। लेकिन, न्याय और अपने ध्येय की पवित्रता में मेरा दृढ़ विश्वास है। हमारे ३८ करोड़ देशवासी, जो संसार की आबादी का एक-पांचवां हिस्सा हैं, आजाद होने का पूरा अधिकार रखते हैं और वे अब उसकी कीमत अदा करने को तैय्यार हैं। इस लिये अब संसार में ऐसी कोई भी ताकत नहीं है, जो हम को हमारे जन्मसिद्ध अधिकार आजादी से कुछ दिन के लिये भी वंचित रख सके।

"साथियो और अफसरो! तुम्हारी निःस्वार्थ साधना और निष्कलंक देशभक्ति के बल पर निश्चय ही आजाद हिन्द फौज स्वदेश को आजाद करने में सफल होगी। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि अन्त में हम ही विजयी होंगे। हमारी विजय-यात्रा का श्रीगणेश कभी का हो चुका है।

"अपने मुख से "चलो दिल्ली" के नारे का जयघोष करते हुये हम अपनी कूच और लड़ाई तब तक जारी रखेंगे, जब तक हमारा राष्ट्रीय झण्डा नई दिल्ली में वायसराय भवन पर फहराने न लग जायगा और

हमारी आजाद हिन्द फौज की दिल्ली के पुराने ऐतिहासिक लाल किले में विजय परेड न होगी।"

सिपहसालार यानी सुप्रीम कमाण्डर की हैसियत से अपने हस्ताक्षरों से आजाद हिन्द फौज के सदर मुकाम से २५ अगस्त १९४३ को नेताजी ने यह आदेश जारी किया था।

नेताजी के सिपहसालार की कमान अपने हाथों में लेते ही फौज में नया जोश पैदा हो गया। सभी कैम्पों से युद्ध-बंदी धड़ाधड़ फौज में भरती होने के लिये आने लगे। नागरिकों में भी फौज में भरती होने के लिये अपार उत्साह पैदा हो गया। १९४२ में भरती के लिये की गई अपील पर भी काफी संख्या में लोग सेना में भरती हुये थे। लेकिन, जापानियों के उपेक्षापूर्ण रुख और उन द्वारा पैदा की गई बाधाओं के कारण उस समय वह योजना बीच में ही रह गई। अब नेताजी के आने पर वह योजना फिर हाथ में ली गई और मलाया में भिन्न-भिन्न कैम्पों में लगभग सात हजार रंगरूटों को सैनिक शिक्षा देने का काम शुरू किया गया। नागरिकों ने दबादब सेना में भरती होना शुरू किया। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि उनको संभालना और सैनिक शिक्षा देने का प्रबन्ध करना मुश्किल हो गया। मलाया के बाद थाईलैण्ड और बर्मा में भी अनेक कैम्प खोले गये। फिर भी रंगरूटों को संभालना और उनके लिये समुचित व्यवस्था करना संभव न हुआ। इन रंगरूटों में अधिक संख्या दक्षिण भारत से आये हुये मजूरों, युक्तप्रान्त तथा पंजाब से आये हुये ग्वालों और पंजाब से भरती किये गये पुलिस के सिपाहियों की थी। भरती के समय हर नागरिक को परिशिष्ट १ में दिया गया प्रवेश-पत्र और परिशिष्ट २ में दिया गया प्रतिज्ञा पत्र भरना होता था।

कुछ ही महीनों में आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की संख्या ३८ हजार पर पहुंच गई। निसन्देह सबको शस्त्रास्त्र से सुसज्जित नहीं किया जा सका। शस्त्र, गोलाबारूद और कपड़ों की भी बेहद कमी थी। केवल एक डिविजन को पूरी तरह तैय्यार किया जा सका था। इसमें अन्य

टुकड़ियों के अलावा नयी खड़ी की गई सुभाष ब्रिगेड भी शामिल थी। उसमें शामिल ब्रिगेड़ निम्न प्रकार थीं :—

(१) **सुभाष ब्रिगेड**—कमाण्डर मेजर जनरल शाहनवाज खां।

(२) **गांधी ब्रिगेड**—कमांडर कर्नल आई० जे० कियानी।

(३) **आजाद ब्रिगेड**—कमाण्डर कर्नल गुलजारासिंह।

(४) **नेहरू ब्रिगेड**—कमांडर कर्नल जी० ऐस० ढिल्लन।

'स्पेशल सर्विस ग्रुप' का नया नाम नं० १ बहादुर ग्रुप रखा गया और उसके कमाण्डर कर्नल बुरहानुद्दीन बनाये गये। नं० २ बहादुर ग्रुप के कमाण्डर मेजर फतेखां नियुक्त किये गये। इन बहादुर ग्रुपों का काम शत्रु प्रदेश में गश्त लगाना, उनकी योजनाओं का पता लगा कर उनको विफल बनाना, उनके भेद मालूम करना, उनकी सेना में प्रचार करना और उनकी गति-विधि का पता लगाना था।

इण्टेलिजेंस ग्रुप के कमाण्डर कर्नल ऐस. ए. मल्लिक बनाये गये। इसका काम भी प्रायः वही था, जो बहादुर ग्रुप का था। लेकिन, इस ग्रुप के सैनिक शत्रुसेना की पंक्ति में दूर तक जाकर उसके भेद मालूम किया करते थे।

कुछ समय बाद नं० २ और नं० ३ डिवीजन भी संगठित किये गये। नं० १ के आसाम के मोर्चे पर कूच करने पर नं० २ को रंगून भेजा गया था और नं० ३ को मलाया में रखा गया था। इसमें अधिकतर सैनिक नागरिकों में में भरती हुये थे।

सिंगापुर और रंगून के पास कोम्बे में अफसरों के शिक्षण के लिये दो स्कूल खोले गये। इन स्कूलों में सैंकड़ों को अफसर के काम की शिक्षा दी गई। उन्होंने समय आने पर बर्मा और हिन्दुस्तान की सीमा पर लड़ी गई लड़ाई में बहुत बहादुरी का परिचय दिया और बहुत ही साहसपूर्ण काम किये।

३. आजाद हिन्द संघ

आजाद हिन्द फौज के पीछे जो संगठन था, उसका नाम था आजाद

हिन्द संघ यानी इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग। इसको भी नये सिरे से संगठित किया गया। मलाया, थाईलैण्ड, बर्मा, अण्डेमन्स, जावा, सुमात्रा, सेबीलेस, बोर्नियो, फिलिपाइन्स, चीन और जापान में सब स्थानों में थोड़े ही समय में संघ की शाखाओं का जाल-सा बिछ गया। सिंगापुर में उसका सदर मुकाम यानी केन्द्रीय कार्यालय रखा गया। जनवरी १६४५ में वह रंगून ले जाया गया। अलबत्ता शाखा कार्यालय के रूप में केन्द्रीय कार्यालय का कुछ हिस्सा तब भी सिंगापुर में बना रहा।

इन सब देशों में अलग-अलग प्रादेशिक कमेटियां कायम थीं। उनका सीधा सम्बन्ध केन्द्रीय कार्यालय के साथ था। अपने नीचे की शाखाओं पर प्रादेशिक कमेटी का नियन्त्रण था। केन्द्रीय कार्यालय के नीचे पन्द्रह विभाग थे, जिनमें मुख्य ये थे:—(१) रसद, (२) अर्थ, (३) जांच, (४) प्रकाशन तथा प्रचार, (५) महिला, (६) सैनिक भरती और शिक्षण, (७) शाखायें, (८) सार्वजनिक सेवा और (६) शिक्षा।

प्रादेशिक कमेटियों के नीचे भी ये सब विभाग थे। आजाद हिन्द आन्दोलन का आधार यही संगठन था। अपने-अपने इलाके में सारा काम प्रादेशिक कमेटियां करती थीं। केन्द्रीय कार्यालय द्वारा नियुक्त फण्ड कमेटियां और रसद विभाग के लिये सामान खरीदने के लिये नियुक्त कमीशन उनके इलाके में उन्हीं की मार्फत काम करते थे।

४. मलाया प्रादेशिक कमेटी

मलाया में आजाद हिन्द संघ की प्रादेशिक कमेटी और उसके अन्तर्गत शाखाओं का फिर से नया संगठन करने में अधिक समय नहीं लगा। मलाया प्रादेशिक कमेटी के अध्यक्ष श्री जे. ए. थिवि नियुक्त किये गये। कमेटी के अन्य प्रमुख सदस्य निम्न लिखित थे:—पेनांग से डाक्टर के. पी. के. मैनन; सिंगापुर से श्री चिदम्बरम तथा श्री ए. येलप्पा; कालालम्पूर से ब्रह्मचारी कैलाशम् तथा डा. लक्ष्मी स्वामीनाथम्। सारे मलाया में ७० शाखायें कायम होकर दो लाख सदस्य बनाये गये।

भरती—नेताजी के शुभागमन के बाद मलाया की कमेटी ने सबसे अधिक जोर सैनिक भरती पर दिया। यही उसका पहला और प्रमुख काम था। मलाया में इस भरती के लिये कई केन्द्र कायम किये गये और सैनिक शिक्षण के लिये भी कई कैम्प खोले गये। इनमें कुछ के नाम ये थेः—पेनाग का स्वराज्य इन्स्ट्टीट्यूट, सिंगापुर का आजाद स्कूल और कालालम्पूर का भारत यूथ ट्रेनिंग कैम्प। इसके अलावा ईपोह, सेरेम्बान और सेलातार के कैम्प भी ट्रेनिंग का अच्छा काम कर रहे थे। मलाया से २० हजार से कहीं अधिक मजूरों और ग्वालों ने अपने को आजाद हिन्द फौज के लिये प्रस्तुत किया था। लेकिन, ७००० से अधिक के लिये कैम्प ही न थे, जहां उनको भरती किया जाता और सैनिक शिक्षा दी जाती।

अर्थ व्यवस्था—केवल हिन्दुस्तानियों से ही इस आन्दोलन के लिये पैसा लिया जाता था। अर्थ विभाग के द्वारा जमा किये जाने वाले चन्दे के लिये नेताजी की यात्रा में भी लाखों डालर इकट्ठे किये गये थे। अनेकों हिन्दुस्तानियों ने सच्चे अर्थों में अपना तन, मन, धन-सर्वस्व आन्दोलन के लिये नेताजी के चरणों में भेंट चढ़ा दिया था। गरीब लोगों ने तो अपना सब कुछ आजाद हिन्द फौज के अर्पण कर दिया था। जनवरी १९४५ के दो ही सप्ताह में मलाया में ४० लाख डालर जमा हुआ था। मलाया में इकट्ठी हुई रकम करोड़ों डालर तक पहुँच गई।

प्रचार और आन्दोलन—मलाया कमेटी का यह विभाग केन्द्रीय कार्यालय के साथ ही मिला दिया गया था। केन्द्रीय कार्यालय के रंगून ले जाये जाने के बाद भी यह विभाग सिंगापुर के कार्यालय के साथ ही रखा गया था। सब प्रादेशिक कमेटियों का काम प्रायः एक ही रीति से सम्मिलित रूप में होता था। सी ऐस. ए. अटयर इस विभाग के मन्त्री थे। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना होने पर उनको इस विभाग का

मिनिस्टर बना दिया गया था। इस विभाग द्वारा दो रेडियो प्रोग्राम हर रोज होते थे। एक का नाम 'आजाद हिन्द संघ सदर मुकाम रेडियो' था, जिसका नाम आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के बाद 'आजाद हिंद सरकार सदर मुकाम रेडियो' रखा गया था और दूसरे का नाम 'आजाद हिन्द फौज रेडियो' था।

इस विभाग के प्रेस-उपविभाग की ओर से कई दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्र निकलते थे। सरकारी गजट और अन्य सरकारी प्रकाशन भी इसी विभाग की ओर से प्रकाशित किये जाते थे। श्री ऐम. शिवराम इसके डाइरेक्टर थे। दैनिक पत्रों के नाम थे—"आजाद हिन्द" (अंग्रेजी), "आजाद हिन्द" (रोमन हिन्दुस्तानी), "स्वतन्त्र भारतम्" (तामिल और मलयालम) और "पूर्ण स्वराज्य" (तामिल)। साप्ताहिक पत्रों में "आवाज ए हिन्द" सबसे अधिक लोकप्रिय था। यह पत्र प्रायः सभी हिन्दुस्तानी भाषाओं में निकलता था।

५. श्री ऐस. ए. अय्यर

इसी प्रसंग में इस महत्वपूर्ण विभाग का संचालन करने वाले श्री ऐस. ए. अय्यर का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। आपने पहले तो इस विभाग के अध्यक्ष और बाद में आजाद हिन्द सरकार में मिनिस्टर होकर इसका काम बहुत तत्परता के साथ चलाया था। आपने १६१८ में बम्बई में एसोसियेटेड प्रेस में सहायक सम्पादक और सहायक रिपोर्टर के रूप में अपने पत्रकार जीवन का प्रारम्भ किया था। १६२८ में आप ए. पी. आई. और रायटर के कलकत्ता आफिस में सम्पादक नियुक्त किये गये। नवम्बर १६३२ से अप्रैल १६३३ तक आप लन्दन में रायटर के दफ्तर में सम्पादकीय विभाग में रहे। १६३६ से १६३६ तक आप रंगून में ए. पी. आई. के आफिस के मैनेजर रहे। महायुद्ध के शुरू होने पर बैंकोक में रायटर के विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। पूर्वीय एशिया में युद्ध

शुरू होने और थाईलैण्ड में जापान का प्रभुत्व कायम होने तक आप उसी पद पर रहे। आजाद हिन्द संघ का बैंकौक में सदर मुकाम कायम होने पर आप उसमें आगये और आपने युद्ध परिषद् के सदस्य श्री के. पी. के. मेनन के साथ रेडियो कार्यक्रम का काम संभाल लिया। १९४३ में सदर मुकाम के सिंगापुर लाये जाने पर आप भी वहां आ गये और इस विभाग के मन्त्री नियत किये गये। अक्टूबर १९४३ में नेताजी द्वारा आजाद हिन्द सरकार के कायम किये जाने पर आप उसमें प्रकाशन विभाग के मिनिस्टर नियुक्त किये गये। जनवरी १९४४ में आप भी आजाद हिन्द संघ और सरकार के सदर मुकाम के साथ बर्मा आगये। यहां अपने विभाग के मिनिस्टर के अलावा आप आजाद हिन्द सरकार के सेक्रेटरी भी नियुत कर दिये गये। बाद में आप युद्ध परिषद् के सदस्य भी नियुक्त किये गये। अप्रैल १९४५ में नेताजी और मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों के साथ आप भी रंगून से बैंकौक और सिंगापुर चले आये। १६ अगस्त १९४५ को आप सिंगापुर से नेताजी के साथ हवाई जहाज पर बैंकौक और सैगोन होते हुये जापान जाने को सवार हुये। सैगोन से नेताजी एक हवाई जहाज से और आप दूसरे से रवाना हुये। २२ अगस्त को आप जापान पहुँच गये और तीन दिन बाद आपको नेताजी के हवाई जहाज के साथ हुई दुर्घटना का पता चला। १९ नवम्बर १९४५ को जापान से हवाई जहाज से चलकर आप २१ नवम्बर को हिन्दुस्तान आ पहुंचे। दो दिन तक आपको लाल किले में नजरबन्द रखने के बाद बिना शर्त रिहा कर दिया गया। आपने बचाव के गवाह के तौर पर लाल किले में सर्वश्री शाह नवाज, सहगल और ढिल्लन पर चलाये गये ऐतिहासिक मुकद्दमे में महत्वपूर्ण गवाही दी। दिल्ली में आपने आजाद हिन्द कमेटी का काम संभाल कर उसका बड़ी योग्यता और तत्परता के साथ संचालन किया।

सार्वजनिक सेवा और सहायता—राजनीतिक कार्य के अलावा

आजाद हिन्द संघ की ओर से सार्वजनिक सेवा और सहायता का काम भी किया गया। मलाया प्रादेशिक कमेटी ने इस काम पर बहुत रुपया खर्च किया और युद्ध के भीषण संकट में हिन्दुस्तानियों की सराहनीय सेवा की। मजूर और गरीब इस संकट के विशेषरूप से शिकार हुये थे। अनेक स्थानीय शाखाओं ने डाक्टरों, दवादारू तथा पथ्य आदि की सब प्रकार की सहायता एवं सेवा का कार्य संगठित किया। कुआलालम्पूर में इस काम के लिये सबसे बड़ा केन्द्र था। वहां एक समय हर रोज एक हजार स्त्री-पुरुषों और बच्चों को सहायता दी जाती थी और तब मासिक खर्च ७५ हजार डालर से अधिक ही होता था।

हिन्दुस्तानियों को जमीनें दिलाकर आबाद करने का काम भी मलाया की प्रादेशिक कमेटी ने अपने हाथ में लिया। २००० एकड़ से अधिक जंगली वीरान जमीन साफ की गई और आबाद होने वाले हिन्दुस्तानियों को खेती के लिये दी गई।

हिन्दुस्तानी बच्चों की शिक्षा का काम भी संघ की ओर से किया गया। राष्ट्रीय विद्यालयों की इसके लिये स्थापना की गई और उनका संघ की ओर से सचालन किया गया। इन सब विद्यालयों में रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी पढ़ाई जाने लगी। युद्ध के तीन वर्षों में शिक्षा के सम्बन्ध में इतना अधिक काम हुआ कि उससे पहले कुल मिलाकर भी इतना काम न हुआ था।

६. यमराज की घाटी

हमारे हजारों देशवासियों को थाई-वर्मा-रेलवे पर जो मुसीबतें और बेइज्जती झेलनी पड़ी है, उसका यहां उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। जापानी हकूमत के दिनों में थाई-वर्मा का यह सीमा प्रदेश 'यमराज की घाटी' ही बन गया था। थाईलैण्ड और मलाया पर जापान का कब्जा होते ही जापानियों ने थाईलैण्ड और बर्मा को मिलाने के लिये एक रेलवे लाइन बनाने का निश्चय किया। उसके लिये

उनको मेहनती और होशियार मजूर चाहिये थे। थाईलैण्ड और मलाया के मजूरों से उनका काम नहीं चल सकता था। वे बहुत ही आलसी थे। चीनी मजूर जरूर बहुत मेहनती थे। लेकिन, उन पर जापानी भरोसा नहीं कर सकते थे। केवल हिन्दुस्तानियों से ही वह काम लिया जा सकता था और सिवा मलाया के वे कहीं और से इतनी अधिक संख्या में मिल नहीं सकते थे। इसलिये उनको मलाया में भरती करने की उन्होंने कोशिश की। कुछ काली भेड़ें भी वहां हिन्दुस्तानियों में अवश्य थीं। सघ में भी वे अच्छी स्थिति रखते थे। जापानियों की कृपा प्राप्त करने के लिये उन्होंने मजूरों की भरती करने के लिये उनकी सहायता की। उनको धोखा यह दिया गया कि उनको स्वदेश की आजादी की लड़ाई लड़ने के लिये भरती किया जा रहा है। वे गरीब बिचारे दक्षिण हिन्दुस्तान के निवासी थे। नेताजी के शुभागन से पहले की यह घटना है। आपके आने के बाद इस शरारत को रोका गया। लेकिन, पूरी तरह न रोका जा सका। जो पहले ही भरती हो चुके थे, उनको निर्दय, क्रूर और कठोर ठेकेदारों के हाथों से छुटकारा दिलाना असम्भव ही था। इसमें सन्देह नहीं कि मलाया से वर्मा जाते हुये आजाद हिंद फौज के भी वह रेलवे काम आने वाली थी, किन्तु हमारे एक लाख देशवासी वहां जिन परिस्थितियों में दिन काट रहे थे, वे केवल भीषण ही नहीं, किन्तु नारकीय भी थीं। उनमें से ८५ हजार को तो तिल तिल करके दारुण मौत का शिकार होना पड़ा था। जो बच गये, वे जीवनभर के लिये पंगु बन गये। कम खुराक, मार-पीट, जंगली बीमारियों आदि का और परिणाम ही क्या हो सकता था!

७. थाईलैण्ड प्रादेशिक कमेटी

नेताजी के पूर्वीय एशिया में आने के बाद थाईलैंड प्रादेशिक कमेटी का भी पुनर्गठन सुदृढ़ आधार पर किया गया। श्री आनन्दमोहन सहाय इसके अध्यक्ष चुने गये। नेताजी की अपील पर थाईलैण्ड के हिन्दुस्तानियों ने अपने को सर्वतोभावेन आन्दोलन के समर्पण कर दिया। जैसे ही

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की गई, वैसे ही सरदार ईशरसिंह प्रादेशिक कमेटी के अध्यक्ष नियुक्त किये गये।

८. सरदार ईशरसिंह

थाईलैण्ड के अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रमुख व्यक्ति सरदार ईशरसिंह पंजाब के गुजरांवाला जिले के फिलोक गांव के रहने वाले हैं। स्वदेश के लिये बलिदान करना आपके वंश की अनुकरणीय परम्परा ही बन गई थी। १९१४-१८ के विश्व युद्ध में आपके चाचा सरदार बुधसिंह ने, जो उन दिनों में बैंकौक में ही रहते थे, सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल एम. ए. और उनके साथियों को हिन्दुस्तान से भागने में बड़ा सहायता पहुंचाई थी। युद्ध के समाप्त होने पर आप गिरफ्तार किये गये, बुरी तरह अपमानित किये गये और आजन्म कैद की सजा देकर कालेपानी भेज दिये गये। वहां ही इस देशभक्त की कठोर दुर्व्यवहार के कारण मत्यु हो गई।

सरदार ईशरसिंह विद्यार्थी-अवस्था से ही राजनीति में भाग ले रहे थे। हिन्दुस्तान में आप राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के कुछ अधिवेशनों में भी सम्मिलित हुये थे। पूर्वीय एशिया के युद्ध से पहिले आप बैंकौक में एक प्रमुख हिन्दुस्तानी व्यापारी फर्म के मैनेजर थे। इण्डियन नेशनल कौंसिल की स्थापना होने पर आपने उसको सुदृढ़ बनाने के लिये श्री रघुनाथ शास्त्री आदि के यत्नों में पूरा हाथ बटाया। बैंकौक सम्मेलन में आप इसी प्रदेश से प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुये थे और वहां आपने अच्छा प्रभाव पैदा किया था। आजाद हिन्द संघ की थाईलैण्ड में प्रादेशिक कमेटी के कायम होने पर आप उसके सार्वजनिक सेवा तथा सहायता विभाग के मन्त्री नियुक्त किये गये थे। नेताजी के पधारने से पहिले थाईलैण्ड के हिन्दुस्तानियों में भी निराशा छा रही थी। उस समय जनता की नैतिकता को बनाये रखने का सारा श्रेय आपको और शास्त्रीजी को है। नेताजी के पधारने पर कमेटी का पुनर्गठन किये जाने पर भी आप

सार्वजनिक सहायता तथा सेवा-विभाग के मन्त्री रहे और आपने दुगने उत्साह के साथ काम शुरू किया। जब आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा की गई, तब आप उसके सलाहकार नियुक्त किये गये। बाद में आप श्री सहाय के स्थान में प्रादेशिक कमेटी के अध्यक्ष चुने गये। आपने अपने नये कर्तव्य का पालन बहुत सफलता के साथ सराहनीय ढंग से किया। चौदह सदस्यों को आपने अपनी कार्यसमिति अथवा मन्त्रिमंडल नियुक्त किया। पण्डित रघुनाथ शास्त्री सलाहकार और बाद में अर्थ विभाग के मन्त्री, डा. पी. एन. शर्मा—प्रकाशन, प्रेस तथा प्रचार विभाग के मंत्री, श्री बी. ए. कपासी—रसद विभाग के मन्त्री, श्री हरबंसलाल—प्रधान मन्त्री, मौलवी अली अकबर—संयुक्त मन्त्री, मौलवी अब्दुल मुकद्दस—शाखा-विभाग के मन्त्री और कर्नल जी. आर. नागर—रंगरूट भरती तथा सैनिक शिक्षण विभाग के मन्त्री थे। बाद में आपके और थाईलैण्ड की प्रादेशिक कमेटी के कार्य तथा सेवाओं का सम्मान करने के लिये आपको आजाद हिन्द सरकार के मन्त्रिमण्डल में ले लिया गया।

संगठन—नेताजी की पुकार पर इतने उत्साह से काम हुआ कि थाईलैण्ड प्रादेशिक कमेटी के नीचे २८ स्थानीय शाखायें कायम की गईं और सारे प्रदेश में नियमित रूप से संगठित कार्य होने लगा।

अर्थ-व्यवस्था—ग्वालों से लेकर श्रीमन्तों तक ने आजाद हिन्द फण्ड में दिल खोलकर सहायता दी। थाईलैण्ड में रहने वाला शायद ही कोई हिन्दुस्तानी बचा होगा, जिसने इसमें कुछ न-कुछ न दिया होगा। ऐसे ग्वाले और चौकीदार बहुत अधिक थे, जिन्होंने अपना खून-पसीना एक करके की गई जीवन की सारी कमाई इस फण्ड में दे दी थी। डेढ़ करोड़ से भी अधिक निकाल्स (लगभग ५० लाख रुपये) अर्थ विभाग ने जमा किये थे।

रसद—युद्ध-काल में केवल थाईलैण्ड ही ऐसा प्रदेश था, जहां से अन्य प्रदेशों से अधिक युद्ध-सामग्री प्राप्त हो सकती थी। इससे यहां की प्रादेशिक कमेटी ने इस बारे में खूब काम किय। कपड़े, दवा-दारू, जूते,

अनाज आदि यहां से बर्मा की ओर इतनी अधिक मात्रा में भेजा गया कि युद्ध के तीन वर्षों में इस सामान की थाइलैण्ड से वर्मा की ओर सतत धारा ही बहने लग गई। प्रादेशिक कमेटी की ओर से थाईलैण्ड में जूते की फैक्टरी के अलावा दूध जमाने (कण्डैंस करने) की भी फैक्टरी कायम की गई।

भरती और शिक्षण—मलाया और बर्मा की अपेक्षा थाईलैण्ड में हिन्दुस्तानियों की संख्या बहुत कम थी, फिर भी यहां से आजाद हिन्द फौज में स्वयंसैनिक बहुत अधिक संख्या में भरती हुए। एक हजार से अधिक ने तो अपने को सैनिक सेवा के लिये प्रस्तुत किया। इसलिये बैंकौक से करीब पचास मील की दूरी पर छौलबूरी में एक शिक्षण केन्द्र खोला गया। इसमें पन्द्रह सौ रंगरूटों को सैनिक शिक्षा के लिये भरती किया जा सकता था। हिन्द चीन और मलाया से भी रंगरूट इस कैम्प में आकर सैनिक शिक्षा लेते थे। मेजर गनेशीलाल ने इस कैम्प में युवकों को सैनिक शिक्षा देकर उनको सुयोग्य सैनिक बनाने का जो कार्य किया, उसके लिये उनकी निश्चय ही सराहना की जानी चाहिए।

प्रचार और आन्दोलन—इस विभाग का कार्य इतने सुन्दर ढंग से संगठित किया गया था कि उसकी ओर से रेडियो, समाचार पत्रों और प्रदर्शनों द्वारा संगठित रूप से नियमित प्रचार होता था। आजाद हिन्द रेडियो पर प्रति दिन डेढ़ घंटे का कार्यक्रम होता था। इसमें समाचार, उसपर टिप्पणी, दैनिक वार्ता, नाटक, संगीत आदि का समावेश था। पहिले साप्ताहिक रूप में और बाद में दैनिक रूप में "आजाद हिंद" नाम का प्रादेशिक कमेटी का मुख्य पत्र इसी विभाग की ओर से निकलता था। इसी की ओर से कई पुस्तिकायें भी निकाली गई थीं, जिनमें "पावर्टी एमिडस्ट प्लैण्टी," "नेताजी स्पीक्स" और "इण्डिया फाइट्स आन" मुख्य थीं। इस संगठित और व्यवस्थित कार्य का सारा श्रेय डाक्टर शर्मा और श्री कमरुद्दीन हकीमजी को है। डाक्टर शर्मा रेडियो पर अपने भाषणों और समाचार पत्रों में अपने लेखों में हिन्दुस्तान की समस्याओं और

आज़ादी के लिये की गई हिन्दुस्तानियों की लड़ाई की विशद चर्चा किया करते थे। आजाद हिन्द सरकार की स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करते हुए आपने जापानियों के हस्तक्षेप को कभी भी सहन नहीं किया।

सार्वजनिक सेवा और सहायता—इस विभाग की ओर से बैंकौक में पहले दर्जे का एक अस्पताल खोला गया था। यहां दवाइयां और डाक्टरी सहायता मुफ्त दी जाती थी। १९४४ में यह अस्पताल मित्रराष्ट्रों के हवाई-आक्रमण का शिकार होगया। उन निराश्रित और अपाहज हिन्दुस्तानियों को भोजन तथा वस्त्र आदि से सहायता की गई, जिनको जापानी थाई-बर्मा-रेलवे बनाने के लिये मलाया से भरती करके लाये थे और जो यमराज की उस घाटी से किसी प्रकार बचकर आगये थे। हिन्दुस्तानी बच्चों की शिक्षा का काम भी इसी विभाग की ओर से किया गया था। राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना करके मलाया के ढंग पर शिक्षा की व्यवस्था की गई थी।

८. बर्मा की प्रादेशिक कमेटी

नेताजी के शुभागमन के कुछ ही सप्ताह बाद बर्मा की प्रादेशिक कमेटी का भी कायाकल्प करके नये ढंग पर पुनर्गठन किया गया। जापानियों ने रुष्ट होकर प्रादेशिक कमेटी के पहिले प्रधान श्री बी. प्रसाद को बर्मा से निर्वासित कर दिया था। उनके स्थान में श्री करीम गनी अध्यक्ष चुने गये थे। दिसम्बर १९४३ में केन्द्रीय संगठन का सदर मुकाम रंगून में आने पर उसी की अधीनता में प्रादेशिक कमेटी का भी काम होने लगा। सब शाखा कमेटियों के लिये अलग विभाग कायम करके श्री करीम गनी उसके मन्त्री नियुक्त किये गये। सर्वश्री ए. महबूब, एम. बशीर, एम. बाल, जोशी, के. पिल्लई और परमानन्द ने भी इस प्रादेशिक कमेटी के काम में विशेष उत्साह से भाग लिया।

बर्मा में सौ स्थानीय शाखायें कायम की गईं। उत्तरी बर्मा की प्रादेशिक कमेटी अलग कायम की गई और उसका अलग कार्यालय माण्डले

में कायम किया गया। श्री गोपालसिंह उसके प्रधान मन्त्री नियुक्त किये गये, जो कि बहुत उत्साही, मेहनती और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। डाल्टा प्रादेशिक कमेटी अलग कायम की गई और अकयाब में उसका सदर मुकाम रखा गया। श्री सुलतान अहमद वहां के नेता थे।

अर्थ व्यवस्था—नेताजी की अपील का बर्मा पर जादू का-सा असर पड़ा। बर्मा से ८ करोड़ से अधिक रुपया जमा हुआ। ऐसे लोग भी कुछ कम न थे, जिन्होंने अपना तन, मन, धन सर्वस्व आजाद हिन्द संघ अथवा आजाद हिन्द सरकार को भेंट कर दिया था। इनमें श्री ए. हबीब और श्रीमती बेताई के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी लिये इन दोनों को सेवक-ए-हिन्द पदक से सम्मानित किया गया था।

६. श्री ए. हबीब

श्री ए. हबीब ने अपने जीवन का निर्माण स्वयं ही किया था। आप बर्मा में एक छोटी-सी दूकान पर साधारण-सी वेतन पर सहायक रूप में आये थे। भोजन और निवास का प्रबन्ध जरूर मुफ्त था। कुछ समय बाद आपने सुगंधित तेल आदि का अपना काम शुरू किया। किस्मत ने साथ दिया और आपका काम खूब चल निकला। लाखों का काम होने लगा। नेताजी के आने तक आप अपने कारबार में ही मस्त रहते थे। कुछ थोड़ा बहुत चन्दा आजाद हिन्द संघ के लिये जरूर दे दिया करते थे। नेताजीके भाषणों का आपपर जादू का-सा असर हुआ। नेताजी की अपील पर आप दो-दो लाख और तीन-तीन लाख का दान देने लगे। अन्त में अपना सब कुछ आन्दोलन की भेंट करके आपने अपने को भी नेताजी को सौंप दिया। कुल मिलाकर आपने एक करोड़ तीन लाख रुपया आजाद हिन्द फण्ड में दिया। नेताजी आपके त्याग और बलिदान का उल्लेख अपने भाषणों में प्रायः किया करते और पूर्वीय एशिया के धनिकों से आपका अनुकरण करने की अपील किया करते। 'सेवक-ए-हिन्द' पदक से आपको सम्मानित किया गया और बादमें रसद बोर्डका अध्यक्ष बना दिया गया।

१९४४ के अन्त में नेताजी फण्ड कमेटी कायम की गई। लोगों ने खुले हाथों से इसमें चन्दा दिया और इस वाक्य को अपना आदर्श बना लिया कि "करो सब न्योछावर बनो सब फकीर।"

भरती और सैनिक शिक्षा—बर्मा से छः हजार हिन्दुस्तानियों ने अपने को आजाद हिन्द फौज में भरती करने के लिए प्रस्तुत किया ओ. टी. ऐम. के अलावा रंगून के पास कोम्बे में भी ट्रेनिंग कैम्प खोला गया। बर्मा में ऐसे चार कैम्प थे, जिनमें तीन हजार को सैनिक शिक्षा दी जा सकती थी। 'स्वराज्य यंगमैन ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट' भी एक था, जिसमें विशेष प्रकार की शिक्षा दी जाती थी।

रसद—जियावाड़ी शाखा संघ के प्रधान श्री परमानन्द की अध्यक्षता में एक रसद बोर्ड कायम किया गया। श्री ए० हबीब इसके मन्त्री थे। श्री परमानन्द के रसद मन्त्री बनाये जाने पर श्री हबीब इसके अध्यक्ष बना दिये गये थे।

प्रचार और आन्दोलन आजाद हिन्द का सदर मुकाम यहां आने पर बर्मा कमेटी का यह विभाग उसी में मिला दिया गया था। रेडियो प्रोग्राम को फिर से संगठित किया गया। रंगून ब्राडकास्टिंग स्टेशन से आजाद हिन्द सदर मुकाम रेडियो और आजाद हिन्द सरकार सदर मुकाम रेडियो काम करने लगे। अंग्रेजी, रोमन हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी, तामिल और तेलगू में "आजाद हिन्द" दैनिक पत्र निकाला गया। अनेक पुस्तकें और पुस्तिकायें भी प्रकाशित की गईं।

सार्वजनिक सेवा—के लिये कई चिकित्सालय खोले गये। कई राष्ट्रीय विद्यालय भी खोले गये और बर्मा की प्रादेशिक कमेटी की ओर से चलाये गये।

१. अन्य प्रादेशिक कमेटियां

पूर्वीय एशिया के अन्य प्रदेशों में भी इसी प्रकार की प्रादेशिक कमेटियां संगठित की गई थीं। इन सब ने भी आजाद हिन्द आन्दोलन में

रुपये-पैसे, सामान और रंगरूटों की भरती के रूप में यथासम्भव अधिक से अधिक सहायता की थी। सुमात्रा, जावा और बोर्नियो की कमेटियों का सम्बन्ध अन्त तक सिंगापुर के केन्द्रीय दफ्तर के साथ ही रहा। जावा में बटाविया ब्राडकास्टिंग स्टेशन से आजाद हिन्द रेडियो का कार्य-क्रम नियमित रूप से शुरू किया गया था। अकेले बोर्नियो से २०० स्वयं-सेवक आजाद हिन्द फौज में भरती हुये थे। इण्डोचाइना, हांगकांग, शंघाई, फिलिपाइन्स और जापान से भी काफी हिन्दुस्तानी नागरिकों ने अपने को फौज के लिये प्रस्तुत किया था। शंघाई और हांगकांग के चौकीदारों में से बहुतों ने तो अपनी सारी जायदाद संघ को भेंट कर दी थी। इन प्रदेशों से भी करोड़ों रुपये चन्दे में प्राप्त हुए थे।

११. आजाद हिन्द सरकार का गठन

नेताजी ने ५ जुलाई १९४३ को सिंगापुर में हुए दूसरे सम्मेलन में आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किया था, उसके लिए आप अनुकूल समय की प्रतीक्षा में थे। १९४३ के मध्य अक्तूबर में आपने अनुभव किया कि वह समय आ गया है। संघ के संगठन में नये जीवन का संचार हो कर सब शाखायें व्यवस्थित और नियमित काम करने लग गई थीं। नेताजी की अपील पर जनता ने आशा और कल्पना से भी कहीं अधिक काम कर दिखाया। आजाद हिन्द फौज फौलाद की दीवार बन कर खड़ी हो गई। २१ अक्टूबर के दिन सब शाखाओं के प्रतिनिधियों और नेताओं का एक सम्मेलन सिंगा-पुर में बुलाया गया, जिसका उल्लेख पूर्वीय एशिया के आन्दोलन के इतिहास में ही नहीं, अपितु हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की लड़ाई के इतिहास में भी गर्व के साथ किया जाता रहेगा। इसी सम्मेलन में नेताजी ने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना करने की वह ऐतिहासिक घोषणा की थी, जो परिशिष्ट ३ में दी गई है। नेताजी और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों ने

शपथ ली, जो परिशिष्ट ४-५ में दी गई है। मन्त्रिमन्डल का संगठन निम्न प्रकार किया गया था :—

श्री सुभाषचन्द्र बोस—राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, युद्धमन्त्री और पर-राष्ट्र मन्त्री का काम आपको सौंपा गया था।

कप्तान (बाद में लैफ्टिनेण्ट कर्नल) कुमारी लक्ष्मी—महिला विभाग।

श्री ऐस० ए० अय्यर—प्रकाशन और प्रचार विभाग।

लैफ्टिनेण्ट कर्नल (बाद में मेजर जनरल) ए० सी० चटर्जी—अर्थ विभाग।

श्री आनन्दमोहन सहाय—मन्त्री की हैसियत रखने वाले सेक्रेटरी।

लैफ्टिनेण्ट कर्नल अजीज अहमद, लैफ्टिनेण्ट कर्नल ऐन० ऐस० भगत, लैफ्टिनेण्ट के० के० भोंसले, लैफ्टिनेण्ट कर्नल गुलजारसिंह, लैफ्टिनेण्ट कर्नल ऐम० जेड़० कियानी, लैफ्टिनेण्ट कर्नल ऐ० डी० लोकनाथन, लैफ्टिनेण्ट कर्नल ऐहमान कादिर और लैफ्टिनेण्ट कर्नल शाह नवाज—मन्त्री की हैसियत से फौज के प्रतिनिधि।

श्री रासबिहारी बोस—प्रधान सलाहकार।

सर्वश्री करीम गनी, देवनाथ दास, डी० ऐम० खान, ए० कलप्पा, जे० थिवी और सरदार ईशरसिंह—सलाहकार।

श्री ए० ऐन० सरकार—कानूनी सलाहकार।

आजाद हिन्द सरकार की सहायता की घोषणा के बाद कुछ ही दिनों में संसार की नौ सरकारों ने उसके अस्तित्व और सत्ता को स्वीकार कर लिया था। उनके नाम थे—जापान, जर्मनी, इटली, थाईलैण्ड, बर्मा, फिलिपाइन्स, मन्चूरिया, नानकिन—चीन और कोरिया। इस स्वीकृति के बाद भी युद्धजन्य परिस्थितियों के कारण एक दूसरे के यहां एक-दूसरे के राजदूतों की नियुक्ति नहीं की जा सकी थी। १९४५ में जापान सरकार के यहां राजदूत भेजने और उसके राजदूत को अपने यहां बुलाने का निश्चय किया गया था। श्री तेरुओ हाचिया जापान के राजदूत की हैसियत से आजाद हिन्द सरकार के यहां भेजे गये थे। लेकिन, युद्ध ने इतनी जल्दी ऐसा पलटा खाया कि दोनों सरकारों में नियमित रूप से कूटनीतिक

सम्बन्ध कायम नहीं हो सके। इस पर भी इन सब सरकारों ने आजाद हिन्द संघ, फौज तथा सरकार के अधिकारियों को अपनी सीमा में पूरी सुविधायें प्रदान की थीं। उदाहरण के लिये यूरोप की आजाद हिन्द सरकार के प्रधान तथा मन्त्री श्री ए० सी० नाम्बियार को जर्मन तथा अन्य सरकारें आजाद हिन्द सरकार का अधिकृत प्रतिनिधि मानती थीं।

आजाद हिन्द सरकार को स्वीकार करने वाली सरकारों के अलावा कुछ सरकारें ऐसी भी थीं, जिन्होंने उसके लिये शुभ कामना के सन्देश भेजे थे। उनमें आयर और वातिकान सरकारों के नाम लिये जा सकते हैं। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के साथ ही पूर्वीय एशिया और यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले हिन्दुस्तानी उसके नागरिक हो गये। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की स्मृति हर महीने की २१ तारीख को, नेताजी के आदेश पर, बड़े उत्साह के साथ मनाई जाने लगी। इस दिन विराट सभाओं का आयोजन किया जाता और स्वदेश की आजादी के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने की लोगों से अपील की जाती।

आजाद हिन्द सरकार के सदर मकाम के रंगून जाने पर मन्त्रिमण्डल में कुछ परिवर्तन किये गये। श्री आनन्दमोहन सहाय मन्त्रिमण्डल में ले लिये गये और उनके स्थान में सेक्रेटरी का काम श्री ऐस० ए० अय्यर को सौंपा गया। सरदार ईशरसिंह, श्री करीम गनी और श्री ए० येल्लप्पा को भी मन्त्रिमण्डल में ले लिया गया। श्री ए० येल्लप्पा को यातायात विभाग सौंपा गया। कुछ समय बाद श्री परमानन्द को रसद विभाग, श्री ऐन० राघवन को अर्थविभाग का मन्त्री नियुक्त किया गया। मेजर जनरल चटर्जी युद्ध परिषद के सेक्रेटरी और श्री बशीर सलाहकार नियुक्त किये गये। सैन्यविभाग का मन्त्री कर्नल ऐहसान कादिर को और परराष्ट्र विभाग का मन्त्री जनरल चैटर्जी को बनाया गया। स्थिति में परिवर्तन होने पर मन्त्रिमण्डल में भी परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता था और नेताजी के आदेश पर ये परिवर्तन किये जाते थे।

सरकार का काम आजाद हिन्द संघ तथा उसकी प्रादेशिक कमेटियों

की मार्फत होता था। वे उसके मातहात प्रान्तीय सरकारों का काम करती थीं।

१२. रानी झांसी रेजिमेण्ट

२१ अक्तूबर १९४३ को सिंगापुर के लोगों को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के लिये हुये समारोह के रूप में एक महान ऐतिहासिक उत्सव देखने का सौभाग्य मिला था। लेकिन, उनके भाग्यों में उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उत्सव देखना लिखा था। उस क्रान्तिकारी महोत्सव पर आजाद हिन्द आन्दोलन में एक सुनहरी पन्ना जुड़ने वाला था। न केवल हिन्दुस्तानी; बल्कि चीनी, जापानी, मलायावासी आदि सभी कैथे बिल्डिंग के पास बनाये गए हाई स्ट्रीट कैम्प की ओर भागे चले जा रहे थे। यहां नेताजी उन महिलाओं के लिये एक कैम्प का उद्घाटन करने वाले थे: जिनके चेहरों को ही नहीं, अपितु किस्मत को भी परदे में सदा के लिये ढक दिया गया था, जो विदेशों तक में रहती हुई भी चौके के धुयें की अन्धेरी में परदे की कैद में बंद रहने को लाचार कर दी गई थीं और जिनके लिये सूर्य की खुली धूप तथा खुली हवा का सेवन करना भी असम्भव बना दिया गया था। नेताजी ने इस दीन-हीन एवं पराधीन स्थिति से उभार कर उनको स्वाधीनता की सेना में ले जा कर खड़ा कर देने का जो निश्चय किया था, उसको यहां मूर्त रूप दिया जाने वाला था।

देवताओं के लिये दुर्लभ उस दैवीय दृश्य का क्या कहना है ? कैम्प के चारों ओर अपार भीड़ जमा थी। उसमें सभी देशों और सभी जातियों के लोग शामिल थे। कैम्प के भीतर नवजीवन की साक्षात्-प्रतिमा बनी हुई वीरांगनाएं कन्धों पर बंदूके लिये सैनिक वेश में उपस्थित थीं। थोड़ी ही देर में 'इनकिलाब-जिन्दाबाद,' 'आजाद हिन्द जिन्दाबाद' और 'नेताजी जिन्दाबाद' के नारों से आकाश फट-सा गया। वह तुमुल घोष नेताजी के पधारने की सूचना देने वाला था। वीरांगनायें 'सावधान' का उच्चारण होते ही एकाएक सैनिक पंक्ति में खड़ी हो गईं। नेताजी को सम्मान में सलामी दी गई। तिरंगा झण्डा आपने फहराया। वीर महि

लाओं ने राष्ट्रीय झण्डे को सशस्त्र सलामी दी। कैंप का उद्घाटन हुआ और नेताजी ने अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भाषण बहुत ही ओजस्वी शब्दों में दिया। उसमें आपने कहा कि "देश का भाग्य निर्णय करने में सदा ही महिलाओं ने विशेष भाग लिया है।........पिछले ही युग में हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के आने से पहिले अहल्या बाई, रजिया बेगम, नूर-जहां और बंगाल की रानी भवानी ने दिखा दिया कि वे शासन के काम में कितनी सफल हो सकती हैं? १८५७ में भी देश की आजादी के लिये लड़ी गई लड़ाई में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध सेनाओं का संचालन किस बहादुरी से किया था?... उस झांसी की रानी की हार हुई थी; किन्तु हिन्दुस्तान तो कितनी ही झांसी की रानियां पैदा कर सकता है। पूर्वीय एशिया की महिलायें संगठित हो गई हैं। अब उनको अपनी एक रेजीमेण्ट खड़ी करनी है। इसका नाम होगा—झांसी रानी रेजीमेण्ट। वह आजाद हिन्द फौज का ही एक हिस्सा होगी।"

इस रेजीमेण्ट की कमाण्डर डाक्टर श्रीमती लक्ष्मी स्वामीनाथम नियुक्त की गईं, जो आजाद हिन्द सरकार में महिला विभाग की मन्त्री थीं। इस प्रकार आजाद हिन्द फौज में रानी झांसी रेजीमेण्ट की स्थापना सारे ही संसार के लिये विस्मयजनक समाचार था। हिन्दुस्तान के इति-हास में तो यह एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी कदम था। पूर्वीय एशिया की हिन्दुस्तानी महिलाओं में बिजली-सी दौड़ गई। मलाया, थाईलैण्ड, बर्मा तक से महिलाओं ने इस रेजीमेण्ट में भरती होने के लिये अपने को प्रस्तुत किया। सिंगापुर के बाद रंगून में भी महिलाओं की ट्रेनिंग के लिये एक कैम्प खोला गया। शीघ्र ही महिला सैनिकों की संख्या दो हजार पर पहुँच गई। पूर्वीय एशिया में सपरिवार रहने वाले हिन्दुस्तानियों की संख्या को देखते हुये यह संख्या विस्मयजनक थी। इससे पता चला कि महिलाओं में भी स्वदेश के लिये त्याग करने को कितना उत्साह है?

महिला सैनिकों को पिस्तौल, राइफल, मशीनगन, ब्रेनगन आदि का चलाना सिखाया जाता था। बहुतों को तो 'नर्स' की शिक्षा देकर आजाद

हिन्द फौज की डाक्टरी यूनिट्स में शामिल किया गया था। इसके अतिरिक्त वे नाटक तथा अन्य खेलों आदि का आयोजन किया करती थीं। उनका सब से अधिक लोकप्रिय नाटक 'रानी लक्ष्मी बाई' था। यह सब से पहिले अक्तूबर १६४४ में खेला गया था। लैफ्टीनेण्ट गुरउपदेश कौर ने रानी झांसी का पार्ट अदा किया था। इस से हजारों डालर की आमदनी हुई थी।

बर्मा के युद्ध-क्षेत्र पर कूच करने वाली वीर महिलाओं ने जिस बहादुरी का परिचय दिया, वह यमराज के भी दांत खट्टा करने वाली थी। उनकी संख्या पांच सौ से ऊपर थी। वे अधिकतर डाक्टरी यूनिट की नर्सें थीं। उन्होंने बर्मा के प्रायः सभी अस्पतालों का काम अपने हाथों में ले लिया। रंगून, मयांग, कलाब और मेमयो आदि अनेक स्थानों में ये अस्पताल थे। इनमें उन्होंने अपने रोगी, आहत और घायल भाइयों की सराहनीय सेवा की थी। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए उन्होंने कई बार बड़ी बहादुरी, तत्परता, योग्यता और मृत्यु को पराजित करने वाले अद्‌भुत साहस का परिचय दिया था। एक बार की घटना है कि मयांग के अस्पताल पर अंगरेजी हवाई जहाजों ने रैडक्रास के झण्डों की भी परवा न कर अंधाधुंध बम-वर्षा शुरू कर दी। आहत भाइयों की सेवा में लगी हुई ये वीर बहिनें अपने स्थान से एक इंच भी इधर या उधर न हुईं। उनकी बहादुरी की प्रशंसा करते हुये नेताजी कभी भी थकते न थे।

निस्सन्देह, रानी झांसी रेजीमेण्ट की बहादुर कमाण्डर डाक्टर लक्ष्मी ने भी अद्‌भुत साहस और बहादुरी का परिचय दिया। आप युद्ध के दिनों में बर्मा में ही रहीं। युद्ध का कोई ऐसा मोर्चा नहीं, जिस पर आप स्वयं न गई हों। कप्तान से आप मेजर बनीं और मेजर से लैफ्टिनेण्ट कर्नल बनाई गईं। १६४५ के शुरू महीनों में आप कलाब के आजाद हिन्द अस्पताल में कमांडेंट थीं। कुछ समय बाद नेताजी ने आपको रंगून आने का आदेश दिया। लेकिन, आप रंगून पहुंच न सकीं। जंगलों में

आपको रुक जाना पड़ा, जहां कि आगे बढ़ते हुये अंग्रेजों और पीछे लौटते हुये जापानियों में भीषण संघर्ष मचा हुआ था। मई १९४५ में आप तांगू-माउची रोड पर गिरफ्तार की गईं थीं। वहां से आप रंगून ले जाई गईं। कुछ समय बाद आपको डाक्टरी करने की सुविधा दे दी गई। लेकिन, आपकी स्वतन्त्र प्रवृत्तियों पर सन्देह किया गया। आजाद फौज के संकटापन्न लोगों की सहायता करना भी फौजी अधिकारियों को सहन न हुआ। उनके मनमाने हुक्मों की आप परवा नहीं करती थीं। इस लिये आपको गिरफ्तार करके दक्षिण बर्मा की शान स्टेट्स के कलाव स्थान में नजरबंद कर दिया गया। मार्च १९४३ में आपको वहां से रिहा किया गया और स्वदेश लौटने की आपको अनुमति मिल सकी। स्वदेश लौटने पर देशवासियों ने जहां-तहां आपका हार्दिक स्वागत किया। यहां भी अपने अधूरे काम को पूरा करने में आप लगी हुई हैं।

१४. आजाद हिंद दल

आजाद हिन्द फौज द्वारा अंग्रेजों के कब्जे से स्वाधीन किये गये प्रदेश की शासन-व्यवस्था करने के लिये इस दल का संगठन किया गया था। इसमें अधिकतर नागरिक ही भरती किये गये थे। सिंगापुर और रंगून के कैम्पों में उनको सिविल शासन की शिक्षा दी गई थी। कर्नल एहसान कादिर इस दल के मुखिया थे। उत्तरी बर्मा के मैमयो शहर में इस दल का सदर मुकाम था। इसमें एक हजार से अधिक ही सैनिक थे। आजाद हिन्द फौज ने जब हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश किया था, तब इस दल की कई टुकड़ियां स्वतन्त्र किये गये प्रदेश में भेजी गई थीं। पलेल के पास मोरे तक वे पहुँच गई थीं और कलेवा में दल का एक कैम्प था।

ईम्फाल से आजाद हिंद फौज के लौटने पर इनको भी लौटने का हुक्म दिया गया। लौटते हुये रास्ते में उनमें से बहुत से मलेरिया और खूनी पेचिश के शिकार हो गये। माण्डले से २२ मील पर मड़या में दल का

एक कैम्प और अस्पताल था। वहां भी बहुतों का देहान्त हो गया। 'करो-या मरो' का व्रत लेकर जान हथेली पर लेकर ये वीर अपने घरों से निकले थे। निसन्देह, उन्होंने इस मृत्यु से कर्तव्य के क्षेत्र में वीर गति प्राप्त की।

१४. बाल सेना

रानी झांसी रेजीमेण्ट के समान ही बालक और बालिकाओं की सेना का संगठन भी नेताजी की दूर की सूझ का एक नमूना था। आजाद हिन्द आन्दोलन की यह भी एक उत्कृष्ट देन थी। आजके बालक ही कल के राष्ट्र का निर्माण करेंगे,--यह सोच कर नेताजी ने इस संगठन का श्री-गणेश किया था। ६ से १४ वर्ष तक के बालक और बालिकाओं की इसमें भर्ती की जाती थी। बर्मा, थाईलैण्ड और मलाया में चारों ओर यह संगठन भी सहसा ही फैल गया। इस बालसेना के सिपाही हाथों में तिरंगा झण्डा लेकर राष्ट्रीय गीत गाते हुये गलियों में चक्कर काटते हुये लोगों में नयी स्फूर्ति और नये जीवन का संचार किया करते थे।

समस्त पूर्वीय एशिया की बाल सेना के इन-चार्ज कर्नल इनायत उल्लाह हसन थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पत्र भी निकाला था और कुछ पुस्तिकायें भी प्रकाशित की थीं।

इस बाल-सेना के वीर सिपाहियों ने जापान के पराजय के बाद तो बहुत ही शानदार काम किका। उन्होंने उन दिनों में प्रभात फेरियां और जलूस निकाल कर निराश हृदयों पर पराजय का कुछ भी असर न होने दिया। जनता की नैतिकता को उन्होंने मरने और मुर्झाने न दिया। और तो और बर्मा पर अधिकार करने लिये आनेवाली अंग्रेज सेना में भी उन्होंने "जयहिन्द" की रूह फूंक दी। आजाद हिन्द की मशाल को उन्होंने बुझने न दिया और वह आज भी वैसा ही जल रही है। आजाद हिन्द की भावना बर्मा और पूर्वीय एशिया की सीमा पार कर सारे ही हिन्दुस्तान में व्याप्त गई है।

१५. आजाद हिन्द बैंक

आजाद हिन्द सरकार ने अप्रैल १६४४ में अपना बैंक कायम किया। आजाद हिन्द का यह राष्ट्रीय बैंक था। रंगून में ६४ यार्क रोड पर इसका केन्द्रीय दफ्तर था। आजाद हिन्द सरकार के लिये इकट्ठा किया जाने वाला चंदा और अन्य सब सामान भी इसी में जमा किया जाता था। ५० लाख की पूंजी के हिस्से बेचकर इसको संगठित किया गया था। निजी तौर पर लोगों के ३५ लाख रुपये इसमें जमा थे। आजाद हिन्द संघ के अर्थ विभाग ने जो चंदा जमा किया था, वह भी सारा इसीमें जमा किया गया था। वर्मा में १५ करोड़ से ऊपर, मलाया में ५ करोड़ और थाईलैंड में डेढ़ करोड़ जमा किया गया था। आजाद हिन्द फौज और संघ का सारा खर्च इसी बैंक से किया जाता था।

बर्मा में बैंक की तीन शाखायें थीं। दो रंगून में और तीसरी दक्षिण शान स्टेटस में तौंगी में थी।

मई १६४५ में अंग्रेज अधिकारियों ने रंगून में प्रवेश करने के बाद जब बैंक को बंद किया, तब उसमें ३० लाख डालर नकद जमा था। बैंक को अपना काम चालू रखने का आदेश देने और कुछ दिन काम करने की सुविधा देने के बाद भी एकाएक बंद कर दिया गया था। श्री ऐस० ए० अय्यर बैंक के प्रधान थे और डाइरेक्टर थे सर्वश्री दीनानाथ, एम० एम० रशीद, एच० आर० बेनाई, एच० ई० मेहता और कर्नल अलगप्पान। श्री दीनानाथ ने कोर्ट मार्शल के सामने दिये गये बयान में पूर्वीय एशिया में इकट्ठे हुये करोड़ों के चन्दे, बैंक की स्थिति तथा कारबार और आजाद हिन्द सरकार की अर्थ-व्यवस्था पर बहुत विस्तार के साथ प्रकाशा डाला है।

११.

आजाद हिन्द पर आजाद झण्डा

१. महान् पूर्वीय एशिया सम्मेलन

हिन्दुस्तान की आजाद हिन्द सरकार और रानी झांसी रेजीमेण्ट की स्थापना के बाद अक्तूबर १६४३ के अन्त में नेताजी सिंगापुर से बैंकौक गये। वहां आप थाई सरकार के अतिथि हो कर रहे। बैंकॉक से आप अपने मिनिस्टिरियल स्टाफ के साथ किसी अज्ञात स्थान के लिये विदा हो गये। २ नवम्बर को लोगों को पता चला कि आप टोकियो पहुँच गये हैं और वहा ४ नवम्बर का पूर्वीय एशिया के सभी राष्ट्रों की सरकारों के प्रतिनिधियों का बृहत् सम्मेलन बुलाया गया है। आपके साथ मेजर जनरल जे. के. भोंसले, श्री ए. एम सहाय, कर्नल डी. ऐस. रानू और लेफ्टिनेण्ट कर्नल ए. हसन भी गये थे।

जापान, थाईलैण्ड, चीन, मंचूरिया, फिलिपाइन्स और बर्मा की सरकारों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित थे। जापान के प्रधान मन्त्री जनरल हिदेकी तोजा, थाईलैंड के प्रधानमन्त्री के विशेष प्रतिनिधि प्रिंस वान विद्याकरण, नानकिन-चीन के प्रधान वाग चिंगवाई, मंचूरिया के प्रधानमन्त्री जनरल चांग चिंग हुई, फिलिपाइन्स प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति जोस पी. लारैल, बर्मा की सरकार के प्रधान डा. बा मा अपने अपने राष्ट्रो के प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष थे। नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस केवल 'दर्शक' के रूप में सम्मेलन में सम्मिलित हुये। देश के स्वतन्त्र होने पर उसकी अपनी सरकार के कायम होने तक आपको उसके प्रतिनिधि के रूप में ऐसे सम्मेलन में सम्मिलित होना उचित प्रतीत नहीं हुआ।

सभी प्रतिनिधियों ने अपनी सरकारों की ओर से नेताजी को आजाद

हिन्द सरकार के कायम होने पर बधाई दी और उनको आश्वासन दिया कि वे और उनकी सरकारें हिन्द की आजादी के लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई में उनका पूरी तरह साथ देंगी । उन्होंने उनकी सफलता में पूरा विश्वास प्रगट किया ।

इसी सम्मेलन में जापान के प्रधानमन्त्री जनरल हिदेकी तोजो ने अण्डेमान्स और निकोबार द्वीप समूहों को आजाद हिन्द सरकार के हाथों में देने की ऐतिहासिक घोषणा की । उन्होंने हिन्दुस्तान के प्रति जापान की नीति को स्पष्ट करते हुये यह एक बार फिर स्पष्ट शब्दों में कहा कि हिन्दुस्तान में जापान न तो अपनी हकूमत कायम करना चाहता है और न राजनीतिक अथवा आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये ही कुछ करना चाहता है ।

नेताजी का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावशाली और आकर्षक था । आपका भाषण भी अत्यन्त ओजस्वी, प्रभावशाली और महत्वपूर्ण हुआ । जापान और जर्मनी आदि सभी साथी राष्ट्रों को उदार सहायता और सहयोग के लिये धन्यवाद देते हुये आपने भरोसा दिलाया कि हिन्दुस्तान पीछे न रह कर समय से पूरा लाभ उठायेगा । आपने कहा कि हिन्दुस्तान को आजाद करने वाली सेना ने कूच कर दी है और वह जल्दी ही दुश्मन से लोहा लेने वाली है । हिन्दुस्तान की आजादी की इस लड़ाई का सूत्रपात वर्तमान महायुद्ध के साथ ही नहीं हुआ है । अपितु वह कई सन्तति पहिले शुरू किया जा चुका है । वह तब तक जारी रहेगा, जब तक कि हिन्दुस्तान को पूर्ण आजादी प्राप्त करने में पूरी सफलता न मिल जायगी ।

सम्मेलन में जो सबसे बड़ा काम हुआ, वह यह था कि इसमें 'प्रशान्त चार्टर' तय्यार किया गया, जिसमें महान् पूर्वीय एशिया के महायुद्ध को सफल बनाने के लिये समस्त साधनों को एकत्रित करने का निश्चय किया गया और संयुक्त मोर्चा कायम करके पारस्परिक सुरक्षा के लिये भी संयुक्त कार्यवाही करने के निर्णय का उल्लेख किया गया ।

सम्मेलन के बाद नेताजी के स्वागत में टोकियो के हिबया पार्क में

एक महान् आयोजन किया गया। इसमें हजारों जापानी शामिल हुये। जनरल तोजो और फील्ड मार्शल सुगीयामा आदि बड़े बड़े राज-अधिकारी भी इसमें सम्मिलित हुये थे। राजकीय स्वागत एवं सम्मान के लिये आभार मानते हुये नेताजी ने हिन्दुस्तानी में भाषण दिया। आपने जापानी जनता और सरकार को उसकी ओर से हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में दी जाने वाली सहायता, सहयोग तथा सहानुभूति के लिये धन्यवाद देते हुये कहा कि इसके लिये हिन्दुस्तानी सदा ही कृतज्ञ रहेंगे। हिन्दुस्तान के स्वतन्त्र होने पर जापान के साथ उसकी दोस्ती तथा सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ होने में भी आपने विश्वास प्रगट किया।

जापान के सम्राट ने भी नेताजी को मिलने के लिये निमन्त्रित किया। दोनों देशों के इतिहास में यह पहिला ही अवसर था कि दो देशों के 'स्वतन्त्र सम्राट' एक-दूसरे के साथ समानता के नाते से मिले थे।

जापान से लौटते हुये नेताजी शंघाई, नानकिन, मनीला और बैंकौक भी गये। सभी स्थानों पर आप वहां की सरकारों के शाही मेहमान रहे और सब जगह आपका शाही स्वागत किया गया। उन देशों के हिन्दुस्तानियों को भी अपने नेता को अपने बीच में देख कर और उनका भाषण सुन कर अपार प्रसन्नता हुई। सब स्थानों पर उत्साह की नयी लहर दौड़ गई। अपने स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र नेता के इन देशों में जाने और वहां उसके सरकारी मेहमान बनने का यह पहिला ही अवसर था। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि इन देशों के लोगों ने अपने यहां रहने वाले हिन्दुस्तानियों को मान व प्रतिष्ठा से देखना शुरू किया और उनमें स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान की भावना का संचार हो गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण उनको इन देशों में जिस अपमान का जीवन बिताना पड़ता था, उसका अन्त हो गया।

शंघाई में नेताजी ने रेडियो पर भाषण दिया। उसमें आपने च्यांग-काई शेक से जापान के साथ सुलह करने की अपील की और कहा कि

सुलह हो जाने पर जापान अपनी सेनाओं को चीन से तुरन्त हटा लेगा और हजारों लाखों एशियावासियों के जीवन की महा-युद्ध के दैत्य से रक्षा हो जायगी। आपने यह भी कहा कि जब तक चीन और हिन्दुस्तान इंग्लैण्ड तथा अमेरिका की गुलामी से मुक्त न होंगे, तब तक संसार में सुख और शान्ति कायम न हो सकेगी। आपने यह भी भय प्रगट किया कि इस लड़ाई में चीन अपनी स्वतन्त्र सत्ता से कहीं हाथ न धो बैठे। यदि कहीं जापान हार गया, तो चीन पर अमेरिका का आर्थिक और सैनिक साम्राज्य कायम हुये बिना न रहेगा।

२. शहीद और स्वराज्य द्वीप में

दिसम्बर के पहिले सप्ताह में नेताजी सिंगापुर में अपने सदर मुकाम पर वापिस लौट आये। आजाद हिंद संघ, आजाद हिंद फौज और आजाद हिंद सरकार के सदर मुकाम को रंगून ले जाने की सारी तय्यारी कर ली गई थी। इसी बीच अंडमान और निकोबार के द्वीप समूह आजाद फौज सरकार के हाथों में दिये जा चुके थे।

३० दिसम्बर को नेताजी मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों के साथ इन द्वीपों के तूफानी दौरे पर गये। आजाद हिन्द की आजाद भूमि का यह पहिला प्रदेश था। इसकी राजधानी पोर्ट ब्लेयर की सरकारी इमारतों पर नेताजी ने आजाद हिन्द का आजाद झण्डा फहराया। वह समारोह कितना भव्य, शानदार, आकर्षक और प्रभावोत्पादक था। इसी अवसर पर नेताजी ने अण्डमान को शहीद द्वीप और निकोबार को स्वराज्य द्वीप का नया नाम दिया। इन द्वीपों में स्वदेश की आजादी या स्वराज्य के लिये भारत माता के कितने सुपुत्र शहीद हुये थे! कितने सार्थक ये नाम थे। समारोह के बाद नेताजी ने उस जेल का भी निरीक्षण किया, जिसमें न मालूम कितने देशभक्तों ने अपनी आयु के सर्वोत्तम दिवस बिताये थे!

आजाद हिन्द सरकार के मन्त्री मेजर जनरल ए० डी० लोकनाथन इन द्वीपों के चीफ कमिश्नर नियुक्त किये गये। १७ फरवरी को उन

फ्राइज इण्डीन ग्राजोन —यूरोप में खड़ी की गई ग्राजाद हिन्द फौज,
ऊपर उसका बैज, नीचे फौज के सामने भाषण देते हुये नेताजी।

नेताजी बैंकॉक के राजप्रसाद में——दिसम्बर १६४३ । थाई मरकार के मेहमान । पास में सरदार ईशरसिंह और कर्नल डा० एम० राजू ।

द्वीपों को आजाद हिन्द सरकार के हाथों में देने की विधि सरकारी तौर पर पोर्ट ब्लेयर में आजाद हिन्द संघ के प्रधान कार्यालय में सम्पन्न हुई।

मेजर जनरल लोकनाथन ने कोर्ट मार्शल अदालत के सामने दिये गये अपने लम्बे बयान में इन द्वीपों के आजाद हिन्द सरकार के हाथों में दिये जाने, इसके लिये वहां हुये समारोह और वहां की व्यवस्था पर बहुत विस्तृत प्रकाश डाला है। स्थानीय शासन की सारी व्यवस्था आजाद हिन्द सरकार के चीफ कमीश्नर के हाथों में दे दी गई थी। युद्ध की परिस्थिति और द्वीपों की स्थिति को देखते हुये उनकी रक्षा का काम जापानियों ने अपने ही हाथों में रखा। मेजर जनरल लोकनाथन की सरकार ने शिक्षा का काम वहां की सोलह हजार हिन्दुस्तानी आबादी में बहुत अधिक उत्साह और विस्तार से किया।

३. जियावाडी का स्वतंत्र राज्य

पूर्वीय एशिया में हिन्दुस्तानियों की बहुत बड़ी बड़ी जमीन और जायदाद थीं। कुछ तो उनमें छोटी छोटी रियासतों की सी स्थिति रखती थीं। सर ऐस० पी० सिन्हा और राजा सर अन्नामल चटिया की जायदादें स्वतन्त्र रियासतों के समान थीं। रंगून के उत्तर में १५० मील पर जियावाड़ी का ५० वर्गमील लम्बा-चौड़ा राज्य, जिसकी आबादी पन्द्रह हजार थी, ऐसा ही था। उसको उसके मैनेजर श्री परमानन्द और आपके साथी श्री बी० प्रसाद ने आजाद हिन्द सरकार को सौंप दिया था और आप दोनों ने स्वयं भी अपने को उस के न्यौछावर कर दिया था। दोनों के कार्य का परिचय यथास्थान इस पुस्तक में दिया गया है। यह राज्य छोटा होते हुये भी बहुत उपजाऊ था। मुख्यतः इसमें धान की खेती होती थी। कई छोटे-मोटे गृह-उद्योग और चीनी का भी यहां एक बड़ा कारखाना था। जनरल चैटर्जी इसके गवर्नर थे और यहां सुव्यवस्थित सरकार कायम की गई थी। एक एडमिनिस्ट्रेटर के आधीन अर्थ विभाग, भरती विभाग, प्रचार तथा प्रकाशन विभाग, स्वास्थ्य विभाग और हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा का विभाग भी कायम किया गया था। बर्मा छोड़ कर हिन्दुस्तान

या कहीं और चले जाने वालों की जायदाद की देखभाल इसी विभाग के हाथों में थी। आजाद हिन्द सरकार ने यहां केन्द्रीय अस्पताल और ट्रेनिंग सेण्टर के अलावा सूती कम्बलों और जूट की फैक्टरियां भी कायम की थीं। आजाद हिन्द सरकार के हाथों में आने वाले प्रदेश की शासन व्यवस्था करने के लिये जिस आजाद हिन्द दल की स्थापना की गई थी, उसका सदर मुकाम यहीं पर था। लैफ्टिनेण्ट विट्ठलराव इस दल के मुखिया थे। पब्लिक वर्क्स, कृषि और सैनिटेशन के विभाग बी. घोष के और पुलिस विभाग श्री श्यामचन्द्र मिश्र के आधीन था। मुकद्दमों को निपटाने और लगान की वसूली करने के लिये तहसील-दार नियुक्त किये गये थे। श्री रामचन्द्रप्रसाद यहां के मुख्य व्यवस्थापक थे। राज्य की सारी आमदनी आजाद हिन्द सरकार के नाम पर आजाद हिन्द बैंक में जमा की जाती थी। बर्मी या जापानी सरकार का वहां कुछ भी दखल न था। सारे बर्मा पर अधिकार होने से इस पर भी जापानियों का अधिकार हो गया था। लेकिन, जापानी सरकार ने आजाद हिन्द का इसको भी एक प्रदेश मान कर इस पर आजाद हिन्द सरकार का अधिकार स्वीकार कर लिया था। बर्मा के पराजय के बाद इस राज्य को रंगून की तरह बिना प्रतिरोध के अंग्रेजों के हाथों में नहीं दिया गया था। वहां डट कर आजाद हिन्द फौज ने अंग्रेज सेना का मुकाबला किया था। फौजी अदालत में सफाई के गवाहों, विशेष कर श्री शिवसिंह ने इसका विस्तार के साथ वर्णन किया है और सफाई के यशस्वी वकील श्री भूलाभाई देसाई ने सफाई के लिये दिये गये अपने ऐतिहासिक वक्तव्य में इसकी विशेष रूप से चर्चा की है।

शहीद द्वीप और स्वराज्य द्वीप के समान यहां भी आजाद हिन्द सर-कार की आजाद हकूमत में तिरंगा राष्ट्रीय झंडा सिर ऊंचा किये आजादी के साथ फहराता रहा था।

१२.

युद्ध के मोर्चे पर

१. युद्ध की घोषणा

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना होने के तीन दिन बाद अर्थात् २४ अक्तूबर १९४३ की आधी रात को १२ बजकर ५ मिनट पर श्री सुभाषचन्द्र बोस ने राष्ट्रपति की हैसियत से आजाद हिन्द सरकार की ओर से इंग्लैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। इसके करते ही आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियों ने सिंगापुर से बर्मा की ओर कूच कर दी।

कुछ ही दिन बाद जनवरी १९२४ को आजाद हिन्द सरकार, आजाद हिन्द फौज और आजाद हिन्द संघ का सदर मुकाम भी सिंगापुर से बर्मा में रंगून ले आया गया। फौज में सैनिकों की संख्या ४० हजार तक पहुंच गई थी। आधी सेना को मलाया में रखा गया और आधी ने बर्मा की ओर कूच की। इसमें डिविजन नं० १ और उसकी पैदल सेना तथा अन्य अनेक टुकड़ियां शामिल थीं। पहिली डिविजन मेजर जनरल एम. जमान कियानी की कमान में आक्रमण के लिये एक कदम पर तैयार थी।

बर्मा की ओर कूच करने वाली फौज ने पैदल ही प्रयाण किया। लम्बे पड़ाव तय करने में उसने जापानी सेनाओं को भी मात दे दी। थाईलैण्ड होकर बर्मा जानेवाले जंगली रास्तों और उनमें पड़नेवाली पहाड़ी घाटियों का कोना-कोना 'जयहिन्द' के गगनभेदी नारों, 'चलो दिल्ली' के आकाशभेदी जयघोषों और "सब सुख चैन की बरखा बरसे" के राष्ट्रीय गीतों की वीरतापूर्ण ध्वनि से गूंज उठा।

२. पहिली चढ़ाई

आजाद हिन्द फौज की सबसे आगे की टुकड़ी हिन्द-बर्मा-सीमा की

और छलांगें मारती हुई बढ़ती जा रही थीं। जनवरी १९४४ के अन्त में वह शत्रु-सेना के मोर्चे पर जा पहुँची। ४ फरवरी को आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने अंग्रेज सेना पर पहिली गोली दागी और अराकान की पहाड़ियों पर तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा फहरा दिया। आजाद हिन्द सरकार और आजाद हिन्द फौज के ही नहीं, अपितु पूर्वीय एशिया में शुरू किये गये आजाद हिन्द आन्दोलन के इतिहास में ४ फरवरी १९४४ का दिन सदा के लिये चिरस्मरणीय हो गया। अंग्रेजों और अमरीकनों के विरुद्ध की गई युद्ध-घोषणा को आज के दिन कार्य में परिणत किया गया। इस दिन दागी गई गोली "करो या मरो" का मूलमन्त्र जप कर एक व्यक्ति के समान खड़े हुये पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों का अपने ४० करोड़ देशवासियों को वास्तव में एक आवाहन था। वह एक सन्देश था, जो जाति, सम्प्रदाय, वर्ग या वर्ण के भेदभाव का कुछ भी विचार न कर समस्त देशवासियों के नाम भेजा गया था। स्वदेश की आजादी के लिये मर मिटने का जो दृढ़ संकल्प और निश्चय पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों ने किया था, उसके अनुसार तो यह एक स्पष्ट चुनौती ही थी। अंग्रेज सेना आजाद हिन्द फौज के वेग को संभाल न सकी। कई स्थानों पर वह उसको वेधकर आगे बढ़ गई। सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में भी आजाद हिन्द फौज का आगे बढ़ना बराबर जारी रहा। बहादुर ग्रुप और इण्टेलिजेंस ग्रुप ने इस मोर्चे पर बहुत बहादुरी का परिचय दिया।

३. आजाद हिंद में प्रवेश

रंगून से भी आगे बढ़कर नेताजी ने मेमयो में आजाद हिन्द सरकार का सदर मुकाम कायम कर दिया। मेमयो उत्तरी बर्मा में है। इसी बीच में जनरल शाह नवाज खां की सुभाष ब्रिगेड, कर्नल कियानी की गांधी ब्रिगेड, कर्नल गुलजारासिंह की आजाद ब्रिगेड, कर्नल ढिल्लन की नेहरू ब्रिगेड, कर्नल मल्लिक का इण्टेलिजेंस ग्रुप और डिवीजन नं० १ की अन्य

टुकड़ियां चिन्दवीन नदी के उत्तर से हिन्द-बर्मा-सीमा की ओर बढ़ रही थीं। बोस और गांधी ब्रिगेड ने आजाद हिन्द फौज की ओर से सबसे पहिले युद्ध का श्रीगणेश किया। अंग्रेज सेना को उन्होंने उसके मजबूत मोर्चों फोर्ट व्हाइट, कलावा, तामू, तिड्डिम आदि पर पछाड़ दिया अपने मोर्चों पर से अंग्रेज सेना के पैर उखड़ गये और उसको पीछे हटने को लाचार होना पड़ गया। १८ मार्च १९४४ को आजाद हिन्द फौज ने हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश किया। वीर सैनिकों ने लेट कर भारत माता को साष्टांग प्रणाम किया और उसकी पवित्र धूलि को माथे पर लगाकर अपने को धन्य माना। आजाद हिन्द की छाती पर पहिली बार आजाद तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। उसको फहराने वाले उन वीर सैनिकों के गर्व का कहना क्या था? २१ मार्च को नेताजी ने एक विशेष आदेश जारी करके सरकारी तौर पर इसका ऐलान किया।

४. इम्फाल का खूनी जंग

आजाद हिन्द की आजाद सीमा में प्रवेश करने के बाद आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियां और अधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ीं। पलेल, मोरे, संगरूर, विशनपुर आदि बस्तियां एक-एक करके शान से फहराने वाले राष्ट्रीय झण्डे की छाया में आती चली गईं। उसके बाद मणिपुर राज की राजधानी इम्फाल का मोर्चा था। आजाद हिन्द फौज की कुछ टुकड़ियां, विशेषकर कर्नल मल्लिक का इण्टेलिजेंस ग्रुप इम्फाल को पार करके कोहिमा पर पहुँच गया था और उसने कोहिमा पर भी राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया था। अन्य टुकड़ियों ने दीमापुर और सिलचर की ओर कदम बढ़ाया। १५००० मील से अधिक भूमि पर आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियों ने कब्जा कर लिया और वहां चार मास तक तिरंगा झंडा शान के साथ फहराता हुआ आजादी का सन्देश देता रहा। नेताजी ने मेजर जनरल ऐ. सी. चटर्जी को इस आजाद क्षेत्र का गवर्नर नियुक्त किया।

इम्फाल पर खूनी जंग जारी था। डट कर असली लड़ाई यहां ही लड़ी गई। यहां होने वाले पराजय के भीषण दुष्परिणाम की कल्पना करना अंग्रेज सेना के लिये मुश्किल न था और यहां हाथ लगने वाली विजय के सुन्दर परिणाम की कल्पना करना आजाद हिन्द फौज के लिये भी मुश्किल न था। इसलिये दोनों ही ओर से जान लड़ा कर इस मोर्चे की लड़ाई लड़ी गई। यहां हुई घमासान लड़ाई का वर्णन लेखनी या वाणी से नहीं किया जा सकता। बाल्मीक या व्यास की लेखनी भी उसका यथार्थ चित्र नहीं खींच सकती। संजय की दिव्य दृष्टि से देखने वाला अथवा उसमें स्वयं भाग लेने वाला ही उसका कुछ हाल सुना सकता है। उसमें भाग लेने वाले अधिकांश सैनिक तो वहां युद्ध-भूमि में ही काम आ गये। उनके नाम भले ही किसी को मालूम न हो और अलग-अलग उनका स्मरण भले ही न किया जा सके, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिन्द माता उनको कभी भी भूल नहीं सकती। स्वदेश की आजादी की लड़ाई के इतिहास के पन्नों पर वे अपनी वीरता की अमिट छाप लगा गये हैं। समय आयगा, जब उनके रुधिर से पवित्र हुये कोहिमा, पलेल, विशनपुर और इम्फाल आदि स्थानों को उनके देशवासी तीर्थस्थान मानकर मक्का-मदीना अथवा बद्री, केदार एवं गंगोत्री की तरह उनकी यात्रा किया करेंगे और उनसे राजनीतिक चेतना तथा स्फूर्ति प्राप्त किया करेंगे।

प्लासी की लड़ाई के बाद इम्फाल के खूनी जंग का उल्लेख इस सदी के इतिहास में अवश्य ही किया जाता रहेगा। आजाद हिन्द की इस लड़ाई में तो उसको थर्मापली या हल्दी घाटी का-सा महत्त्व निश्चय ही मिल गया है। वर्तमान विश्व-युद्ध में ओकीनावा और स्टालिनग्राड के बाद इम्फाल के खूनी जंग का स्थान है। कुछ दृष्टियों से इम्फाल के जंग का महत्व और भी अधिक है। लेकिन, एक बात में तीनों समान हैं। वह यह कि इन तीनों स्थानों पर युद्ध के साथ साथ इतिहास ने भी पलटा खाया और वहां हुये परिवर्तनों को दुनिया ने बहुत विस्मय के साथ देखा। इन

स्थानों पर लड़ाई ने जो करवट ली, उससे संसार की किस्मत ही बदल गई। हिन्दुस्तान की किस्मत ने भी यहीं से पलटा खाया और उसकी आजादी का आशा दीप यहां पर एक बार फिर बुझ गया। लेकिन, आजाद हिन्द फौज इस मोर्चे पर संसार की एक बड़ी और कड़ी लड़ाई लड़ कर अपने रुधिर से एक नये इतिहास का निर्माण कर गई। शत्रु सेना के मुकाबले में उनके पास न तो युद्ध-सामग्री थी और न दवा-दारू तथा भोजन का ही सामान था। आजकल के युद्ध के उपकरणों से पूरी तरह लैस उस सेना का उसने यहां मुकाबला किया, जिसकी पीठ पर इंग्लैण्ड और अमेरिका की सारी ताकत थी और जिसके पास युद्ध-सामग्री, दवादारू, खाने-पीने का सामान भी भरपूर था। दूसरी ओर क्या था ? देशभक्ति की उच्चतम पवित्र भावना उनके पास सबसे बड़ा हथियार था। स्वदेश को आजाद देखने की आकांक्षा उनकी सबसे बड़ी पूंजी थी। इस भावना और आकांक्षा के पीछे मर मिटने की तय्यारी उन को सबसे बड़ी युद्ध-सामग्री थी। इसी से सब प्रकार की बीमारी, भूख, तंगी, तकलीफ और मृत्यु तक को पैरों तले कांटों की तरह रौंदते हुये आजाद हिन्द फौज ने जिस वीरता और बहादुरी का परिचय दिया, उससे उसकी विजय सुनिश्चित जान पड़ती थी। चार मास तक शत्रु सेना उस पहाड़ी मोर्चे पर घिरी पड़ी रही। उसको भोजन-सामग्री भी हवाई जहाजों से पहुंचाई जाती थी। स्थिति इतनी नाजुक और खतरनाक थी कि एक बार तो इम्फाल को खाली करने का हुक्म तक दे दिया गया था।

५. भारी वर्षा और विश्वासघात

अंग्रेज सेना इम्फाल को खाली करने ही को थी कि उसकी सोई हुई किस्मत जाग उठी। मूसलाधार वर्षा उसके लिये वरदान सिद्ध हुई। इम्फाल खाली करने के हुक्म रद्द करके कमाण्डरों को अपने स्थान पर डटे रहने और वर्षा के परिणाम की प्रतीक्षा करने के नये आदेश दिये गये।

वर्षा के अलावा हवाई-जहाजों का अभाव भी आजाद हिन्द फौज के लिये घातक सिद्ध हुआ। जापानियों को दक्षिण पश्चिम प्रशान्त से होने वाले हवाई हमलों के कारण जान के लाले पड़ रहे थे। अमेरिका के हवाई जहाजों ने उनकी नाक में दम कर दिया था। इस लिये यहां से सारे हवाई जहाज हटा कर उस ओर भेज दिये गये। यातायात के साधन भी अपर्याप्त, कमजोर और सर्वथा असुरक्षित थे। अनेक अवसरों पर युद्ध और भोजन का सामान मोर्चे पर पहुँचाने के लिये भी गाड़ियां न मिलती थीं। जापानियों के पास अपने लिये भी पर्याप्त गाड़ियां न थीं। गाड़ियां मांगने पर वे पल्ला झाड़ कर रह जाते थे।

इसी आड़े अवसर पर आजाद हिन्द फौज के कुछ अफसरों ने विश्वासघात किया। अपने देश, अपने नेता, अपनी फौज, अपने सुनिश्चित ध्येय के साथ विश्वासघात करके वे दुश्मन सेना के साथ जा मिले। उनमें बोस और गांधी ब्रिगेड के मेजर प्रभुदयाल और मेजर ग्रिवाल भी थे। नेताजी के सामने ली गई वफादारी की शपथ की एकाएक अवज्ञा करके वे अंग्रेज सेना में चले गये और आजाद हिन्द फौज का सारा भेद उसको दे दिया। यह जान कर कि आजाद हिन्द फौज के पास युद्ध-सामग्री और रसद का प्रायः अभाव है, अंग्रेज सेना के पस्त हुये हौसले फिर मजबूत हो गये।

भारी वर्षा, युद्ध-सामग्री तथा भोजन-सामग्री का अभाव और इन अफसरों का विश्वासघात आजाद हिन्द फौज के लिये इतना महंगा पड़ा कि मृत्यु को भी पराजित करने का उसका दृढ़ संकल्प, देशभक्ति की उसकी अजेय भावना, स्वदेश को आजाद देखने की उसकी तीव्र आकांक्षा और उसके लिये मर मिटने की उनकी तय्यारी भी अन्त में काम न आई। इसी के बल पर वे इतने साधन-सम्पन्न शत्रु के मुकाबले में चार और कहीं छः महीनों तक बराबर डटे रहे थे। लेकिन, प्रकृति के प्रकोप और विश्वासघात का मुकाबला करना उनके लिये कठिन हो गया। मूसलाधार वर्षा, कलावा तथा मोरे आदि की दुर्गम घाटियां, मलेरिया तथा

पेचिश, यातायात के साधनों के अभाव, भोजन-सामग्री की बेहद कमी और कमजोर हृदय अफसरों के विश्वासघात से जो कठिनाइयां पैदा हुईं, उनको पार करना प्रायः असम्भव ही हो गया। दुर्भाग्य जब आता है, तब चारों ओर से आ घेरता है। यही आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिकों के साथ हुआ। इस पर भी वीर सैनिकों ने पीठ न दिखा कर लड़ाई जारी रखी और उसको आगे भी जारी रखने पर डटे रहे। नेताजी ने उनके कान में 'चलो दिल्ली' का जो मन्त्र फूंका था, उसमें पीछे लौटने के लिये कोई गुञ्जाइश ही न थी। उसका मतलब आगे बढ़ना और निरन्तर आगे ही बढ़ते जाना था। लेकिन, इन सारी कठिनाइयों को देखते हुये नेताजी भी यही चाहते थे कि उनकी सेनायें इम्फाल से वापिस लौट आयें।

६. वापिसी

बहुत ही अनिच्छा और लाचारी से आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की टुकड़ियों ने अगस्त १९४४ से पीछे हटना शुरू किया। पीछे लौटते हुये उनको अकथनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मलेरिया, पेचिश, घाव, फोड़े, फुंसियों के अलावा बरसाती नदी-नालों से पैदा हुई कठिनाइयों का तो कहना ही क्या था? चिन्दवीन पार करते हुये तो सैकड़ों उस की भेंट हो गये। उसमें उन दिनों में बरसाती पूर आया हुआ था। भाग्य से जो बच कर माण्डले या मेमयो आदि पहुँच गये, उनकी मुसीबतों का कोई ठिकाना न था। लम्बे युद्ध में फसे रहने के कारण वे काफी जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे। माण्डले, मलाया और रंगून में सारे अस्पताल घायलों और बीमारों से भर गये। इनमें से कुछ तो मोर्चों से घायल हो कर लौटे थे और कुछ वापिस लौटते हुये रास्ते में बीमार पड़ गये थे।

आजाद हिन्द सैनिकों को वापिस तो लौटना पड़ा, किन्तु मोर्चे पर उन्होंने सराहनीय वीरता का परिचय दिया। यदि किस्मत ने ही उनको धोखा न दिया होता, तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उन्होंने हिन्द-

बर्मा-सीमा पर अंग्रेज सेना को पछाड़ कर हिन्दुस्तान से भी अंग्रेजी राज की जड़ों को उखाड़ कर फेंक दिया होता।

७. डबल मोर्चा

नेताजी को दो मोर्चों को एक साथ संभालना पड़ गया। युद्ध का सामने की सीमा पर शत्रु से लोहा लेने के लिये सैनिकों द्वारा बनाया गया एक मोर्चा था और दूसरा था उसकी रीढ़ की हड्डी को मजबूत बनाने के लिये नागरिकों द्वारा बनाया गया मोर्चा। इसको बनाने वाली पूर्वीय एशिया की समस्त जनता थी। इसका काम मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों की जन, धन तथा अन्य साधनों से सहायता करना था। सैनिकों के मोर्चे के लिये नारा था—"चलो दिल्ली" और "खून-खून खून।" इस का मतलब था हिन्द माता के लिये अपने जीवन और रुधिर की बलि देना। नागरिकों के मोर्चे का नारा था "कुल भरती" तथा "करो सब न्योछावर और बनो सब फकीर।" अपना तन-मन-धन सर्वस्व न्योछावर कर देना उसका मतलब था। नेताजी ने इसकी व्याख्या करते हुये बार-बार लोगों को यह समझाया था कि जहां तक युद्ध-सामग्री के अलावा युद्ध के लिये अन्य साधनों तथा धन और जन का सम्बन्ध है, पूर्वीय एशिया की तीस लाख हिन्दुस्तानी जनता को ही उसे मुहय्या करना होगा और इस भारी दायित्व को पूरा करने के लिये अपने तन-मन-धन सर्वस्व की भेंट चढ़ानी होगी। आपने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वे इस के लिये किसी भी विदेशी सरकार के सामने हाथ न पसार कर केवल उन्हीं पर निर्भर करेंगे, जो अपने को हिन्दुस्तानी कहते और मानते हैं। हिन्दुस्तानियों के सर्वस्व की आहुति हो जाने के बाद ही विदेशियों की सहायता स्वीकार की जायगी; —पहिले नहीं।

८. युद्ध परिषद

इम्फाल से आजाद हिन्द फौज की वापसी पर नेताजी ने युद्ध परिषद की स्थापना की। आजाद हिन्द सरकार की ओर से इसको सर्वोच्च सत्ता

प्राप्त थी। इसमें निम्न लिखित सदस्य थेः—

१. हिज एक्सलैंसी नेताजी,

२. मेजर जनरल जे० के० भोंसले,

३. मेजर जनरल एम० जेड० कियानी,

४. कर्नल एहसान कादिर,

५. कर्नल अजीज अहमद खां,

६. कर्नल हबीबुल रहमान,

७. कर्नल गुलजारासिंह,

८. श्री एन० राघवन,

९. श्री ऐस० ए० अय्यर,

१०. श्री परमानन्द,

११. मेजर जनरल ए० सी० चटर्जी —मन्त्री,

श्री ए० येलप्पा बाद में शामिल किये गये थे।

९. पदक वगैरः

आजाद हिंद फौज के सुप्रीम कमाण्डर के नाते नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने फौज के जनरलों और कमाण्डरों के साथ सलाह-मशवरा करके फौज में साहस, हिम्मत, बहादुरी और वफादारी का परिचय देने वालों के लिये अनेक तरह के पदक वगैराः नियत किये थे। उनमें निम्न लिखित सात पदक उल्लेखनीय हैंः—

(१) तगमये शहीद-ए-भारत

(२) तगमये शेर-ए-हिन्द

(३ अ) तगमये सरदार-ए-जंग (पहिले दर्जे का)

(३ ब) तगमये सरदार-ए-जंग (दूसरे दर्जे का)

(४) तगमये वीर-ए-हिन्द

(५) तगमये बहादुरी

(६अ) तगमये शत्रुनाश (पहिले दर्जे का)

(६ ब) तगमये शत्रनाश (दूसरे दर्जे का)

(७) सनद-ए बहादुरी

नेताजी ने ५६ फौजियों को इन पदकों से सम्मानित किया था। लैफ्टिनेण्ट कुन्दनसिंह, हवलदार रणजीतसिंह, नायक मलहारसिंह, कप्तान अमरीकसिंह को शहीद-ए-भारत पदक; कर्नल ऐस. ए. मल्लिक, लैफ्टिनेण्ट कर्नल प्रीतमसिंह, लैफ्टिनेण्ट कर्नल ऐस. ऐम. मिश्रा, मेजर महेरदास, कप्तान मनसुखलाल और लैफ्टिनेण्ट अजायबसिंह को तगमये सरदार जंग, लैफ्टिनेण्ट हरीसिंह और नायक केदारसिंह को शेर-ए-हिन्द; लैफ्टिनेण्ट लालसिंह, लैफ्टिनेण्ट कपूरसिंह, लैफ्टिनेण्ट प्यारासिंह और लैफ्टिनेण्ट अशरफ को तगमये वीर-ए-हिन्द; कप्तान साधुसिंह, लैफ्टिनेण्ट रोशनलाल, लैफ्टिनेण्ट दिलमानसिंह, हवलदार रामुलु नायडू, हवलदार दीनदयाल, हवलदार अहमद दीन, हवलदार रामसिंह, हवलदार गुरुमुखसिंह, हवलदार दीनमुहम्मद, हवलदार हकीमअली, नायक सुलतानसिंह, नायक तारासिंह, नायक दीवानसिंह, नायक फौजासिंह और सिपाही भीमसिंह को तगमये बहादुरी, लैफ्टिनेण्ट प्रतापसिंह, लैफ्टिनेण्ट लालसिंह, लैफ्टिनेण्ट कपूरसिंह, हवलदार दीनदयाल, हवलदार नसीबसिंह, हवलदार पिया मुहम्मद, हवलदार हकीमअली, नायक फैज मुहम्मद, नायक रोशनलाल और सिपाही गुलाम रसूल को तगमये शत्रुनाश; लैफ्टिनेण्ट दुर्गा बहादुर, हवलदार अहमदउद्दीन, हवलदार उस्मान चौधरी, हवलदार मुहम्मद अशगाज, हवलदार दुर्गादीरी, हवलदार मोहनसिंह हवलदार जगतसिंह, नायक इन्द्रसिंह, सिपाही उत्तमसिंह, नायक ऐस. जी. सन. और सिपाही दीवानसिंह को सनदये बहादुरी से सम्मानित किया गया था।

इन अफसरों और सैनिकों को उस बहादुरी, वफादारी, बलिदान और साहस के लिये ये पदक दिये गये थे, जिसका परिचय उन्होंने हिन्द-बर्मा-सीमा और अराकान, हाका, फालम, विड्डिम, कलेवा, तामू, पलेल, मोरे, कोहिमा, इम्फाल और विशनपुर आदि के मोर्चों पर दिया था। पूर्वीय एशिया में वफादारी और बहादुरी का परिचय देनेवालों को भी

वे पदक दिये जाते थे।

१०. नेताजी का अंतिम उद्योग

इम्फाल तथा अन्य मोर्चों से इस प्रकार आज़ाद हिन्द फौज की टुकड़ियों के वापिस लौटने से नेताजी का हौसला नहीं टूटा और वे निराश नहीं हुये। उनकी आशा वैसी ही बनी रही। यह आपकी दृष्टि में क्षणिक और अनिवार्य-सी घटना थी। सब अस्पतालों में जाकर आप ने सब घायल तथा बीमार सैनिकों को देखा और उनको प्रोत्साहित किया। आप दूसरी चढ़ाई के लिये तय्यार करने में जल्दी ही लग गये। आप के इस आशावाद और तय्यारी से सारे ही पूर्वीय एशिया में नयी आशा जाग उठी। इतनी भारी चोट के बाद भी हिन्दुस्तानी एक भी इंच अपने निश्चय से पीछे नहीं हटे। उसी तरह खुले हाथों वे नेताजी के चरणों में तन, मन, धन की भेंट चढ़ाते रहे। साधन-सामग्री भी चारों ओर से बराबर आती रही। मित्र-राष्ट्रों के हवाई जहाजों से होने वाली बमवर्षा की कुछ भी परवा न कर बर्मा के हिन्दुस्तानी पहिले ही के समान नेताजी के आदेश का पालन करने में लगे रहे। १९४४ के अन्तिम दिनों में नेताजी ने सारे पूर्वीय एशिया का तूफानी दौरा किया। आपने हिन्दुस्तानियों के साथ स्थान-स्थान पर बातचीत की, सार्वजनिक भाषण दिये, उनमें नयी आशा का संचार किया और निराश न होकर उनको अपने ध्येय की पूर्ति में दुगने उत्साह से लगने के लिये प्रेरित किया। इम्फाल के मोर्चे से सीखे जाने वाले सबक उनके सामने रखे। अपनी सेना के पीछे हटने और वापिस लौटने के कारणों की विस्तार के साथ चर्चा की। अगले युद्ध के भीषण संकट का नंगा चित्र भी आपने उनके सामने पेश किया और बताया कि विजय तथा आजादी इतनी आसानी से हाथ लगने वाली नहीं है। आपने यह भी बताया कि दिशनपुर, इम्फाल और कोहिमा की दुर्गपंक्ति भी मैगिनो दुर्गपंक्ति के समान ही दुर्गम तथा दुर्भेद्य है और इसको भेदे बिना हमारी सेनायें आगे नहीं बढ़ सकेंगी।

सितम्बर १९४४ में सिंगापुर, मलाया, बर्मा और थाईलैण्ड से नयी सेनायें सदर मुकाम में आ चुकीं। डिविजन नं० १ के बचे हुये सिपाही अस्पतालों में पड़े थे या कैम्पों में आराम कर रहे थे। डिवीजन नं० २ का पुनर्गठन किया गया। पहिले तो कर्नल ऐन. ऐस. भगत इसके कमाण्डर नियुक्त किये गये थे। बाद में कर्नल अजीज अहमद और मेजर शाह नवाज खां की कमान में उसको दे दिया गया। इसमें तीन ब्रिगेड और कई अन्य टुकड़ियां थीं। उनमें कर्नल ढिल्लन की कमान में नेहरू ब्रिगेड के नाम से चौथी गुरिल्ला रेजिमेण्ट, कर्नल प्रेमकुमार सहगल की कमान में पांचवीं गुरिल्ला रेजीमेण्ट, जिसको बाद में सेकण्ड इनफैंटरी नाम दिया गया था और कर्नल ऐस. एम. हुसैन के कमान में पहिली इन्फैण्टरी रेजिमेण्ट उल्लेखनीय हैं।

११. दूसरी चढ़ाई

एक ओर नेताजी इन तय्यारियों में संलग्न थे और ब्रिटिश साम्राज्य पर दूसरी चढ़ाई करने का मौका साधा जा रहा था कि दूसरी ओर अंग्रेज और उनकी साथी सेनायें ईरावती की ओर से मांडले तथा मध्य बर्मा की दिशा में तेजी से बढ़ती आ रही थीं। उनके पास सैनिकों और युद्ध-सामग्री की कुछ भी कमी न थी। डिविजन नं० १ के सैनिकों को जिन मोर्चों से वापिस लौटना पड़ा था, उन पर पहुंच कर कब्जा करने की तय्यारी डिविजन नं० २ के अफसर और सैनिक कर रहे थे। इसी दृष्टि से उनको शस्त्रास्त्र से सुसज्जित किया जा रहा था। इतने में 'डिविजन नं० १ के घायल, बीमार और थके हुये फौजी भी काफी संख्या में इस चढ़ाई में भाग लेने के लिये तय्यार हो गये। सारी निराशा दूर हो कर सब ओर नयी आशा और उत्साह का संचार हो गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इस बार प्रचण्ड भौतिक तय्यारियों पर देशभक्ति की अजेय भावना की जरूर विजय होगी। लोग यह भूल ही गये थे कि उनको इम्फाल या दूसरे मोर्चों से चार मास और कहीं छः मास तक बहादुरी दिखाने के बाद भी लौट आना पड़ा था। नागरिकों में से भरती किये गये सैनिकों और

शोनान तथा रंगून के ट्रेनिंग स्कूलों में शिक्षित किये गये युवक अफसरों में विशेष उत्साह था। उनको अपने जौहर दिखाने का चिर अपेक्षित अवसर अब मिलने को था।

दूसरी चढ़ाई के लिये आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियों को मिकटिला, प्रोम, पोपा हिल, लोअर चिन्दवीन, जियावाड़ी तथा अन्य स्थानों पर तैनात किया गया था। पहले धावे में इनमें से एक भी मोर्चे पर आजाद हिन्द फौज को पराजित नहीं होना पड़ा। मिकटिला और पोपा हिल पर सबसे अधिक भीषण, कठोर और खूनी लड़ाई जम कर हुई। मिकटिला शहर और हवाई अड्डे पर कोई दस बार छीनाझपटी हुई होगी। दस बार अंग्रेज सेना और आजाद हिन्द फौज का बारी बारी से उस पर कब्जा हुआ होगा।

दुर्भाग्यपूर्ण विश्वासघात ने यहां भी आजाद हिन्द फौज का पीछा न छोड़ा। मेजर मदान, मेजर रियाज, मेजर गुलाम सरवर और मेजर दे सरीखे डिविजन नं० २ के स्टाफ अफसरों ने लड़ाई को ठीक बीच में विश्वासघात किया और वे दुश्मन से जाकर मिल गये। उनके इस कार्य से आजाद हिन्द फौज को बहुत गहरी हानि झेलनी पड़ी। फिर भी आजाद हिन्द फौज के नाम को उज्ज्वल करने वाले अफसरों के नाम नहीं भुलाये जा सकते। मेजर जनरल शाह नवाज खां, कर्नल प्रेमकुमार सहगल, कर्नल ढिल्लन, कर्नल अरशाद, कर्नल हुसेन, और मेजर मेहरदास के नामों से आजाद हिन्द फौज की वीरता के इतिहास में निश्चय ही चार चांद लग गये। इस भारी द्रोह और विश्वासघात के बावजूद आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियां अपने मोर्चों पर तैनात रहीं और उन्होंने ईरावती पार करने के लिये पूरे वेग के साथ किये गये अंग्रेज सेना के प्रयत्नों को सर्वथा विफल बना दिया। अन्त तक आजाद हिन्द फौज फौलाद की दीवार की तरह डटी रही। शत्रु सेना उसको कहीं भी भेद न सकी। पराजय शब्द को नैपोलियन के असम्भव शब्द की तरह शब्दकोश में से निकाल कर आजाद हिन्द फौज ने इस दूसरी चढ़ाई

के लिये कूच की थी। इसलिये पराजित होना तो वह जानती ही न थी। आखिर अंग्रेज सेना ने जापानियों को एक जगह पर पछाड़ दिया और आगे बढ़ने का रास्ता बना लिया।

विश्वासघात के साथ दुर्भाग्य ने भी आजाद हिन्द फौज का पीछा न छोड़ा। साहस, वीरता, बहादुरी और मौत को भी पराजित करने के दृढ़ संकल्प को भी दुर्भाग्य ने मात दे दी। जापानी हवाई जहाजों की सहायता इस बार भी आजाद हिन्द फौज को न मिल सकी। अंग्रेज सेना की पीठ पर अमेरिकन जंगी हवाई जहाजों की नई ताकत आ पहुँची थी। लेकिन, वीर सैनिकों ने इसकी परवा न की। 'नेताजी जिन्दाबाद', 'आजाद हिन्द जिन्दाबाद' 'चलो दिल्ली' और 'जयहिन्द' का नारा लगाते हुए आगे बढ़ने की कोशिश में छातियों पर शत्रु की गोलियां खा कर वे शहीद होते चले गये।

१२. रंगून का अन्तिम मोर्चा

जी-जान की बाजी लगा देने पर भी आजाद हिन्द फौज को पीछे हटने को बाध्य होना पड़ा। मार्च १६४५ तक माण्डले, थाजी, मिक्टिला और अन्य स्थान भी अंग्रेज शत्रुसेना के हाथ में पड़ गये। आजाद हिन्द फौज की टुकड़ियां पीछे हटकर प्रोम, कलाव, तांगू, मावची आदि मोर्चों पर तैनात हो कर डट गई। जापानी कहीं भी पैर जमा कर खड़े न हो सके। वे कदम कदम पर पराजित होते जा रहे थे और पराजय की ही लड़ाई लड़ने में लगे हुये थे। अंग्रेज और उनका साथ देने वाली सेनामें संख्या और युद्ध सामग्री की दृष्टि से उनसे कहीं अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गई थीं। उनकी हवाई शक्ति के सामने जापानियों की हवाई शक्ति काफी क्षीण पड़ गई थी। अन्त में जापानियों ने बर्मा और उसकी राजधानी रंगून को खाली करने का निश्चय कर लिया।

नेताजी इस समय रंगून में थे। नियत योजना के अनुसार अपने अफसरों से लाचार किये जाने पर जापानी कमाण्डर और डाक्टर बा मा

की बर्मा सरकार ने २३ अप्रेल १६४५ को रंगून खाली कर दिया। नेताजी ने रंगून छोड़ने या खाली करने से इनकार कर दिया। लेकिन, अपने मन्त्रियों और जनरलों के निर्णय के सामने आपको झुकना पड़ा। रंगून छोड़ने से पहिले आपने रंगून में आजाद हिन्द फौज की एक जबरदस्त टुकड़ी छोड़ जाना आवश्यक समझा। हिन्दुस्तानियों के जान माल की रक्षा करने और १६४२ के उन दिनों की भीषण घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने देने का प्रबन्ध करना जरूरी था, जो अंग्रेजों के रंगून तथा बर्मा खाली करने पर हुई थीं। नेताजी ने रंगून छोड़ने से पहिले पीछे के लिये सारी समुचित व्यवस्था कर दी। मेजर जनरल ए० डी० लोकनाथन को बर्मा में स्थित आजाद हिन्द फौज का जनरल अफसर कमाण्डर, कर्नल आर० ऐन० अरशाद को चीफ आफ स्टाफ तथा रंगून क्षेत्र का कमान अफसर और कर्नल महबूब अहमद को मिलिटरी सेक्रेटरी नियुक्त किया गया। आजाद हिन्द संघ के इन-चार्ज उसके उपप्रधान श्री जे० एन० बहादुर नियुक्त किये गये।

नेताजी सदलबल २४ अप्रैल को रंगून से बैंकौक के लिये बिदा हो गये। बिदा होने से पहिले आपने रानी झांसी रेजीमेण्ट की समस्त सैनिकाओं को रंगून से बाहर कर दिया। जिनको भी रंगून से बाहर जाना था, उन सबको बिदा करने के बाद, नेताजी सबसे पीछे वहां से बिदा हुये। बर्मा में पीछे रह जाने वाली सेनाओं के नाम आपने एक विशेष आदेश जारी किया। यह परिशिष्ट ६ में दिया गया है। नेताजी के आशावाद और दृढ़ निश्चय का वह एक नमूना है।

जापानियों के जाने और अंग्रेजों के आने के बीच के पन्द्रह दिनों में आजाद हिन्द फौज के ६००० अफसरों और सैनिकों ने रंगून में कानून, व्यवस्था एवं शान्ति बनाये रखने का काम किया। उन्होंने हिन्दुस्तानियों, बर्मियों और चीनियों के अलावा जापान के हाथों में पड़े हुये मित्रराष्ट्रों के युद्ध-बन्दियों की भी रक्षा की। आजाद हिन्द फौजके ये सब अफसर और सैनिक रंगून

से सहज में मौलमीन जा सकते थे, किन्तु वहां न जा कर रंगून में रह कर उन्होंने अपने देशवासियों के प्रति अपने कर्त्तव्य के पालन करने में अपने को खपा देना ही उचित समझा। हिन्दुस्तानियों तथा अन्य नागरिकों के जीवन की रक्षा का भार उनको सौंपा गया था। वे उस समय शस्त्रास्त्र से भली प्रकार लैस थे और रंगून आने वाली अंग्रेज फौज का एक बार तो मुकाबला कर ही सकते थे और उसके लिये काफी संकट भी पैदा कर सकते थे। रंगून नदी में पहिले ही से सुरंगों का जाल बिछा हुआ था। लेकिन, आजाद हिन्द फौज ने इतना भी प्रतिरोध करना उचित न समझा। दोनों ओर की भारी हानि होने के अतिरिक्त उससे कुछ विशेष लाभ तो होना संभव न था।

नेताजी जब रंगून से विदा हुये, तब आप के मन्त्रिमण्डल के सदस्य, सलाहकार और अंगरक्षक दल के सैनिक भी आपके साथ थे। रास्ते में आपको अनेक संकटों और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिये एक घटना काफी है। सितांग नदी को पार करते हुये अन्तिम नौका के साथ इतनी भयानक दुर्घटना घटी कि नेताजी का परखा हुआ एक बहादुर कर्नल उसका शिकार हो गया। अराकान के मोर्चे पर अपनी बहादुरी की छाप लगाने वाला और "बहादुर-ए-जंग" के पदक से सम्मानित किया गया कर्नल मिश्रा उस नौका पर, जो अन्तिम ही थी, सवार था। बमबाज हवाई जहाज की 'बी २४' गोली का सीधा निशाना उस नौका पर लगा। नौका उड़ गई। उसका कहीं भी कुछ भी पता न चला। नेताजी का अत्यन्त विश्वासपात्र बहादुर साथी भी उस जलधारा में डूब गया। यह बहुत बड़ी हानि थी। नेताजी और बाकी दल बच गया। रानी झांसी रेजीमेण्ट की दो सैनिक भी अंग्रेज हवाई जहाजों की मशीन गनों की गोलियों से आहत हो गईं थीं।

नेताजी को महाराणा प्रताप की तरह अठारह दिन जंगलों, पहाड़ियों और घाटियोंमें गुजारने पड़े। कहीं आप पैदल चलते थे, तो कहीं बैलगाड़ी पर और

कहीं मोटर ट्रक पर। सिर पर चीलों की तरह अमेरिकन जंगी हवाई जहाज मंडरा रहे थे। बर्मा डिफेंस आर्मी के फौजी छाया की तरह पीछे पड़े हुये थे। भोजन की तंगी, मलेरिया तथा पेचिश की तकलीफ, लम्बे रास्ते की थकान और सिर पर खेलती हुई मृत्यु का संकट सब मिलाकर कितनी भयानक स्थिति हो गई थी! इन सब मुसीबतों और खतरों में से पार होते हुये नेताजी बीस दिन बाद १३ मई को बैंकौक पहुंचे।

मेजर जनरल ए. डी. लोकनाथन और कर्नल अरशाद ने फौजी अदालत में दिये गये अपने लम्बे बयानों में आजाद हिन्द फौज द्वारा रंगून में इन दिनों में कायम की गई व्यवस्था तथा सुरक्षा का विस्तृत वर्णन किया है। यह भी उन्होंने बताया है कि उसका वह कार्य अंग्रेजों के लिये कितना उपयोगी एवं सहायक सिद्ध हुआ और उसका बदला उन्होंने क्या दिया!

———

१३.

महान देन

१. चमत्कारपूर्ण परिवर्तन

बीस दिन की लम्बी, संकटापन्न और थका देने वाली दुर्गम यात्रा को पूरा करके १३ मई १९४५ को नेताजी बैंकौक पहुंचे। इस पुस्तक के लेखक को उसी दिन आपने मिलने के लिये बुलाने की कृपा की। अपने संकल्प और निश्चय पर आप पहिले से भी अधिक दृढ़ थे। स्वदेश की आजादी के सम्बन्ध में आपकी महत्वाकांक्षा कुछ भी मुर्झाई न थी। सदा की भांति आज भी आपके मुख पर वैसी ही मुस्कराहट बनी हुई थी। इम्फाल के पराजय, ईरावती से वापिसी और रंगून के खाली करने की लाचारी का आप पर कुछ भी असर न पड़ा था। आप पहिले ही के समान स्वस्थ, दृढ़ और आशावादी दीख पड़ते थे। आपके उत्साह में कुछ भी कमी न आई थी। आपकी बातचीत, रहन-सहन और चाल-ढ़ाल में पहिले की-सी ही स्वाभाविकता बनी हुई थी। महाराणा प्रताप की तरह आप भी विचलित न हुये थे। पुस्तक के लेखक ने आपसे कहा कि जनता आपके दर्शन करना चाहती है। आपने हंसते हुये उत्तर दिया कि "आज नहीं। लोगों तक मेरा यह सन्देश पहुँचा दो कि हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई पहिले ही के समान जारी है। दिल्ली का रास्ता आजादी का रास्ता है और दिल्ली पहुंचने के कई रास्ते हैं।"

यह सन्देश भी कुछ कम स्फूर्तिप्रद न था। पूर्वीय एशिया के लोग यह जानते थे कि उनके नेताजी निराश और पराजित होना नहीं जानते। उनको यह विश्वास था कि आप अपने देश की आजादी के लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई के स्वरूप और मर्म को भली प्रकार समझते हैं। उनको

यह भी मालूम था कि आप दो बार 'राष्ट्रपति' चुने जा चुके हैं। आपको वे भारत माता और उसकी आजादी के लिये जूझने वाली कांग्रेस का प्रतिनिधि ही नहीं, किन्तु प्रतिबिम्ब मानकर आपकी पूजा और सम्मान करते थे। आपके प्रति उनके प्रेम का कोई पारावार न था। आपको पूरा भरोसा था कि कांग्रेस और देशवासियों की "अंग्रेजो! भारत छोड़ो" की मांग को पूरा करने की सामर्थ्य रखने वाला एक ही नेता आपके रूप में उनके बीच में विद्यमान् है। इम्फाल के पराजय और रंगून से हुई वापिसी के बाद भी अपने महान नेता के दर्शन करने और भाषण सुनने के लिये लोग वैसे ही उत्सुक बने हुये थे, जैसे कि विजय-दिवस अथवा आजाद हिन्द सरकार के स्थापना दिवस पर होने वाली विराट सभाओं, समारोहों अथवा आयोजनों के लिये वे उत्सुक रहा करते थे। पहले के समान अब भी हजारों की भीड़ आपके भाषणों को सुनने के लिये हुआ करती थी। अपनी विजय में दृढ़-विश्वास, अपनी सफलता में दृढ़ आस्था, 'करो या मरो' के महामंत्र के दृढ़ संकल्प और भीषण से भीषण संकटों में से भी पार होकर आजादी की लड़ाई को अन्तिम सीमा पर पहुंचाने के दृढ़ निश्चय की तो मानो आप साक्षात् प्रतिमा ही थे। देशवासियों के भाग्य के चमकते हुये सितारे, उनकी आशा की चमकती हुई किरण और उनके लिये स्फूर्ति, चेतना तथा प्रेरणा के निरन्तर बहते रहने वाले स्रोत के रूप में पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानी आपकी ओर टकटकी लगाये रहते थे। उगते हुये सूर्य या चांद को तो हर कोई पूजा करता है। लेकिन, डूबते हुये को कोई पूछता भी नहीं। विजयी नेताओं तथा सेनापतियों के तो लम्बे-चौड़े जलूस निकाले जाते हैं, उनकी पूजा की जाती है और उनपर फूल बरसाये जाते हैं, किन्तु पराजित की इतनी उपेक्षा और निन्दा की जाती है कि उसको गोली के घाट उतार देने में भी संकोच नहीं किया जाता। पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों की आशा और आकांक्षा के केन्द्र बने हुये नेताजी के प्रति उनकी श्रद्धा भक्ति, प्रेम तथा आदर पर इतने भारी पराजय से जरा सी भी ठेस न लगी थी। अपितु उसमें कई गुना वृद्धि हो गई थी। अपना सर्वस्व न्योछा-

वर करके स्वदेश की आजादी के लिये खड़ी की गई फौज के सैनिक बन जाने की जो प्रेरणा उनमें आपने पैदा की थी, वह जरा-सी भी मुर्झाई न थी। त्याग, बलिदान और उत्सर्ग की जो ऊंची भावना आपने उनमें भर दी थी, वह एक चमत्कार ही था। इतने बड़े त्याग, बलिदान और उत्सर्ग के लिये आपने उनको बदले में क्या दिया ? भूख, प्यास, तंगी, तकलीफ और मृत्यु के सिवा आपके पास देने को और था ही क्या ! न तो भोजन-सामग्री काफी थी, न कपड़े-लत्ते काफी थे, न शस्त्रास्त्र ही काफी थे और न गोला-बारूद ही काफी था। यह सब अभाव तथा संकट दुहरे पराजय के कारण और भी अधिक बढ़ गया था। लेकिन, इस पर भी नेताजी ने उनमें जो भावना पैदा की थी, जिस चेतना का उनमें संचार किया था, जो नया साहस एवं स्फूर्ति उनमें भरी थी और "करो या मरो" की साधना के लिये जिस राजपथ पर लाकर उनको खड़ा कर दिया था, उनके लिये वह नेताजी की बहुत बड़ी देन थी। स्वदेश के लिये उनके हृदयों में स्फूर्ति पैदा कर चालीस करोड़ देशवासियों की किस्मत के साथ उनकी किस्मत की गांठ बांध देना भी साधारण काम न था।

स्वानुभूति अथवा स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान की भावना का उनमें संचार कर उनको कुलियों की स्थिति से ऊपर उठाकर सभ्य नागरिक के ऊंचे आसन पर ला बिठाना भी एक बहुत बड़ा काम था। अंग्रेजी राज का लाभ उठा कर अंग्रेज जमीदार उनको कुली बनाने के लिये वहां ले गये थे और वे सदा उनको कुली ही बनाये रखना चाहते थे। इसीलिये उन देशों के निवासी भी उनको उपेक्षा और अपमान की ही दृष्टि से देखा करते थे। व्यापारी और सेठ-साहूकारों को भी इस उपेक्षा और अपमान को झेलना पड़ता था। आजाद हिन्द आन्दोलन से पैदा हुई जागृति का सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि उनको स्वतन्त्र देश के निवासियों की-सा वह प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त हो गया, जिसकी कि वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। स्वाभिमान के साथ सिर

ऊंचा कर वे छाती तान कर चलने लगे। इस भारी पराजय के बाद अंग्रेजों की फिर से हकूमत कायम होजाने पर और राजनीतिक दृष्टि से युद्ध से पहिले की-सी स्थिति पैदा होजाने पर भी वे उसके लिये गर्व एवं गौरव अनुभव कर रहे थे, जो कुछ उन्होंने स्वदेश की आजादी के लिये किया है। हिन्दुस्तानी होना अपमान का नहीं, सम्मान का सूचक होगया। रबर के खेतों में दीन-हीन जीवन बिताने वाले पददलित मजूर का भी कायाकल्प होकर उसमें नयी चेतना घर कर गई। उसमें अपने मालिक अंग्रेज की आंखों से आंखें मिलाकर बात करने का साहस पैदा होगया। उसे मृत्यु का भी डर नहीं रहा।

पुरुषों के समान महिलाओं में भी जीवन का संचार होकर अदभुत जागृति पैदा हो गई। आजाद हिन्द आन्दोलन की यह भी बहुत बड़ी चमत्कारपूर्ण देन है।

२. स्वदेश पर प्रभाव

स्वदेश की आजादी प्राप्त करने के उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से आजाद हिन्द आन्दोलन सफल नहीं हो सका; फिर भी इस आन्दोलन का स्वदेश में लड़ी जाने वाली लड़ाई पर जो चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ा, उसको देखते हुये इसे असफल नहीं कहा जा सकता। उस लड़ाई को इससे जो प्रोत्साहन मिला और आम जनता में जो जागृति एवं चैतन्य पैदा हुआ, वह असाधारण है। जिस सेना को राजनीतिक आन्दोलन से बहुत दूर और सर्वथा अछूता रख कर जीवनशून्य बना दिया गया था, उस पर भी इस आन्दोलन का अभूतपूर्व असर पड़ा। अंग्रेज सेनाओं में स्वदेश के लिये अनुभूति पैदा हुई और देश-प्रेम की लहर दौड़ गई। सेनाओं की "सर्वथा सुरक्षित" वफादारी में भी खलल पड़ गया। जापान के पराजय से बहुत पहिले बैंकौक में थाईलैंड के हिन्दुस्तानियों के सामने २४ मई १९४५ को दिये गये अपने भाषण में (परिशिष्ट ७ में देखिये) आपने इसका उल्लेख किया था। आपने उसमें कहा था कि "जब हमारे

देशवासियों के सामने हमारे इस प्रचण्ड आन्दोलन का सही चित्र उपस्थित होगा, तब सारा देश चट्टान की तरह हमारे पीछे आ खड़ा होगा। नेताजी की वह भविष्यवाणी कितनी सत्य सिद्ध हुई ? इसी भाषण में नेताजी ने कहा था कि "निस्सन्देह, स्वदेश की आजादी के लिये लड़ी गई लड़ाई का पहिला दाव हम हार गये हैं। लेकिन, अभी तो हमें कई दाव और पैंतरे खेलने हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात तो तब होगी, जब अंग्रेज सेना बर्मा में आकर अपनी आंखों से आजाद हिन्द फौज और आजाद हिन्द संघ का काम देखकर यह जानेगी कि कैसे हमने अपनी आजादी के लिये युद्ध लड़ा था। उनके देश-भाई "जयहिन्द" के अभिवादन से उनका स्वागत करेंगे और उनके चारों ओर "चलो दिल्ली" का नारा गूंज रहा होगा। वे अपने देशप्रेमी भाइयों के मुख से स्वदेश का राष्ट्रीय गीत सुनेंगे। अंग्रेज सेना के हिन्दुस्तानी सैनिकों और उनके साथ आने वालों पर जो प्रभाव पड़ेगा, उसका महत्व भविष्य की दृष्टि से कहीं अधिक होगा।" नेताजी यह भली प्रकार जानते थे कि जैसे ही सैंशरशिप का काला परदा दूर होगा और देशवासियों को पूर्वीय एशिया के इस महान आन्दोलन का वास्तविक परिचय मिलेगा, वे उसका समर्थन करने में देरी नहीं करेंगे। ऐसा ही हुआ भी।

पूर्वीय एशिया के आजाद हिन्द आन्दोलन के समान स्वदेश में शुरू हुई अगस्त क्रांति भी सफल नहीं हुई। उसकी असफलता की जो प्रतिक्रिया यहां हुई, वह इम्फाल के पराजय की हुई प्रतिक्रिया से कहीं अधिक निराशाजनक थी। यहां आम जनता में छाई हुई निराशा अनैतिकता में परिणत हो रही थी। स्वदेशी शासन का नौकरशाही जहर बहुत तेजी के साथ लोगों में व्याप रहा था। प्रलय की-सी निर्जीव स्थिति पैदा करनेवाली प्रतिक्रिया को रोकने और उसके घातक प्रभाव को नष्ट करने में आजाद हिन्द आन्दोलन की जानकारी ने जादू का-सा असर किया। जो भी समाचार लोगों को मिले, वे उनमें नये खून का संचार कर देने वाले थे। 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो" के नारे को 'जयहिन्द' के नारे से नया बल मिला। 'चलो

'दिल्ली' की पुकार ने अगस्त क्रांति से पैदा हुई नैतिकता को मरने से बचा लिया। सितम्बर १६४५ में बम्बई में कांग्रेस महासमिति का वर्षों बाद जो ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ था, उस पर आजाद हिन्द आन्दोलन का प्रभाव छाया हुआ था। उन्हीं दिनों में प्रांतीय धारासभाओं और केन्द्रीय धारासभा के चुनावों में कांग्रेस को जो शानदार सफलता प्राप्त हुई, उसमें इसका कितना बड़ा हाथ था। १८५७के स्वतन्त्रता संग्राम से पैदा हुई भावना को जिस प्रकार हिन्दुस्तान के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह पर लाल किले में मुकदमा चला कर और दमन के अन्य उपायों को काम में लाकर नष्ट कर दिया गया था, वैसे ही आजाद हिन्द आन्दोलन से पैदा हुये प्रभाव को नष्ट करने के लिये मुकदमे का नाटक रचा जाकर वे ही सब उपाय काम में लाने का उपक्रम बांधा गया था। लेकिन, इस बार मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की वाला हाल हुआ। इस बार के लाल किले के मुकदमे का बिलकुल उल्टा असर पड़ा। बहादुर शाह की तरह इस मुकदमे के अभियुक्तों ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने की अपेक्षा अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने के अभियोग को स्वीकार किया; स्वदेश की आजादी के लिये युद्ध करना अपना कर्तव्य बताया और उस कर्तव्य के पालन करने का उल्लेख गर्व के साथ किया। आजाद हिन्द आन्दोलन की यह असाधारण देन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और वह देश की सर्व-साधारण जनता के साथ-साथ सैनिकों की मनोवृत्ति में हुये परिवर्तन की भी सूचक है।

३. साम्प्रदायिक समस्या और छूतछात

आजाद हिन्द आन्दोलन से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों ने कई अत्यन्त विकट प्रतीत होने वाली समस्याओं को बात की बात में हल कर लिया। यहां साम्प्रदायिक समस्या कितनी टेढ़ी और पेचीदा बन गई है। प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा इसी को समझा जा रहा है। १६४२ मे आजाद हिन्द आन्दोलन

के प्रारम्भ से इसको हल करने का प्रयत्न किया जा रहा था, किन्तु नेताजी के आने के बाद इसको पूरी तरह हल किया जा सका। छूत-छात की समस्या भी काफी टेढ़ी थी। हिन्दुस्तान की तरह यहां इसका इतना जोर न था। नेताजी के आने के बाद सैनिकों और अफसरों की शिक्षा यानी ट्रेनिंग के लिये जो कैम्प खोले गये थे, उनके कारण इसका भी यहां सहसा ही अन्त हो गया।

इन समस्याओं को हल करने के लिये जो उपाय काम में लाये गये थे, उनकी स्वतः ही एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में कहा जाय, तो तीन बातों को विशेष महत्व दिया जा सकता है। इनमें पहली और मुख्य बात नट की तरह नचाने वाले तीसरे हाथ का अभाव था, दूसरी बात यह थी कि नेताजी ने सीधे तौर पर इसको हल करने का काम अपने हाथों में लिया और तीसरी बात यह थी कि नेताजी ने कभी भी इसको अनावश्यक महत्त्व नहीं दिया।

सच तो यह है कि पूर्वीय एशिया में अंग्रेजी राज का खात्मा होने के साथ साम्प्रदायिक मतभेद भी मिटना शुरू हो गया। वह उसकी ही छाया थी, जो उसके साथ दूर होती चली गई। साम्प्रदायिक एकता और सद्भावना की पहिली झांकी बैंकौक सम्मेलन में जून १९४२ में दीख पड़ी। इसके लिये १२० प्रतिनिधि दूर दूर देशों से आये थे। इनमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी थे। वे सब एक साथ एक स्थान पर ठहरे थे। सबका एक साथ भोजन होता था। सारे हिन्दुस्तानियों को बिना किसी भेदभाव के एक ही झण्डे के तले एक संस्था में संगठित करने का निश्चय किया गया। इस लिये सब में पैदा हुई भावना भी एक ही थी।

उसके बाद फरवरी १९४३ में गांधीजी द्वारा आगाखां महल में किये गये ऐतिहासिक उपवास का महत्वपूर्ण अवसर उपस्थित हुआ। इस अवसर पर सारे एशिया में कोने कोने में बड़े समारोह, आयोजन व प्रदर्शन किये गये। इनमें सब धर्मों, सम्प्रदायों, वर्गों और जातियों

तथा विचारों के लोग बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित होने लगे। महात्माजी की रिहाई की मांग की जाने लगी। मसजिदों, गुरुद्वारों, और गिरजाघरों में गांधीजी के दीर्घजीवन के लिये समान रूप से प्रार्थनायें की जाने लगीं। साम्प्रदायिक एकता के उत्साहप्रद दृश्य चारों ओर दीख पड़ने लगे।

बाद में नेताजी का शुभागमन हुआ और उनके आते ही लोगों के दिल व दिमाग में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ कि उनका कायाकल्प हो गया। लोगों के सामाजिक जीवन और आजाद हिन्द आन्दोलन तथा संगठन पर भी इस परिवर्तन का अचूक असर पड़ा। नेताजी की सम्पूर्ण भरती के लिये की गई अपील का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सब प्रकार के भेदभाव भुला कर सेना में भरती होने को आ खड़े हुये। उनमें फौजी और गैरफौजी काम करने वाले सभी तरह के स्वयंसैनिक शामिल थे। कुछ को आजाद हिन्द फौज के पीछे रह कर काम करने वाले आजाद हिन्द संघ में भरती किया गया था। कुछ को आजाद हिन्द सरकार के काम में भी लगाया गया था। बहुत अधिक संख्या फौज में भरती की गई थी। संघ की शाखाओं का जाल सारे पूर्वीय एशिया में बिछा हुआ था। इनमें काम करने वाले कार्यकर्ताओं में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी एक साथ रहते, एक ही टेबल पर भोजन करते और एक साथ सारा काम करते थे।

आजाद हिन्द फौज में भी ऐसा ही होता था। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सब एक ही बैरक में एक साथ रहते थे। ब्राह्मण और हरिजन, मौलवी और अहीर, उच्च वर्ण और नीच वर्ण आदि के सब लोग एक ही साथ एक ही बैरक में रहते थे। लंगर भी अलग अलग न हो कर सबके लिये एक होते थे। सबके लिये एक-सा भोजन एक साथ बनता था। धर्म, सम्प्रदाय और जाति का सारा भेदभाव भुलाकर सब एक साथ बैठ कर भोजन करते थे। किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव भोजन बनाने या परोसने में न होता था। आजाद हिन्द

संघ और आजाद हिन्द फौज के भोजनालयों में गौ और सूअर का मांस सर्वथा बन्द था। झटके और हलाल का सवाल भी न था। हिन्दू और मुसलमान सब मिल कर भोजन बनाते, परोसते और खाते थे। साम्प्रदायिक एकता इस रूप में मूर्तिमान हो गई थी कि कभी कोई सोचता भी न था कि झटका और हलाल क्या है! अपने हिन्दू या मुसलमान होने का विचार भी शायद ही कभी किसी के दिमाग में पैदा होता होगा।

यह जान कर पढ़ने वालों को भी आश्चर्य और प्रसन्नता हुये बिना न रहेगी कि मद्रास, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त तथा बिहार के कट्टर ब्राह्मण, सुन्दर दाढ़ी वाले मुसलमान और मौलवी तथा हिन्दुस्तान के सुदूर प्रदेशों से आये हुये हरिजन सब एक साथ रहते, एक साथ खाते और एक साथ सब कामों में शामिल होते थे। जो लोग विदेशों में भी अपने हाथ के सिवा किसी दूसरे के हाथ का बनाया खाना न खाते थे, वे भी सबके लिये बनाये गये सामान्य भोजन को सब धर्मों, सब जातियों और सब प्रान्तों के लोगों के साथ बैठ कर आनन्द से खाते थे। इस प्रकार साम्प्रदायिक समस्या के साथ छूतछात की समस्या स्वतः ही हल हो गई।

३. नेताजी-सप्ताह और आजाद हिंद स्मारक

नेताजी २८ मई १९४५ को अपने दलबल के साथ बैंकौक-थाईलैंड से मलाया के लिये बिदा हो गये। हिन्दुस्तान में अगस्त १९४२ में गिरफ्तार किये गये राष्ट्रीय नेताओं को इन्हीं दिनों में रिहा किया जा रहा था और वायसराय लार्ड वावेल की घोषणा के अनुसार शिमला सम्मेलन के लिये रंग-मंच तय्यार किया जा रहा था। नेताजी इस सबके विरुद्ध थे। किसी भी प्रकार के राजनीतिक सौदे या समझौते से आजादी प्राप्त करने में आपका विश्वास न था। इस बारे में आपने कई वक्तव्य प्रकाशित किये। उनमें आपने आजाद हिन्द सरकार की नीति पर प्रकाश डाला। अपनी और अपनी सरकार की आवाज देशवासियों तक पहुंचाने के लिये आपने उन वक्तव्यों को ब्राडकास्ट करने का यत्न

किया । लेकिन, बैंकोक का आजाद हिन्द रेडियो वहां के बिजली घर पर मित्र राष्ट्रों के हवाई जहाजों द्वारा की गई बम-वर्षा के कारण अस्त-व्यस्त हो चुका था । इसलिये नेताजी ने शोनान (सिंगापुर) जाने का निश्चय किया ।

आपके मलाया पहुंचते ही "नेताजी सप्ताह" का समारोह शुरू हो गया। यह सप्ताह नेताजी द्वारा पूर्वीय एशिया के आजाद हिन्द आन्दोलन की बाग-डोर अपने हाथों में लेने की स्मृति में पूर्वीय एशिया में स्थान स्थान पर अपने ढंग से मनाया जाता था । बड़े बड़े समारोह, सेनाओं की परेड, खेल कूद और सैनिकों तथा नागरिकों का शारीरिक खेलों में मुकाबला आदि हुआ करता था । आजादी की लड़ाई को सफलता प्राप्त होने तक जारी रखने की प्रतिज्ञायें भी दोहराई जाती थीं । रानी झांसी रेजीमेण्ट की सैनिकायें नाटक आदि खेला करती थीं । सिंगापुर के इन खेलों और नाटकों में नेताजी स्वयं शामिल हुआ करते थे । मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा अन्य ऊंचे अधिकारी भी उनमें भाग लिया करते थे । जिन स्थानों पर अंग्रेज सेना अभी कब्जा न कर सकी थी, उनमें इस वर्ष भी यह सप्ताह बड़ी धूम-धाम और समारोह के साथ मनाया गया था ।

जुलाई १९४५ के अन्त में नेताजी और आजाद हिन्द सरकार के मन्त्रिमण्डल ने शोनान में आजाद हिन्द आन्दोलन के शहीदों की स्मृति में एक स्मारक खड़ा करने का निश्चय किया । हिन्द-बर्मा की सीमा पर लड़ी गई लड़ाइयों, अराकान की पहाड़ियों में कायम किये गये अनेक मोर्चों और ईरावती नदी पर दुश्मन को रोकने के लिये बनाई गई फौजी चौकियों में कितने ही वीर काम आये थे । घायल और बीमार हो कर शहीद होने वालों की संख्या भी कुछ कम न थी । उन सबको भुलाया नहीं जा सकता था । इस लिये इस स्मारक के खड़े किये जाने का विचार बहुत पसन्द किया गया । अगस्त १९४५ के शुरू में नेताजी ने अपने हाथों से इसकी आधार शिला की स्थापना शोनान में समुद्र के तट पर

अत्यन्त सुन्दर स्थान में की थी। इस स्मारक का बनाया जाना अभी शुरू हुआ ही था कि जापानियों के पराजय और आत्मसमर्पण के समाचार सुनने में आने लगे। ११ अगस्त तक जिस दिन उन्होंने वस्तुतः आत्मसमर्पण किया, स्मारक अभी अधूरा ही बन पाया था।

१६ अगस्त को सिंगापुर से फिर बेंकौक के लिये नेताजी को बिदा होना पड़ गया। बिदा होते हुये आपने स्मारक को पूरा करने का काम कर्नल सी० जे० स्ट्रासी के सिपुर्द कर दिया। उनको नेताजी ने यह आदेश दिया कि अंग्रेजों के वहा पहुंचने से पहिले ही वह स्मारक बन कर तय्यार हो जाना चाहिये। नेताजी के आदेश का अक्षरशः पालन किया गया और एक ही रात में उसको बना कर खड़ा कर दिया गया। यह स्मारक बहुत ही भव्य और शानदार था। स्थापत्य कला का भी वह एक उत्कृष्ट नमूना था। उसके ऊपर शान के साथ तिरंगा झण्डा फहराता था और आजाद हिन्द आन्दोलन के मूलमन्त्र के सूचक तीन शब्द उस पर लिखे गये थे। वे ये थेः—इत्तहाद, इतमाद और कुरबानी।

अंग्रेज सेना और अधिकारियों ने सिंगापुर में जब प्रवेश किया, तब वे उस स्मारक को देख कर चकित रह गये। वह शान के साथ चुपचाप खड़ा हुआ वीर योद्धाओं की उस बहादुरी, विश्वास और बलिदान की साक्षी दे रहा था, जिससे प्रेरित हो कर उन्होंने बिघ्न-बाधाओं तथा कष्टों की तनिक भी परवा न कर आजादी की लड़ाई को अन्तिम सांस तक जारी रखा था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की आंखों के लिये तो वह कांटा ही था। उसके संरक्षक बन कर वहां आने वाले उसके अस्तित्व को सहन न कर सके। उन्होंने उसको तुरन्त नष्ट करने या उड़ाने का हुक्म दे दिया। दुर्भाग्य तो यह था कि यह काम एक हिन्दुस्तानी रेजीमेण्ट के सिपुर्द किया गया था। सुरंग लगा कर उसको नष्ट कर दिया गया। अंग्रेजों के इस हृदयहीन अमानुष कार्य पर न केवल सिंगापुर या मलाया के, बल्कि सारे ही पूर्वीय एशिया के हिन्दुस्तानियों ने विशेष रोष व असन्तोष प्रगट किया। चीनियों और मलायानिवासियों ने भी अंग्रेज अधिकारियों

के इस कुकृत्य की घोर निन्दा की।

अब पता चला है कि उस स्मारक के पत्थर के उस टुकड़े को, जिस पर नेताजी का नाम खुदा हुआ था, कुछ हिन्दुस्तानियों ने चोरी से उड़ा लिया था। अभी जब पण्डित जवाहरलालजी नेहरू सिंगापुर गये थे, तब वह आपको भेंट कर दिया गया था और वह अब आपके ही पास है।

जय हिन्द!

इन्किलाब जिन्दाबाद!!

आजाद हिन्द जिन्दाबाद!!!

परिशिष्ट १

प्रवेश-पत्र : आजाद हिन्द फौज में भरती होने वाले नागरिकों के लिये

यह चेतावनी दी जाती है कि यदि भरती होने के बाद यह पता चला कि इस पत्र में किसी सवाल का गलत जवाब दिया गया है, तो आजाद हिन्द संघ के कानून के अनुसार सजा दी जायगी।

१. नाम (बड़े अक्षरों में)......

२. पता........

(क) हिन्दुस्तान में

गांव............

डाकखाना ....

थाना............

तहसील.........

जिला............

प्रान्त.........

(ख) पूर्वीय एशिया में

डाकखाना...........

शहर या गांव........

जिला...............

कमिश्नरी या राज्य...

देश ....

३. आयु.....

४. क्या कुछ लिखा पढ़ा है ?.....

(क) शिक्षा (ख) भाषा (ग) यान्त्रिक शिक्षण

५. विवाहित हैं या अविवाहित ? विवाहित हैं, तो परिवार कहां है ? बच्चे कितने जीवित हैं।

६. कभी कैद तो नहीं किये गये ? यदि हां, तो क्यों ?

७. बर्मा में क्या धंधा है ?

८. क्या कभी सेना में काम किया है ? यदि हां, तो कितने दिनों तक

किस हैसियत से किया है ?

६. क्या जहां भी कहीं आजाद हिन्द संघ द्वारा भेजे जाओगे, वहां आजाद हिन्द फौज के साथ फौजी की या अन्य हैसियत से जाने को तय्यार हो ?

मैं..........सचाई के साथ यह कहता हूं कि ऊपर जो भी उत्तर मैंने लिखे हैं, वे सब ठीक हैं और मैं साथ के प्रतिज्ञा पत्र पर भी हस्ताक्षर करने को तय्यार हूँ ।

भरती कराने वाले अफसर के हस्ताक्षर

मैं यह प्रमाणित करता हूं कि ऊपर प्रश्नों के जवाब.....तारीख को मैंने लिखे हैं या मेरे सामने लिखे गये हैं ।

हस्ताक्षर...............

रंगरूट का हुलिया

भरती करने वाला अफसर अथवा संघ का मन्त्री या अध्यक्ष इसकी पूर्ति करेगा:—

आयु	वर्ष	महीने
ऊंचाई	फीट	इंच
छाती	इंचों में (कम से कम)	
छाती	इंचों में (अधिक से अधिक)	

डाक्टर का प्रमाण पत्र

मैं........को फौज के लिये योग्य या अयोग्य समझता हूं । विशेष चिन्ह.....

तारीख........ डाक्टर के हस्ताक्षर

स्थान........ ....

टिप्पणी—(१) साधारण स्वास्थ्य औसत से अधिक अच्छा होना चाहिये । फौजी कामकाज में विघ्न या बाधा पैदा करने वाली ऐसी कोई कमी स्वास्थ्य में नहीं होनी चाहिये ।

परिशिष्ट २

प्रत्येक रंगरूट को भरती होने के समय इस प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने जरूरी थे :—

१. मैं अपनी इच्छा और प्रेरणा से आजाद हिन्द संघ की मार्फत आजाद हिन्द फौज में भरती हो रहा हूं।

२. मैं सचाई और ईमानदारी के साथ अपने को भारत माता की भेंट करता हूं और उसकी आजादी के लिये अपने को न्यौछावर करने की शपथ लेता हूं। मैं जीवन को खतरे में डाल कर भी नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में अपनी पूरी सामर्थ्य के अनुसार देश की सेवा और उसकी आजादी के लिये किये जाने वाले आन्दोलन में अपने को खपा दूंगा।

३. देश की सेवा करते हुये मैं किसी निजी स्वार्थ की पूर्ति में अपने को नहीं लगाऊंगा।

४. मैं समस्त देशवासियों को धर्म, भाषा या प्रान्त के भेद का कुछ भी विचार न करके अपना भाई या बहिन समझूंगा।

५. आजाद हिन्द संघ की ओर से जो भी आदेश या निर्देश मुझे दिये जायेंगे, मैं उनका सचाई तथा ईमानदारी से बिना किसी संकोच के पालन करूंगा। मैं अपने ऊंचे अफसरों के, जिनके आधीन मुझे काम करना होगा, न्याय्य एवं उचित आदेशों को सदैव मानूंगा।

तारीख…… हस्ताक्षर………

स्थान……

परिशिष्ट ३

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के अवसर पर २१ अक्टूबर १९४३ को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने राष्ट्रपति की हैसियत से निम्न-

लिखित घोषणा-पत्र पढ़ा था—

"भारतीय जनता सन १७५७ में अंग्रेजों द्वारा बंगाल में पहली बार हराये जाने के बाद लगातार एक शताब्दी तक कठोर और भयंकर लड़ाइयां लड़ती रही। उन दिनों का इतिहास अपूर्व वीरता और आत्मत्याग के उदाहरणों से भरा पड़ा है। उस इतिहास के पृष्ठों में बंगाल के शिराजुदौला और मोहनलाल, दक्षिण भारत के हैदर अली, टीपू सुलतान और बेलू थम्पी, महाराष्ट्र के अप्पा साहब भोंसले और पेशवा बाजीराव, अवध की बेगमों, पंजाब के सरदार श्यामसिंह अटारीवाले और उनके साथ झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, तांतिया टोपी, डुमराव के महाराज कुंवरसिंह और नाना साहब आदि योद्धाओं के नाम अमिट स्वर्णाक्षरों में लिखे हुये हैं। हमारे लिये दुर्भाग्य की बात है कि हमारे पूर्वजों को यह अनुभूति पहले न हुई कि अंग्रेजों से समस्त हिन्दुस्तान को महान संकट है और इसलिये उन्होंने उस शत्रु का संगठित रूप से सामना नहीं किया। अन्त में जब हिन्दुस्तानियों को वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ, तो वे मिलकर आगे बढ़े और सन १८५७ में बहादुर शाह के नेतृत्व में उन्होंने स्वतन्त्र जनता के रूप में अन्तिम लड़ाई लड़ी। इस युद्ध के आरम्भिक काल में हिन्दुस्तानियों को कई बड़ी सफलतायें प्राप्त हुईं। दुर्भाग्य और दोषपूर्ण नेतृत्व के कारण उन्हें अन्त में पूर्ण पराजय और दासता स्वीकार करनी पड़ी। फिर भी झांसी की रानी, तांतिया टोपी, कुँवरसिंह और नाना साहब जैसे योद्धा आज भी राष्ट्रीय क्षितिज में अमर तारिका की भांति देदीप्यमान हैं और महान कार्यों के लिये हमारे हृदयमें त्याग तथा वीरता की प्रेरणा भर रहे हैं।

"१८५७ के बाद अंग्रेजों ने लोगों को बलात् निःशस्त्र करके अत्यन्त निर्दयता के साथ पाशविक अत्याचार करके ऐसा घोर आतंक फैला दिया कि कुछ दिनों तक भारतीय जनता दबी रही, किन्तु १८८५ में भारतीय कांग्रेस के जन्म के साथ एक नई जागृति का प्रादुर्भाव हुआ। १८८५ से लेकर

पिछले विश्वव्यापी युद्ध के अन्त तक भारतीय जनता ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने की चेष्टा में सभी उपायों से काम लिया, अंग्रेजी माल का बहिष्कार किया, आतंकवाद एवं विप्लव से काम लेने के बाद अन्त में सशस्त्र क्रान्ति भी की। कुछ समय तक ये सभी प्रयत्न निष्फल रहे। अन्त में १६२० में जब भारतीय जनता विफलता से निराश हो नया उपाय ढूंढने का प्रयास कर रही थी, तब महात्मा गांधी असहयोग और सविनय अविज्ञा के नये शस्त्र लेकर सामने आये।

"उसके बाद बीस वर्ष तक भारतवासी प्रबल देशभक्ति के साथ कार्य करते रहे। स्वतन्त्रता का सन्देश हिन्दुस्तान के घर-घर तक पहुँचाया गया। स्वयं अनुभूति प्राप्त करके जनता ने स्वतन्त्रता के लिये कष्ट उठाना, त्याग करना और मर मिटना सीखा। केन्द्र से लेकर दूर-दूर के गावों तक में जनता राजनीतिक संगठन के एक सूत्र में बंध गई। इस प्रकार भारतवासियों ने न केवल अपनी राजनीतिक चेतना को पुनः प्राप्त किया, बल्कि उन्होंने अपना राजनीतिक अस्तित्व भी बना लिया। अब वे एक स्वर से बोल सकते थे और संगठित इच्छा से प्रेरित होकर अपने समान ध्येय को प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते थे। १६३७ से १६३६ तक आठ प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों द्वारा उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि वे अपने शासन का स्वयं संचालन करने की क्षमता रखते हैं।

"इस प्रकार वर्तमान महायुद्धके आरम्भ होने से पहले ही हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता की अंतिम लड़ाई के लिये भूमि तैयार हो गई थी। इस युद्ध में जर्मनी ने अपने साथियों की सहायता से यूरोप में अपने शत्रु पर विनाशकारी प्रहार किये हैं। इधर पूर्वीय एशिया में जापान ने अपने मित्रों के साथ हमारे शत्रु पर भीषण आघात किये हैं। स्थिति के इस सुखद सुयोग के कारण आज हिन्दुस्तानियों के सामने अपनी राष्ट्रीय मुक्ति को प्राप्त करने का बड़ा ही अद्भुत अवसर उपस्थित है।

"आजकल के इतिहास में पहली बार प्रवासी भारतीयों में भी राजनीतिक चेतना जागृत हुई है और वे सब एक सूत्र में बंध गये हैं। न

केवल वे अपने देशवासी बंधुओं के साथ हृदय से हृदय मिलाकर विचार और अनुभव कर रहे हैं; बल्कि उनके पैर से पैर मिलाकर स्वतंत्रता के पथ पर भी बढ़ रहे हैं। विशेषतः पूर्वीय एशिया में २० लाख से भी अधिक हिन्दुस्तानी शक्तिशाली व्यूह में संगठित हैं और उनके सामने पूर्णतः सैनिक जीवन का ध्येय है। उनके सामने खड़ा है आजाद हिन्द फौज का वह संगठित समूह, जिसके मुख से बराबर यही पुकार निकल रही है:—"आगे बढ़ो ! चलो दिल्ली !!"

"ब्रिटिश राज्य ने अपनी मक्कारी से हिन्दुस्तानियों को निराश कर दिया है। उसने उन्हें लूटखसोट कर भूख और मौत के चंगुल में दे दिया है। इस प्रकार उसने उनके विश्वास एवं सद्भावना को अपने प्रति बिल्कुल खो दिया है। इतना ही नहीं, आज वह डांवा-डोल स्थिति में है। इस दुःखद राज्य के अन्तिम अवशेष को नष्ट करने के लिये केवल एक चिनगारी की जरूरत है। उसको सुलगाना ही आजाद हिन्द फौज का काम है। इस फौज को हिन्दुस्तान की नागरिक जनता और ब्रिटिश अधिकार में काम करने वाली हिन्दुस्तानी फौज के सैनिकों से उत्साहपूर्ण सहयोग का आश्वासन मिला है। उसे अपने अजेय विदेशी मित्रों का सहारा है। इन सबसे अधिक उसे निजी बल पर भी पूरा भरोसा है। इसलिये उसे पूरा विश्वास है कि वह अपना ऐतिहासिक कार्य अवश्य पूरा करेगी।

"अब जब कि स्वतंत्रता का उषा काल निकट है, हिन्दुस्तानियों का कर्तव्य है कि वे अपनी निजी अस्थायी सरकार बनावें और उसी सरकार के झण्डे के नीचे अपना अन्तिम युद्ध शुरू करें। समस्त भारतीय नेताओं के कारागार में होने और जनता के निःशस्त्र बना दिये जाने से देश के भीतर किसी ऐसी सरकार की स्थापना करना और उसके आधीन सशस्त्र युद्ध प्रारम्भ करना सम्भव नहीं है। इसलिये यह पूर्वीय एशिया के आजाद हिन्द संघ का कर्तव्य है कि वह आजाद हिन्दुस्तान की अस्थायी सरकार के निर्माण का कार्य अपने हाथ में ले और आजाद

हिन्द फौज की सहायता से, जो संघ द्वारा स्थापित की गई है, स्वतंत्रता की अन्तिम लड़ाई लड़ने का बीड़ा उठाये।

"पूर्वीय एशिया के आजाद हिन्द संघ द्वारा आजाद हिन्द की स्थायी सरकार कायम करके आज हम अपने ऊपर आये हुए उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से समझते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये आगे बढ़ते हैं। मातृभूमि की मुक्ति के इस युद्ध में हम परम पिता परमेश्वर से आशीर्वाद मांगते हैं और अपने तथा अपने साथी सैनिकों के जीवन को मातृभूमि के हित तथा उन्नति के लिये बलिवेदी पर अर्पित करते हैं।

"अस्थायी सरकार भारत से अंग्रेजों तथा उनके मित्रों को निकालने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ेगी। इसके बाद उसका कार्य होगा आजाद भारत में आम जनता के सहयोग से स्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करना। अंग्रेजों और उनके मित्रों का पराजय हो जाने पर स्थायी राष्ट्रीय सरकार के बनने तक अस्थायी सरकार ही जनता के हितार्थ भारत में शासन-प्रबन्ध करती रहेगी।

"यह सरकार सभी हिन्दुस्तानियों की वफादारी की हकदार है और उसके लिये दावा करती है। सभी के लिये धार्मिक स्वतंत्रता, समान अधिकार तथा समान अवसर का भी यह ऐलान करती है। साथ ही यह भी ऐलान करती है कि समस्त देश और उसके लोगों की सुख.समृद्धि के लिये प्रयत्न करने का उसने दृढ़ संकल्प किया है। देश के सभी लोगों को वह समान मानेगी और विदेशी सरकार ने अपनी चालाकी से भूतकाल में जो मतभेद पैदा किये है, उनको सर्वथा दूर कर देगी।

"हम भगवान तथा अपने उन पूर्वजों को साक्षी रख कर, जिन्होंने वीरता और बलिदान की परम्परा को कायम किया है, देशवासियों का आव्हान करते हैं कि वे अपने देश की आजादी के लिये युद्ध करने को इस झण्डे के नीचे आकर खड़े हों। हम उनको आमन्त्रित करते हैं कि

वे अंग्रेजी सत्ता और उनके विरुद्ध इस संग्राम को शुरू कर दें, अपनी विजय में विश्वास रख कर जान की बाजी लगा दें और तब तक इसको जारी रखें, जब तक हम अपने शत्रु को देश से बाहर न निकाल दें और इस तरह हिन्दुस्तान को फिर से आजाद न कर लें।"

परिशिष्ट ४

हिन्दुस्तान के प्रति नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जब वफादारी की शपथ ली, तब वह विशाल भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। शपथ लेते हुये आपका गला भर आया। फिर भी आपने ऊंची, साफ और दृढ़ आवाज में निम्न लिखित शपथ पढ़ी:—

"ईश्वर को साक्षी रख कर मै सुभाषचन्द्र बोस यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं भारतमाता और उसकी अड़तीस करोड़ जनता को आजाद करने के लिये अपने जीवन की अन्तिम सांस तक आजादी की इस लड़ाई को जारी रखूंगा। मैं सदा ही अपने को भारत का सेवक मानता हुआ अड़तीस करोड़ भाई-बहिनों की भलाई करने में तत्पर रहूंगा। मेरे जीवन का यही सबसे बड़ा और महान कर्तव्य होगा। आजादी प्राप्त करने के बाद भी उसकी रक्षा के लिये मैं अपने रुधिर की अन्तिम बूंद तक बहाने के लिये सदैव तत्पर रहूँगा।"

परिशिष्ट ५

नेताजी के बाद आजाद हिन्द सरकार के प्रत्येक मन्त्री ने अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से निम्न लिखित शपथ ली:—

"ईश्वर के नाम पर मैं ....यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि हिन्दुस्तान को और अपने अड़तीस करोड़ देशवासियों को आजाद करने के लिये मैं अपने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के प्रति सच्चा तथा ईमानदार रहूँगा। इस ध्येय की पूर्ति के लिये अपना जीवन और सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये मैं सदैव तत्पर रहूँगा।"

परिशिष्ट ६

आजाद हिन्द फौज के सिपहसालार नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने किसी अज्ञात किंवा गुप्त कैम्प से फौज के अफसरों और सैनिकों के नाम निम्न विशेष आदेश २५ अप्रैल १६४५ को जारी किया था:—

"आजाद हिन्द फौज के वीर अफसरो और सैनिको ! मैं हृदय पर पत्थर रख कर बर्मा से बिदाई ले रहा हूं। तुमने इसी बर्मा में फरवरी १६४४ से कितनी ही वीरतापूर्ण लड़ाइयां लड़ी हैं और अब भी लड़ रहे हो। इम्फाल और बर्मा के मोर्चों पर अपनी आजादी की लड़ाई के पहिले धावे में हम हार गये हैं। यह तो पहिला ही धावा था। अभी हमें शत्रु पर कितने ही और धावे बोलने हैं। मैं जन्म से ही आशावादी हूं। मैं किसी भी हालत में हार स्वीकार नहीं कर सकता। इम्फाल के मैदानों, अराकान की पहाड़ियों तथा जंगलों में, बर्मा के तेल-क्षेत्रों तथा अन्य स्थानों में लड़ी गई लड़ाइयों म तुमने जिस बहादुरी का परिचय दिया है, वह हमारी आजादी की लड़ाई के इतिहास में सदा ही याद की जाती रहेगी।

"साथियो ! इस नाजुक घड़ी में मुझे तुमको सिर्फ एक ही आदेश देना है और वह यह है कि यदि कुछ समय के लिये तुमको हारना भी पड़ रहा है, तो भी तुम तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा ऊचा फहराये रखो, अपनी वीरता को मत लजाओ और अपनी प्रतिष्टा तथा अनुशासन पर कोई धब्बा न लगने दो। भारत की भावी सन्तानें, जो तुम्हारे महान बलिदान के फलस्वरूप गुलाम नहीं, अपितु स्वतन्त्र देश में उत्पन्न होंगी, तुम्हारे नाम को पूजेंगी और संसार को यह बतायेंगी कि हमारे पूर्वजों ने भले ही मनीपुर, आसाम और बर्मा की लड़ाइयों में हार खाई थी, किन्तु उन्होंने अपने इस क्षणिक पराजय से अन्तिम सफलता और विजय का मार्ग तो प्रशस्त ही बनाया था।

"भारत की आजादी में मेरा दृढ़ विश्वास पहिले के समान अटल है। अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा और अपने देश का युद्धक्षेत्र की पुरानी पर-

ग्पराओं को मैं तुम्हारे हाथों में सुरक्षित छोड़कर जा रहा हूं। तुम भारत की आजादी की अग्रगामी सेना के सैनिक हो। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि तुम उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व और जीवन तक न्यौछावर कर दोगे, जिससे दूसरे स्थानों पर लड़ने वाले तुम्हारे साथियों को तुम्हारे इस उज्ज्वल आदर्श से सदा के लिये प्रेरणा मिलती रहे ?

"यदि मैं स्वेच्छा से कुछ निर्णय कर सकता, तो मैं इस विपरीत स्थिति में पराजय में हिस्सा बटाने के लिये तुम्हारे साथ ही रहता। लेकिन अपने, मंत्रियों और ऊंचे अफसरों की सलाह मानकर इस लड़ाई को जारी रखने के लिये मैं बर्मा छोड़ने को लाचार हूं। मैं पूर्वीय एशिया और हिन्दुस्तान में भी रहने वाले अपने देशवासियों को भली प्रकार जानता हूँ और उनकी ओर से तुमको मैं यह विश्वास दिला सकता हूँ कि वे आजादी की लड़ाई को हर हालत में जारी रखेंगे और तुम्हारा यह उत्सर्ग और बलिदान कदापि व्यर्थ न जायगा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं अपनी उस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहूंगा, जो मैंने २१ अक्टूबर १६४३ को ली थी। मैं ३८ करोड़ देशवासियों की सेवा करने, उनके हितों को सुरक्षित रखने और आजादी के युद्ध को निरन्तर जारी रखने में कुछ भी उठा न रखूंगा। अन्त में मैं तुमसे यही अपील करता हूँ। कि तुम भी अपने में मुझ जैसी आशा को जगाओ और मेरे समान ही विश्वास रखो कि घोर अन्धकार के बाद ही प्रभात प्रगट होता है। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा।......जल्दी ही होगा।

"भगवान् की तुम पर कृपा हो।

इन्किलाब जिन्दाबाद !

आजाद हिन्द जिन्दाबाद !!

जय हिन्द !!!

गुप्त कैम्प
२५ अप्रैल १६४५

(ह०) सुभाषचन्द्र बोस
सिपहसालार--आजाद हिन्द फौज

परिशिष्ट ७

नेताजी ने बैंकोक में २१ मई १९४५ को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की स्मृति के उपलक्ष में हुई सभा में अंग्रेजी में एक महत्वपूर्ण भाषण दिया था। सम्भवतः वह आप द्वारा दिये गये सर्वोत्तम भाषणों में से एक था। उसका आशय निम्न प्रकार है :–

"भाइयो और बहिनो !

मैं पिछली बार जनवरी में जब आपके सामने उपस्थित हुआ था, तबसे इस समय युद्ध की स्थिति बहुत बदल चुकी है। युरोप में जर्मनी का पूर्ण पराजय हो चुका है। बर्मा में हमें अपने पहिले धावे में पराजित होना पड़ा है। फिर भी हताश होने का कोई कारण नहीं है। यदि युरोप और पूर्वीय एशिया में सब स्थानों पर बुरी तरह पराजित होने पर भी हमारा दुश्मन हताश न हुआ था और उसने युद्ध जारी रखकर प्रत्याक्रमण तक करने की सामर्थ्य पैदा कर ली है, तो हमें उस जितनी सामर्थ्य का तो परिचय देना ही चाहिये। मैं हमेशा ही यह कहता रहा हूँ कि हम स्वतंत्र होने की सामर्थ्य रखते हैं; लेकिन, उसके लिये हमें शत्रु से कहीं अधिक साहस, दृढ़ता और दूरदर्शिता का परिचय देना होगा। यदि वह बर्मा से खदेड़े जाने के बाद भी लौट कर आ सकता है, तो कोई कारण नहीं कि हम बर्मा की ओर वापिस क्यों न लौटें ? मुख्य प्रश्न यह है कि कहीं हमारी नैतिकता तो भंग नहीं हुई और कहीं हमने अपने पराजय को स्वीकार तो नहीं कर लिया। गत महायुद्ध के मित्र-सेनाओं के सुप्रीम कमाण्डर फील्ड मार्शल फौश ने एक बार कितने सुन्दर शब्दों में कहा था कि "वह सेना हार जाती है, जो अपने पराजय को स्वीकार कर लेती है।" बर्मा से जो मेरे साथ आये हैं, उनमें एक भी स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं है, जो अपनी हार स्वीकार करने को तैयार हो। निस्सन्देह, अपनी लड़ाई के पहिले धावे में हम पराजित हुये हैं। लेकिन, अभी तो हमें कितने ही धावे बोलने हैं। युद्ध

का फैसला तो अन्तिम धावे में होगा। युद्ध तो दो पहलवानों में होने वाली कुश्ती के समान है। जब दोनों समान शक्ति के होते हैं, तब विजय उसकी होती है, जो देर तक दाव साधे रहता है। यदि हमारे में अधिक दृढ़ता तथा साहस है और आध्यात्मिक शक्ति भी कुछ अधिक है, तो हम अवश्य स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य हैं। दुर्भाग्य से हमारे भीतर भी ऐसे आदमी हैं, जिनको आसानी से बिगाड़ा जा सकता है, जो डरपोक हैं और जो साधारण से पराजय से भी विचलित हो जाते हैं। यह तो गुलामी का अभिशाप है। इस कमजोरी को हमें जीतना ही होगा और हर हालत में युद्ध को जारी रखना होगा। तभी हम विजयी होंगे।

"एक दूसरी बात भी इस सम्बन्ध में मैं आपको बताना चाहता हूं। आजकल के युद्ध में और इन दिनों के लम्बे चलने वाले युद्ध में कई अनहोनी या अनपेक्षित बातें होनी संभव हैं। युद्ध-विशेषज्ञ और वर्तमान युद्ध-नीति के जनक जर्मन जर्नल क्लाउसवित्स ने एक बार कहा था कि "युद्ध में कई अनोखी बातें सामने आती हैं।" मैं इस सचाई के कुछ उदाहारण तुम्हारे सामने रखता चाहता हूं। १६१२ के बालकन युद्ध में रूमानिया, बलगेरिया, ग्रीस और सरबिया ने मिलकर तुर्की पर चढ़ाई की थी। तुर्की उसमें हारता चला गया। बालकन सेनायें इस्तम्बूल के दरवाजे कुस्तुनतुनिया तक पहुंच गईं। तुर्की के पूर्ण पराजय में कोई सन्देह न रहा। आशा की कोई किरण शेष न रही। इसी बीच चारों बालकन राष्ट्रों में संघर्ष छिड़ कर आपस में लड़ाई शुरू होगई। कुस्तुन-तुनिया बच गया। तुर्की ने प्रत्याक्रमण करके अपना अधिकांश प्रदेश फिर जीत लिया। यदि कहीं तुर्की ने आत्म-समर्पण कर दिया होता, तो युद्ध का पासा उसके पक्ष में कभी भी पलटा न खाता।

"तुर्की के वर्तमान इतिहास का भी एक पन्ना उटा कर देख लो। गत महायुद्ध में तुर्की जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी के साथ था। उसका पराजय हुआ। ओटोमन साम्राज्य की गर्वीली राजधानी कुस्तुनतुनिया तक

मित्र-राष्ट्रों की सेनायें जा पहुँची और सुलतान को, जो खलीफा या धर्म-गुरु भी था, कैदी बना लिया गया। युद्ध का पासा हाथ से निकलता देख उसने उनकी सब अपमानास्पद शर्तों को भी स्वीकार कर लिया और तुर्कों से शस्त्र रख देने की भी उसने अपील की। इस निराशापूर्ण घोर अंधकार में केवल एक व्यक्ति था, जो हार मानने को तैयार न था। वह वीर तुर्क कमाल पाशा कुस्तुन्तुनिया से अनातोलिया चला आया। उसने कुछ विश्वासपात्र अफसरों की सहायता से अनातोलिया में नई तुर्क सेना खड़ी कर ली। वह सेना अजेय सिद्ध हुई। अपने साहस, चातुरी और विश्वास के बल पर उसने उस युद्ध में विजय प्राप्त की, जिसमें जर्मनी तथा आस्ट्रिया-हंगरी सरीखे साथी होने पर भी तुर्की हार गया था। यह भी इतिहास का एक चमत्कार ही था कि तब तो तुर्की हार गया, जब उसका साथ देने वाले इतने शक्तिशाली राष्ट्र उसके साथ थे, किन्तु तब वह जित गया, जब वह अकेला था। पराजय के बाद भी उसने शानदार विजय प्राप्त की। इस चमत्कार का रहस्य यही था कि कमाल पाशा और उसके साथियों ने सुलतान द्वारा पराजय स्वीकार करने पर भी हार नहीं मानी थी।

"इतिहास का एक और पन्ना अब मैं तुम्हारे सामने रखना चाहता हूं। वह आयर का है। गत महायुद्ध में उसका शत्रु इंग्लैण्ड जब जीवन-मृत्यु के युद्ध में उलझा हुआ था, तब आयर क्रान्तिकारियों ने अपनी आजादी के लिये अच्छा अवसर देखा। उनका आदर्श यह था कि 'इंग्लैण्ड का दुर्भाग्य ही आयर का सौभाग्य है।" १९१६ के ईस्टर में उन्होंने विद्रोह का बिगुल बजा दिया। वह विद्रोह एक ही सप्ताह में दबा दिया गया। उनके अपने देशवासी भी उनको पागल कहते थे। उस विद्रोह के दबा दिये जाने पर भी क्रान्तिकारी प्रवृतियां अपने काम में लगी रहीं। युद्ध की समाप्ति के एक ही वर्ष बाद १९१९ में उससे भी कहीं अधिक भयानक विद्रोह पैदा हो गया। यह भी कुछ कम अचरज की बात नहीं है कि १९१६ में जीवन-मृत्यु की लड़ाई में फंसे हुये होने पर इंग्लैण्ड ने उस समय का विद्रोह तुरन्त दबा दिया था; किन्तु १९१९ में

युद्ध में विजयी होने के बाद सर्वथा निश्चिन्त होने पर भी इंग्लैंड को आयर के विद्रोहियों के हाथों पराजय स्वीकार करनी पड़ी। यदि आयर के क्रान्तिकारियों ने १६१६ में हार मान कर हथियार रख दिये होते, तो १६१६ की क्रान्ति का होना संभव न था और आयर जो आज है, वह न बना होता।

"हिन्दुस्तान में भी ऐसा ही हुआ। गत महायुद्ध में क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश हकूमत के विरुद्ध एक विद्रोह संगठित करने का यत्न किया था। उसको गर्भ में ही कुचल दिया गया था। लेकिन, क्रान्तिकारियों की आवाज को कुचला न जा सका। इंग्लैण्ड के युद्ध में विजयी होने के बाद १६१६ में जलियानवाला बाग का हत्याकाण्ड भी हुआ। फिर भी महात्मा गांधी के नेतृत्व में नवीन राजनीतिक जाग्रति का जन्म हुआ। उसको आजतक भी कुचला नहीं जा सका।

"इन सब घटनाओं से यह शिक्षा मिलती है कि जो राष्ट्र अपनी नैतिकता और विश्वास खो बैठता है, वह कभी भी विजयी होने की आशा नहीं रख रखता। इसके विपरीत क्षणिक पराजयों के बावजूद यदि हम आजादी की लड़ाई को अन्तिम विजय में अटल विश्वास रखने हुये जारी रख सकें, तो संसार की कोई भी ताकत हमें हमारी आजादी से वंचित नहीं रख सकती। हम न्याय, सचाई और आजादी के जन्मसिद्ध अधिकार के लिये लड़ाई लड़ते हुये जब उसकी पूरी कीमत अदा करने को तय्यार हैं, तब निश्चय ही हमें आजादी मिलेगी, किन्तु हमें उसके लिये लड़ाई निरन्तर जारी रखनी होगी।

"हमें इस सचाई को छिपाने की जरूरत नहीं है कि हम अपने पहले दाव में हार चुके हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि बर्मा की लड़ाई खत्म हो गई। इसके विपरीत सचाई तो यह है कि आजाद हिन्द फौज और जापानी सेना आज भी बर्मा में कई मोर्चों पर लड़ रही हैं और यथासम्भव अन्त तक लड़ती रहेंगी। हम मे से जो बर्मा से चले आये है,

उन्होंने भी लड़ाई से अपना हाथ खींच नहीं लिया है। हमारी एकमात्र इच्छा अन्य मोर्चों पर लड़ाई को जारी रखने की है। हम एक युद्ध-क्षेत्र से दूसरे पर हट रहे हैं। हमारे सामने लक्ष्य एक ही है और वह है स्वदेश की पूर्ण आजादी। उसको प्राप्त करने का उपाय भी एक ही है और वह है सशस्त्र लड़ाई। इस लिये बर्मा में इस समय जो हमारी हार हुई है, उसका हमारे भविष्य के कार्यक्रम पर कुछ भी असर पड़ने वाला नहीं है। आजाद हिन्द फौज का नारा "चलो दिल्ली" तो अब भी बना ही हुआ है। यह सम्भव है कि हम इम्फाल के रास्ते से दिल्ली न पहुंच सकें, किन्तु रोम की तरह दिल्ली पहुंचने के भी कई रास्ते हैं। उनमें से किसी भी रास्ते से हम अपनी यात्रा तय कर सकते हैं और अपने ध्येय दिल्ली पर पहुंच सकते हैं।

"अपने इन दिनों के अनुभव में एक बात बहुत ही भयानक और लज्जास्पद है। पन्द्रह महीनों की लड़ाई में, जो भी प्रतिकूलतायें हमें झेलनी पड़ी हैं, वे अंग्रेज सेना के कारण नहीं; किन्तु हिन्दुस्तानी अंग्रेज सेना के कारण झेलनी पड़ीं हैं। १६४४ की वर्षा ऋतु में इम्फाल, कलकता और दिल्ली के हमारे रास्ते में रुकावट पैदा करने वाली हिन्दुस्तानी अंग्रेज सेना ही थी। इस वर्ष अंग्रेजों के बर्मा में प्रवेश करने में औरों की अपेक्षा यही सेना अधिक सहायक सिद्ध हुई है। गत शताब्दि में भी हिन्दुस्तानी सेना के बल पर ही अंग्रेजों ने बर्मा को जीता था। फिर भी हमारे सिर पर मंडराने वाली काली घटा में चमकती हुई एक सुनहरी रेखा ज़रूर दीख पड़ती है। वह यह है कि आज की हिन्दुस्तानी अंग्रेज सेना गत महायुद्ध के दिनों से सर्वथा भिन्न है। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को उसके निकट सम्पर्क में आने का काफी अवसर मिला है। हमारे सैनिकों को कई बार उस सेना के सिपाहियों ने कहा है कि यदि कहीं आजाद हिन्द फौज जीत गई, तो वे उसके साथ आ कर मिल जायेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से बहुतों के हृदय में आजाद हिन्द फौज के लिये सहानुभूति है। लेकिन, वे

खतरा उठा कर क्रान्तिकारियों का साथ देने को तय्यार नहीं हैं। विदेशी शासन की गुलामी से उनकी अन्तरात्मा मर चुकी है। उनको भय है कि कहीं अन्त में अंग्रेज जीत ही गये, तो उस हालत में उनका क्या होगा? उन पर शत्रु के इस प्रचार का भी काफी असर पड़ा है कि आजाद हिन्द फौज जापानियों की कठपुतली है। लेकिन, बर्मा में आने पर उनकी आंखें खुल जायेंगी। वे स्वयं देख लेंगे कि आजाद हिन्द सरकार तथा आजाद हिन्द फौज ने क्या किया है और स्वदेश की आजादी की लड़ाई उन्होंने किस प्रकार लड़ी है? वे स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियों के मुंह से 'जय-हिन्द' के शब्द सुनेंगे, क्योंकि वे इन्हीं शब्दों से उनका स्वागत या अभिवादन करेंगे। आजादी-पसंद लोगों के मुंह से वे उत्साहप्रद राष्ट्रीय गीत भी सुनेंगे। इस सब का हिन्दुस्तानी अंग्रेज सेना और उसके साथ आने वाले हिन्दुस्तानियों पर अच्छा ही असर पड़ेगा। हमारे प्रचण्ड आन्दोलन का सही चित्र जब हमारे देशवासियों के सामने उपस्थित होगा, तब पत्थर की चट्टान की तरह सारा देश हमारी पीठ पर हमारा साथ देने को आ खड़ा होगा।

"मित्रो! मैं एक बार फिर यूरोप के युद्ध की चर्चा आपके सामने करना चाहता हूँ। एक समय था, जब जर्मन सेनायें रूस में स्टालिनग्राड तक आ पहुँची थीं। उस समय कितने लोग थे, जिनको यह आशा थी कि वहां से युद्ध का रुख पलटेगा और रूसी सेना किसी दिन बर्लिन जा पहुंचेगी। जर्मनी का पराजय इस महायुद्ध का एक महान् आश्चर्य है। क्लाउसबित्स ने ठीक ही कहा था कि "युद्ध में कई अनोखी बातें सामने आती हैं।" अभी और भी अनेक आश्चर्य सामने आने वाले हैं और हमारा शत्रु उनको सहन नहीं कर सकेगा। आप जानते ही हैं कि मैं यह कितनी बार कह चुका हूँ कि यदि जर्मनी इस युद्ध में हारा, तो उससे रूस और अंग्रेजों तथा अमेरिकनों के बीच भीषण संघर्ष का सूत्रपात हो जायगा। उसका श्रीगणेश हो चुका है और भविष्य में वह और भी भयानक होने वाला है। हमारे शत्रुओं को यह जानने में अधिक समय नहीं लगेगा

कि जर्मनी को पराजित करने के बाद भी उन्होंने युरोप में एक नयी शक्ति को सोवियत रूस के रूप में जन्म दे दिया और वह इंग्लैण्ड और अमेरिका के साम्राज्यवाद के लिये जर्मनी से भी अधिक भकानक सिद्ध होगी। आजाद हिन्द सरकार अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र पर गहरी नजर रखते हुये पूरा लाभ उठाने की कोशिश करेगी। हमारी परराष्ट्रनीति का मूलमन्त्र यह है कि "इंग्लैण्ड का दुश्मन हिन्दुस्तान का दोस्त है।"

अब यह साफ हो गया है कि जर्मनी सरीखे समान शत्रु के होते हुये भी रूस और इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के युद्धोद्देश्य एक-से न थे। सानफ्रांसिस्को-सम्मेलन से भी यह प्रगट हो गया है, जिसमें रूस के परराष्ट्र कमिसर मोशियों मोलोटोव ने इंग्लैण्ड और अमेरिका की मांग को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। हिन्दुस्तान और फिलिपाइन्स से गये हुये इंग्लैड और अमेरिका के कठपुतली प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में भी उसने सवाल उठाया था। दोनो के बीच में पैदा होने वाली चौड़ी और गहरी खाई की यह मतभेद तो भूमिकामात्र है। इस मतभेद को देखते हुये हमें अपने प्रधान शत्रु की वास्तविक स्थिति और शक्ति को समझने में कुछ भी भूल नहीं करनी चाहिये। जब इंग्लैण्ड अमेरिका की सहायता के बिना अकेला लड़ रहा था, तब यूरोप में सभी स्थानों पर वह बुरी तरह हार खा रहा था। अमेरिका के नेतृत्व में उसी की सहायता से पीछे वह कुछ बिजय प्राप्त कर सका है। मैंने कई बार यह कहा है कि इंगलैंड के साम्राज्य के दिन अब पूरे हो रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्य मुर्झा रहा और मर रहा है। वह अमेरिका की सहायता से किसी प्रकार अपने दिन पूरे कर रहा है। बूढ़े आदमी का जीवन सुयोग्य डाक्टरों द्वारा दवाइयों और सूइयों के सहारे लम्बा खींचा जा सकता है; लेकिन, उसमें युवावस्था की ताकत कभी भी पैदा नहीं की जा सकती। अमेरिका की लकड़ी की घोड़ी के सहारों लंगडा ब्रिटिश साम्राज्य चलते रहने की कोशिश तो कर रहा है, किन्तु उसका काम इसके सहारे अधिक दिन नहीं चल सकेगा। हमें तो हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्य को सिर्फ एक अन्तिम भारीचोट

और लगानी है । हिन्दुस्तान के ही सहारे संसार में उसका साम्राज्य टिका हुआ है ।

"पूर्वीय एशिया में हमारे कार्यक्रम में कुछ भी रद्दोबदल नहीं हुआ है। मैं पूर्वीय एशिया के अपने लोगों से सर्वस्व न्यौछावर करने की मांग एक बार फिर करना चाहता हूं । अपने नुकसान की भरपाई करने के लिये हमें और भी अधिक जन, धन और साधन चाहियें । इससे भी अधिक हमें बलवती इच्छा और दृढ़ निश्चय चाहिये । हिन्दुस्तान को अपने कब्जे में करने में अंग्रेजों को १७५७ से १८५७ तक पूरे एक सौ वर्ष लगे हैं । इस लिये यदि हमें अपनी आजादी प्राप्त करने के लिये कुछ अधिक वर्ष लग जाय, तो किसी को कुछ भी शिकायत नहीं होनी चाहिये । हमारे लिये यह कितने उत्साह की बात है कि सारे ही संसार, यहां तक कि शत्रु द्वारा अधिकृत देशों में भी हिन्दुस्तानियों में अभूतपूर्व जागृति पैदा होगई है । तुम लोगों ने सानफ्रांसिस्को सम्मेलन के अवसर पर देखा होगा कि किस प्रकार अमेरिका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों ने श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित के नेतृत्व में हिन्दुस्तान के लिये पूर्ण आजादी की मांग की थी । यहां तक कि सर फिरोज खां नून सरीखे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कठपुतली को भी यह कहने को लाचार होना पड़ा था कि संसार की कोई भी ताकत हिन्दुस्तान को आजादी से वंचित नहीं रख सकती । उसके कहने के अनुसार भी हिन्दुस्तान में राष्ट्रवाद की शक्ति इतनी प्रबल होती जा रही है और बाहर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां इस प्रकार बदल रही हैं कि उनके कारण हिन्दुस्तान की आज़ादी की मांग का प्रतिरोध करना असम्भव होता जा रहा है । अन्त में मैं आपसे, विशेषकर थाईलैण्ड में रहने वाले अपने देशवासियों से, अपील करना चाहता हूं कि वे आगे बढ़ें और आगे आने वाले आड़े दिनों में स्वदेश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें । इससे भी अधिक मैं यह चाहता हूं कि आप सब अपने देश की अन्तिम और सुनिश्चित विजय के लिये मेरे ही समान अपने हृदय में आशा

और विश्वास को जागृत करें। यह हार्दिक विश्वास और दृढ़ निश्चय ही हमारे जहाज का लंगर है। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा और जल्दी ही होगा। इस अटल विश्वास के साथ, आओ, हम सब स्वदेश की आजादी की लड़ाई को जारी रखें।

जय हिन्द !

हमारे एजेण्ट

बम्बई—जयहिन्द बुकडिपो, सी० पी० टैंक।

कराची—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।

कलकत्ता—कमला स्टोरस, ४६ अपर चितपुर रोड।

तिनसुखिया (आसाम)—श्रीकृष्ण खादी भण्डार।

खरियार रोड (उड़ीसा)—श्री अयोध्याप्रसाद गुप्ता।

बृजराजनगर (उड़ीसा)—श्री बुधराम सागरमल डालमिया।

मधुवनी (बिहार)—श्री रघुवरसिंह।

माधीपुरा (बिहार)—श्री रामशरणसिंह।

रकसौल (बिहार)—श्री मदनमोहन गुप्ता, विश्राम कुटीर।

लाहौर—हिन्दी पुस्तक भवन। ग्राम-सेवा मण्डल, लाजपत भवन।

अम्बाला शहर—भारत पुस्तक भण्डार।

अम्बाला छावनी—अरविन्द कला मन्दिर।

हिसार—विद्या प्रचारिणी सभा। भिवानी—शर्मा ब्रदर्स।

कालका—श्री ठाकुरदास ओम्प्रकाश।

इलाहाबाद—विश्ववाणी कार्यालय, साउथ मलाका।

कानपुर—स्वराज्य ग्रामोद्योग भण्डार। लखनऊ—मालवीय बुकडिपो।

मिर्जापुर—श्री केदार शुक्ल, गणेशगंज।

भर्थना (इटावा)—श्री प्यारेलाल गुप्ता आजाद।

शामली—कमला खादी भण्डार। मेरठ—लाइट हाउस।

मैनपुरी—आर्य साहित्य मन्दिर। बरेली—प्रेम पुस्तक भण्डार।

देहरादून—साहित्य सदन। मसूरी—श्री शिवप्रसाद बुकसेलर।

नजीबाबाद—श्री महेन्द्रकुमार अग्रवाल।

कोठद्वार—श्री दुर्गाप्रसाद भारतभूषण।

अलमोड़ा—पन्त स्टोर। काशीपुर—श्री शेरसिंह।

अलीगढ़—मौडर्न पब्लिशिंग हाऊस।

गोरखपुर—हलचल साहित्य मन्दिर और श्री मथुरादास सियारामदास।

हरिद्वार—भाई हरनामसिंह सोहनसिंह।

ग्वालियर—श्री एम. बी. जैन एण्ड ब्रदर्स।

इन्दौर—नवयुग साहित्य-सदन, दयानन्द मिशन, आनन्द साहित्य सदन और श्री ऐम. आर. तुलसीदास।

ब्यावर—श्री भंवरलाल आर्य, आर्य न्यूज पेपर एजेंसी।

शेखावाटी (सीकर)—नेशनल ट्रेडिंग सर्विस।

अलवर—राजस्थान पुस्तक भण्डार।

कोटा—मोहन न्यूज एजेंसी।

नाथद्वारा—आर. एन. कपूर।

जोधपुर—किताब घर और अखबारिस्तान।

भरतपुर—आर्य ब्रदर्स एण्ड कम्पनी।

बीकानेर—श्री गंगादास कौशिक, रेलवे रोड़।

सुजानगढ़—श्री श्याम डिपो। रतनगढ़—सागरमलजी शर्मा।

सरदार शहर—श्री महालचन्द हनुमानमल मोडक और श्री मोहनलाल जैन।

रायसिंहनगर—पूर्णचन्द्र बांसल एण्ड कम्पनी।

जबलपुर—के. सी. नेमा, आवर हाई स्कूल और श्री सुषमा साहित्य मन्दिर।

नागपुर—राममूर्ति मिश्र, सुभाषचन्द्र रोड।

दमोह—नन्दलाल डालचन्दजी जैन। बैतूल—रामनाथजी मिश्र।

वर्धा—श्री लक्ष्मीनारायणजी भारतीय।

रायपुर—रामसुचितसिंहजी और राष्ट्रीय विद्यालय बुकडिपो।